



श्री सत्य साई सुधा-सागर

० तृतीय पुष्प ०

सम्पादक :

श्री एन० कस्तूरी, एम० ए०, बी० एल०

हिन्दी भाषान्तरकार - राजा राम सिंह

मन्त्री :

भगवान् श्री सत्य साई सेवा समिति इलाहाबाद-१

प्रकाशक :

भगवान् श्री सत्य साई सेवा समिति, दिल्ली

६, बहादुरशाह ज़फर मार्ग नई, दिल्ली-१

सम्पादक:—एन० कस्तूरी, एम० ए०, बी० एल
प्रकाशक : श्री सत्य साई न्यास की ओर से श्री सत्य साई सेया समिति,
गुलाब भवन, ६ बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली ।
मुद्रक : विक्रम एण्ड कम्पनी, ६/६ ईन्डस्ट्रीयल ऐरिया, कीर्ति नगर
नई दिल्ली-१५

विषय सूची

॥ समर्पण ॥

ये शब्द-सुमन,
अनमोल हीरक से,
झरते सरस सुधारस,
साई श्यामघन से ।
हैं ब्रह्म सगुण शिव-शक्ति के,
बाबा के, जगदीश-पर्तीश के ।
रूपान्तरित राष्ट्रभाषा,
हिन्दी के, हिन्द के,
गुम्फित अक्षर सरस,
शब्द सुमन माला में ;
इसमें कुछ अपना नहीं
सब कुछ उसका ही,
सादर समर्पण है उसी,
भक्तवत्सल भगवान् सत्य साई के,
परमपावन चरणारविन्द में ।
जहाँ भक्त भ्रमर वृन्द
शतत शान्त सुरभि सेते,
परमश्रेय-भक्ति, ज्ञान, कर्मयोग,
सहज अनुग्रह आनन्द योग
सत्य-धर्म-शान्ति-प्रेम जनित,
अचल शान्ति-मुक्ति-मगन हैं ।

राजारामसिंह

साई-सदन,
३, नाक्स रोड,
इलाहाबाद-२ (उ० प्रदेश)
तिथि १३-९-७२

बाबा बात करते हैं

(श्री एन० कस्तूरी)

बाबा बात करते हैं ... ... और, क्यों ?

हमारा पथ-प्रदर्शन करने, चेताने, जगाने के लिये,
इस जनन-मरण के लक्ष्य तक पहुँचने में—
जहाँ वे दोनों ही विनष्ट हो ज़ाते हैं,
हमको समर्थ बनाने के लिये ।
चुभोने, कोंचने, ईश्वरोन्मुख बढ़ने के लिये ।
और, समस्त दुष्ट (विषय) विषों को,
जो चूसते हैं, साहस आश-विश्वास को,
शक्तिहीन, क्रियाहीन, मृत बनाने के लिये ।।

II

बाबा बात करते हैं ... ... किन्तु कब ?

जब कर्ण विमुख हो जाता है,
भद्दी बातों से, अरु कामना करता है,
लवण की, जो जीवन सरस बनाता है ।
जब हृदय-तार टूट जाता है अकथ वेदना से,
जब अहंकार का घनघोर गर्जन, दुराग्रह की शिखर से,
प्रक्षिप्त, अवनत, क्षुधित, शिथिल बन जाता है ।

केवल, जब तुम प्रयास करते हो,
ढूँढ़ते, अनुनय-विनय-पश्चाताप करते हो,
वह तुम्हारी नीरस अंकगणित को हल कर देता है।
और, तुम्हारे स्वयं निर्मित पाप को,
केवल वही मिटा सकता है।

III

बाबा बात करते हैं ... ... और कैसे ?

अहा ! सुमधुर, सरल, स्नेहपूर्ण !
कोई माँ उनसी दयालु नहीं, कोई वेद चतुर नहीं।
कोई पिता बलवान नहीं, कोई शिक्षक शान्त नहीं।
एक कथा काटती है, कठिन ग्रन्थि को,
एक लोकोक्ति रज्जु बन जाती है,
भूल-भुलैया से निकसने की, भूले-भटके
छितराये पण्डितों के समूह को।
विकर्षित हृदय से सीधी बात करते हैं,
शब्द उनके अन्तः अन्धकार विदुराते हैं।
संशयशील मन से सीधी बात करते हैं,
ऐंठन सीधी, उदासी विलीन हो जाती है।
आवर्तमन से कोमल बात करते हैं—
तरंगें शान्त हो जाती हैं, ज्वाला शीतल हो जाती है।
मानव रूप में, **अपने अवतरण** की स्पष्ट बात करते हैं—
"तेरा परमात्मा यहाँ है ! यात्रा का अन्त निकट है !!"

IV

बाबा बात करते हैं . . . . . कहाँ से ?

तव हृदय-मंच मनोहर से,
रचित अति सुरभित, निरमल तुमसे
जड़ित जगमग सपनों से, हरीतिमा चिर से ।

V

विनम्र बनो, स्वागत करो,
झटको अहं की लौ को,
अचिर बुझने दो इसको ।
जब वे प्रवेश करते हैं, प्रतिष्ठित बन मुसकाते हैं,
तब, विश्व प्रकाशित होता है ! शब्द ही प्रकाश है !!
वे बोलते हैं, बोलते ही, अन्तर्मुख, ईश्वरोन्मुख पथ दरसाते हैं ।
तुम दौड़ते हो उनके ही चरण की ओर !
यथा सरिता सवेग सागर की ओर !!

VI

ये शब्द हैं उनके, तुम्हारे लिये,
अंग्रेजी के कलेवर में, मेरे लिये ।
शान्त बैठो, पढ़ो एक-एक, मनन करो, मनन करो कई एक घंटे,
यथा वे चाहते हैं अपने श्रोतावृन्द, सबसे ।
उपदेश उनके तुम्हें सिक्त करें !
सन्तुष्ट करें । सुपवित्र करें !!

भाषान्तरकार—राजारामसिंह

"समृद्ध एवं विचित्र"

बाबा के भाषण हमारे किसी पूर्व ज्ञान के सदृश नहीं हैं। उसे 'अद्वितीय' कहना सामान्य शब्द को दुहराना है। न तो यह स्वाध्यायपूर्ण वक्तृता है, न परम्परागत वाक् विदग्धता है जो पाण्डित्य के भार से लदी हो। तिसपर भी, उनके भाषण कितने आश्चर्यमय हैं। उनके शब्दों में असाधारण शक्ति है तथा वे हृदय-स्पर्शी हैं। किन्तु, यह तो उनके शब्द-कौशल का एक पक्ष है। वे लोगों के हृदय एवं मन के रहस्य को खोलना जानते हैं। वे अपने श्रोताओं के सिर पर कभी नहीं बोलते हैं। उनके भाषण में एक घनिष्टता होती है जो श्रोता के पास तुरन्त ही स्वयं पहुंच जाती है।

विषयानुकूल उनके स्वर में चढ़ाव एवं उतार होता है। वह कभी कर्ण-कटु नहीं होता; बल्कि कोमल एवं संगीतमय होता है। गम्भीरतम सत्यों को भी वे बोधगम्य बना सकते हैं। वे परिचित शब्दों को चुनते हैं; उन्हें महत्व-पूर्ण प्रसंगों से वेष्टित करते हैं। इस प्रकार, वे उनको अद्वितीय आकर्षक शक्ति प्रदान करते हैं। उनके पास दृष्टान्तो की दौलत है तथा वे बेजोड़-अप्रतिम कथा कहने वाले हैं।

उनके कथानकों का क्षेत्र विशाल है। वह अत्यन्त सरल से अत्यन्त गहन तक, पृथ्वी से स्वर्ग तक विस्तृत है। सुनते समय ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग अपने सामने एक सुन्दर यवनिका देख रहे हैं। जिस पर देवताओं एवं देवतुल्य मनुष्यों की आकृतियाँ सगुम्फित है। कथायें हार में जड़ी हुई मणियो के समान हैं। हर एक कथा प्रत्युत्पन्नमति, विवेक एवं कभी-कभी तीखे नुकीले किन्तु मधुमय व्यंग्यों सहित जगमगाती है। वे मुख्य कथानक को समझाते एव स्पष्टीकरण करते हैं तथा वे कभी स्थानेतर नहीं होते हैं।

बाबा के हाव-भाव शानदार होते हैं, क्योंकि वे सर्वोच्च कलाकार हैं जिनमें सौंदर्य एवं संगीत के लिये अनुराग है। वे कहीं भी पूर्ण आराम से (पहुंचते) हैं। उनके किसी भी कथन में कोई भी बात असम्बद्ध नहीं रहती है।

इसका सम्पूर्ण प्रभाव श्रोतागणों को विचार एवं अनुभव के एक नूतन साम्राज्य में पहुंचा देता है। बहुतों को विस्मय होता है कि बाबा किसी सर्वोत्कृष्ट विषय को सुपरिचित विषय में परिवर्तित करने में कैसे समर्थ होते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसका रहस्य बाबा की विस्मयकारिणी 'रूपान्तरण' शक्ति में है। वे एक व्यक्ति को रूपान्तरित कर सकते हैं। उसी प्रकार, वे एक सामान्य वस्तु को किसी "समृद्ध एवं विचित्र" वस्तु में रूपान्तरित कर सकते हैं। यह सब स्वतः एवं अनायास होता है। वे सहज एवं सरल ढंग से एक कथानक से दूसरे कथानक की ओर बढ़ते हैं तथा विचारों के सुन्दर ढाँचे की रचना करते हैं; किन्तु, तिसपर भी सम्भाषण का केन्द्रीय कथानक दृष्टि से ओझल नहीं होता है—एक घण्टा से भी अधिक मर्मस्पर्शी वाक् विदग्धता के उपरान्त, वे अपने सम्भाषण की समाप्ति केन्द्रीय विषय पर नूतन बल देते हुए करते हैं तथा अपने मधुर स्वर से अपने कुछ प्रिय भजनों को गाते हुए उपसंहार करते हैं।

एच० सुन्दर राव
अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य,
एम० जी० एम० कालेज,
उडिपि

प्रशान्ति निलयम
२७-८-१९६४

१ श्री राम स्वरूप

(स्थान—राजमुन्दरी, तिथि १-४-६३)

धर्म काल एवं स्थान द्वारा सीमित पदार्थ नहीं है जिसको किसी समय विशेष की आवश्यकताओं एवं दबावों के अनुसार संशोधित एवं सामंजस्यपूर्ण बना लें। इसका अर्थ है अनेक मूलभूत सिद्धान्त जो आभ्यन्तरिक एकता एवं बाह्य शान्ति की दिशा में उसके अभ्युत्थान हेतु मानव जाति का पथप्रदर्शन करते हैं। जब मनुष्य धर्म से पथभ्रष्ट होता है, तब लौकिक दासता से भी बढ़ कर हानियों का उसे सामना करना पड़ता है। यदि आप पर्याप्त सावधान एवं संगठित नहीं हैं, तो शत्रु के आक्रमण एवं बन्धन का भय रहता है। किन्तु धर्म खोने पर इससे भी अधिक भयंकर विपत्ति आती है; क्योंकि मनुष्य जिस बुद्धि से विभूषित है उसके अनुरूप यदि वह जीवन-यापन नहीं कर सकता है तो जिन्दगी किस काम की ?

ये सिद्धान्त सनातन कहे जाते हैं; क्योंकि उनकी उत्पत्ति की कोई तिथि अंकित नहीं है; उनका रचयिता पहचानने योग्य नहीं है; वे निष्पक्ष ऋषियों की निर्मल बुद्धि में ईश्वर वाणियां हैं। वे बुनियादी एवं शाश्वत-चिरकालीन हैं। वे क्षणिक भाव-तरङ्गों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। अन्य देशों में उत्पन्न दृष्टिकोण सीमित समुदायों की आवश्यकताओं के अनुरूप थे। उनके आक्रमण के सम्मुख भारतवर्ष अडिग-अदम्य भाव से खड़ा रहा, क्योंकि वह उस धर्म से लगा रहा जो सभी युगों के लिये एवं सभी मनुष्यों के लिये स्थापित किया गया था। भारतीय शासकों ने भी धर्म के नियमों का आदर किया। वे धर्म के धारकों से एवं धर्म के व्याख्याताओं से परामर्श लेते थे; क्योंकि वे

तपस्या की परीक्षाग्नि में प्रक्षालित होते थे। वे राजाओं के राज्य को मान्यता देते थे तथा प्रार्थना एवं तप के द्वारा उसका पथ-प्रदर्शन प्राप्त करते थे। वे जानते थे कि उनका **प्रभु सर्वान्तर्यामी है, शाश्वत साक्षी है**। अतएव, इस देश के राजाओं को चेतावनी दी जाती थी कि राज्य के प्रत्येक व्यक्ति के सुख का ध्यान रखें तथा दुःख को दूर करें।

धर्म एक आचार-संहिता है जो विद्यार्थी, गृहस्थ, उपार्जक, स्वामी, सेवक, साधक, संन्यासी आदि, मनुष्य के प्रत्येक स्तर के लोगों के आदर्शों को ऊँचा उठाता है। जब संहिता को तोड़-मरोड़ दिया जाता है तथा मनुष्य अपने जन्म लेने के श्रेष्ठ उद्देश्य को भूलकर अपने भौतिक जीवन की अवमानना करता है, तब भगवान् अवतार लेते हैं तथा उसे सही पथ पर चलाते हैं। अर्थात, वे मानव रूप में आते हैं सिद्धान्तों के प्रत्यावर्तन हेतु एवं धर्माचरण की पुनर्स्थापना के लिये। गीता में इसी को धर्म-संस्थापन कहा गया है। भगवान् द्वारा धारण किये गये इन स्वरूपों में कोई उच्चतर या निम्नतर नहीं है, यद्यपि पंडित यह तर्क कर सकते हैं कि राम या कृष्ण में से कौन उत्तमोत्तर या महत्तर है! किन्तु यह एक प्रकार का बौद्धिक व्यायाम है जो पंडितों को मुष्टिप्रहार का एक तीव्र आनन्द मात्र प्रदान करता है! वीरभद्र शास्त्री ने अभी उसी प्रकार की समस्या प्रस्तुत करदी है। मैं प्रारम्भ में ही कह देना चाहता हूँ कि ईश्वर एक अविभाज्य सत्ता है; वह यहाँ या अन्यत्र कोई भी स्वरूप धारण करे।

राम माया-मानुष रूप में प्रगट हुए, उन्होंने शैशवकाल से ही दैनिक आचरण में धर्म का पालन किया। वे धर्म की मानवीमूर्ति हैं। उनमें अधर्म का कोई चिह्न नहीं है। उनका दैवी स्वभाव शान्त गुण एवं करुणा रस में अभिव्यक्त होता है। उनका ध्यान करो और सब प्राणियों के प्रति प्रेम से तुम्हारा हृदय भर जायेगा। उनकी कथा का मनन करो और तुम्हारे मन के सभी उद्वेग पूर्ण शान्ति में विलीन हो जायेंगे। ताड़का का वध करते समय, वे तर्क

कर रहे थे, हिचक रहे थे तथा रुक गये थे जब तक कि विश्वामित्र नेउन्हें यह विश्वास नहीं करा दिया कि उनके ही बाण से उसने एक अभिशाप से उद्धार पाना है। उनके करुणारस का वह एक चिह्न।

राम ने किसी को विनष्ट करने के लिए कोई एक सरल बहाना बनाने के लिये किसी दूसरे को कभी उत्तेजित नहीं किया। इसके विपरीत, शत्रु को अपने बचाव के लिये प्रत्येक अवसर प्रदान किया। उन्होंने वानरों एवं राक्षसों तक धर्म का संदेश पहुंचाया तथा जाबालि जैसे ऋषियों तक भी। बिना किसी विलम्ब के ही उन्होंने विभीषण की प्रार्थना स्वीकार करली तथा यह भी घोषित किया कि यदि रावण अपने अन्याय या गुनाह के लिये खेद प्रगट करे तो उसे भी अंगीकार करने के लिए वे तैयार हैं।

श्रुति कहती है, 'सत्यं वद'—सत्य बोलो। राम ने सभी प्रलोभनों के बावजूद भी सत्य का पालन किया। श्रुति का कथन है, "धर्मं चर" धर्म का आचरण करो। वे कभी भी धर्म के पथ से विचलित नहीं हुए। उदाहरणार्थ; जैसा आप जानते हैं, अपने पिता के आदेश को पूरा करने के लिये उन्हें चौदह वर्ष वन में रहना पड़ा था। इसलिए, उस अवधि में किसी भी आबाद नगर या ग्राम में उन्होंने प्रवेश नहीं किया। सुग्रीव एवं विभीषण के राज्याभिषेक के समय भी वे किष्किंधा एवं लङ्का से दूर रहे। विभीषण ने बड़ी विनम्रता पूर्वक तर्क प्रस्तुत किया कि चौदह वर्ष में कुछ दिन मात्र ही शेष रह गये हैं। किन्तु राम ने अपने स्थान पर लक्ष्मण को ही भेजा। वे कभी हिचकते नहीं थे, अथवा कभी अतिक्रमण नहीं करते थे। इतनी कड़ाई के साथ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया।

राम धर्मस्वरूप हैं तथा कृष्ण प्रेमस्वरूप हैं। राम सदैव धार्मिक दायित्वों को समझते थे। राम के रथ के पीछे जब राजा दशरथ मर्मान्तक व्यथा में दौड़ते हुए "रोको, रोको" चिल्ला रहे थे तथा सुमन्त्र को रथ रोकने के लिए कह रहे थे, तब राम ने उसे (सुमन्त्र को) रथ रोकने से मना कर दिया। उन्होंने

सुमन्त्र से कहा, "यदि वे डांटते फटकारते हैं, तो तुम कहना कि तुमने उनकी बातों को नहीं सुना।" सुमन्त्र विमूढ़ हो गया। वह जो बात सत्य नहीं है, उसे कैसे कह सकेगा? किन्तु राम ने समझाया, "रथ रोकने का यह आदेश एक शोक सन्तप्त पिता से आ रहा है, जब कि मुझे बन ले जाने का आदेश एक राजा से आया था, जिनके तुम मन्त्री हो। तुम्हें उस व्यक्ति की पागलपने की बातें नहीं कान करनी चाहिएं जिसकी बुद्धि शोक के कारण खो गई है। तुम्हें सम्राट् मात्र के आदेशों को सुनना आवश्यक है।"

अवतार के अवतरण के पूर्व ही मंच सूक्ष्मातिसूक्ष्म विस्तार से व्यवस्थित कर दिया जाता है; कैकेयी अपने दो वरदानों सहित सन्नद्ध है, राजा दशरथ संन्यासी के अभिशाप को अपने सिर पर धारण किये कटिबद्ध हैं, जो पुत्र-वियोग की व्यथा से उनपर मृत्यु को अनिवार्य रूप से लायेगा, तथा ईश्वरीय उद्देश्य की पूर्ति में सहायता करने के लिए वानरगण तत्पर हैं। धरती से उत्पन्न सीता पापी के अधःपतन का कारण प्रस्तुत करने के लिए तैयार हैं। जिस प्रकार अनेक पौधों से चुने हुए रङ्ग बिरङ्गे एवं सुगन्धित फूलों से हार बनाया जाता है, उसी प्रकार ईश्वरीय कथा अनेक प्रकार की घटनाओं से निर्मित होती है—एक वरदान, एवं एक अभिशाप उसकी कथा की विस्मय-पूर्ण कथावस्तु बनाते हैं।

कुछ लोगों का कथन है कि राम यह दिखाते हैं कि किस प्रकार कष्ट सहना चाहिए। यदि कोई राजा राजमहल में एक नाटक की व्यवस्था करता है तथा एक भिखारी का अभिनय करने में आनन्द लेता है तथा इसे बड़ी यथार्थता पूर्वक करता है, तो क्या इसीलिए तुम उसे भिखमंगी की यातनाओं को भोगता हुआ घोषित करोगे? राम ही आनन्द हैं। आनन्द ही राम है। यदि यह मधुर नहीं है, तो यह चीनी कैसे हो सकती है? यदि कष्टपीड़ित हो रहे हैं, तो वे राम नहीं हो सकते हैं। लोहे का एक गोला खाल को नहीं जला सकता है, किन्तु इसे गर्म करके लाल कर दो तो यह अवश्य जलायेगा।

किन्तु वह एक धारण किया अभिनय है। जब उत्ताप समाप्त हो जाता है, तब सदैव की भांति शीतल है।

यदि तुममें पितृभक्ति एवं मातृभक्ति है, जो राम में थी, तो राम-नाम तुम्हारी रक्षा करेगा। नहीं है, तो राम नाम अक्षरों की गति मात्र है। राम नाम का उच्चारण करते समय या राम नाम लिखते समय, रामस्वरूप एवं राम स्वभाव पर ध्यान केंद्रित करो। यह मन के लिये व्यायाम होगा तथा वह आध्यात्मिक विचार में स्वस्थ एवं मजबूत बनेगा। इस राम जन्मदिवस पर तुम इस धर्मस्वरूप को अपनी आत्मा राम बनाओ। यही मेरा नेक परामर्श है, यही मेरा वरदान है।

२ पंचम वेद

(स्थान—प्रशान्ति निलयम, २३-४-६३)

श्री गुल्लापल्ली बुशीरमैय्या शास्त्री ने महाभारत का विषय इतना अच्छी तरह एवं अत्यधिक पांडित्य पूर्वक बताया, क्योंकि इसकी व्याख्या में वे अनेक वर्षों से विशेषता प्राप्त कर रहे हैं। अनेक व्यक्ति महाभारत को भक्ति के लिए उतना कल्याणप्रद नहीं मानते हैं जितना भागवत् को या रामायण को। किन्तु, यदि एक बार इसके स्वाद को कोई जान ले तो इसे कोई भी नहीं त्याग सकता है और न इसका कम मूल्यांकन कर सकता है। इसे अकारण ही पंचम वेद नहीं कहा जाता है। बुद्धि की पहुंच से परे विषयों को वेद व्यक्त करते हैं। वेदों द्वारा घोषित सत्यों को महाभारत में कथाओं के द्वारा व्यावहारिक, सरल, रुचिपूर्ण एवं शिक्षादायक बनाया गया है।

पूर्व-मीमांसा प्रवृत्ति मार्ग से एवं उत्तर मीमांसा निवृत्ति मार्ग से सम्बन्ध रखती है। पूर्व मीमांसा कारण पर प्रकाश डालती है तथा उत्तर मीमांसा कार्य पर—जो ज्ञान है। महाभारत में दोनों मार्गों की पूर्ण व्याख्या की गई है। इसीलिये, इसे पंचम वेद कहा गया है। यह स्वयं वेद-सार है। तेलुगु में एक कहावत है, 'यदि कोई चीज ध्यान पूर्वक सुननी हो तो महाभारत सुनिये। यदि खाने की बात है गारल्लु खाइये।" इसका कारण यह है कि महाभारत मधुर एवं सरल शैली में मनुष्य को वे सभी प्रेरणायें प्रदान करता है जो मनुष्य के लिये इस संसार के लिये एवं दूसरे संसार के लिये आवश्यक होती हैं।

वेदासन चार स्तम्भों पर खड़ा है—सत्य, धर्म, शांति एवं प्रेम। उनका अभ्यास करना, अनुभव करना तथा उनके संयुक्त परिणाम, आनन्द का भोग

करना है। कृष्ण ने पाण्डवों से कहा था कि वे उस घातक जुआ खेल के विषय में कुछ नहीं जानते थे जिससे आपत्ति पर आपत्ति प्रारम्भ हुई। "उस समय मैं द्वारका में था।" उन्होंने कहा। "द्वारका का अर्थ है नव द्वार सहित किला— स्वयं यह शरीर"। कृष्ण प्रत्येक वस्तु के साक्षी हैं। उनकी स्वीकृति के बिना या उन्हें समर्पण किये बिना कोई कार्य भी असफल होगा।

कथा में प्रतीक स्वरूप पाँच पांडव पंच-प्राण हैं तथा भगवान् की सहायता से दुष्ट शक्तियों के विरुद्ध युद्ध में विजयी हुए हैं। "यतो धर्मस्य ततो जयः।"— जहां धर्म है वहीं विजय निश्चित है। महाभारत हमें यह सत्य सिखाता है। पाण्डवों के सम्मुख अनेक प्रलोभन रखे गये थे ताकि वे पुनः अधर्म के पथ पर फिसल पड़ें; किन्तु वे दृढ़तापूर्वक धर्म के पथ पर डटे रहे और वे विजयी हुए। पुरुषत्व का स्तर अनेकानेक कठिन संघर्षों में विजय प्राप्त करने के पश्चात प्राप्त हुआ है। द्विव्यत्व को विस्मृत करके निष्फल चेष्टाओं में समय खोना सचमुच बड़ा शोचनीय है; क्योंकि उसे ही व्यक्त करना था।

महाभारत असंख्य बार यह सिद्ध करता है कि भगवान् उन प्रार्थनाओं का उत्तर अवश्य देता है जो विश्वासपूर्वक एवं वेदनापूर्ण आकांक्षा से की जाती हैं। कौरवों की सभा में, द्रौपदी की विपत्ति में प्रार्थना इस मुद्दे पर एक दृष्टान्त है। मालदास नामक एक गोप था जिसने भगवान् को देखने का संकल्प कर लिया था; जैसा कि उसने एक पंडित को ग्राम मन्दिर में पवित्र ग्रन्थों की व्याख्या करते हुए सुना था। "एक श्वेत पक्षी पर आरूढ़ श्याम भगवान्" से वह बारम्बार सारा दिन प्रार्थना करता रहा और गायें मैदान में घास चरती रहीं। ग्यारह दिन व्यतीत हो गये; किन्तु "श्वेत पक्षी पर आरूढ़ श्याम भगवान्" के आगमन का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा। उन दिनों वह खाना-पीना भी भूल गया था। इसलिए, वह इतना क्षीण हो गया था कि वह चल नहीं सकता था और न बातें कर सकता था। अन्ततः, भगवान् उसकी प्रार्थना

से द्रवित हो कर एक बूढ़े ब्राह्मरण के रूप में उसके सम्मुख स्वयं उपस्थित हुए। किन्तु वह बूढ़ा ब्राह्मरण श्वेत पक्षी पर ग्रासीन नहीं था ग्रौर न तो वह काला ही था, जैसा कि पण्डित ने वर्णन किया था। इसलिए उसने ब्राह्मरण से कहा कि दूसरे दिन सात बजे प्रातः काल ग्राइये ताकि वह पंडित को बुला सके ग्रौर यह निश्चय करा सके कि वह भगवान् स्वयं हैं। पण्डित इन सब बातों पर हँस पड़ा ग्रौर इसमें सम्मिलित होने से ग्रस्वीकार कर दिया किन्तु मालदास इतना विनयपूर्ण था कि उसे सहमत होना पड़ा। दूसरे दिन सात बजने से बहुत पहले समस्त ग्रामवासी नदी के तट पर उमड़ पड़े। ग्रपने वचन के ग्रनुसार ब्राह्मरण वहां पर था, तथा मालदास ने सब लोगों को उसे दिखाया। किन्तु वे उसको नहीं देख सके। उस चरवाहे के खेल पर हंसने लगे ग्रौर इस मजाक के लिये सबको इतना दूर लाने के कारण बुरी तरह मारने तक की धमकियां देने लगे। मालदास ब्राह्मरण को साफ-साफ देख रहा था किन्तु ग्रन्य कोई नहीं देख सका। ग्राखिरकार, उसे इतना क्रोध ग्राया कि वह बूढ़े ब्राह्मरण तक गया ग्रौर यह कहते हुए उसके गाल पर एक सनसनाता हुग्रा घूंसा मारा, "सबको तुम स्वयं क्यों नहीं दिखलाते हो ?"

उस घूंसे ने समस्त दृश्य बदल दिया। कृष्ण ग्राकर्षक पोशाक में प्रगट हुए–मुसकराता हुग्रा चेहरा, मनमोहन स्वरूप एवं श्वेत पक्षी। जब ग्राश्चर्यचकित ग्रामवासी विस्मय से विमुक्त हो रहे थे, एक स्वर्गिम विमान ग्राकाश से उत-रता हुग्रा ग्राया ग्रौर कृष्ण ने मालदास को उसमें बैठने के लिए कहा। भग-वान् के समीप बैठा हुग्रा मालदास ऊपर उठा ग्रौर ग्रविलम्ब ग्रांखों से ग्रदृश्य हो गया।

प्रार्थना में निहित उस भावना मात्र को ही भगवान् सदैव महत्व देते हैं जो ग्रांखों से दृश्य एवं इन्द्रियों से गम्य सगुरण स्वरूप को सन्तुष्ट करने एवं प्रसन्न करने में समर्थ होती है। कोई इन्द्रियातीत वस्तु उस भगवान् को समर्परण

करनी चाहिये। इस प्रकार, कर्म स्वयं उपासना बन जाता है, जबकि वह समर्पण के संयोग से द्रवबिन्दु को पहुंचता है। रति या आसक्ति बीज है, भाव अंकुर है, प्रेम वृक्ष तथा सच्चिदानन्द फल है। वेदों में कर्म, उपासना एवं ज्ञान वर्ग हैं। महाभारत इन तीनों की शिक्षा देता है। इसलिये, वेदवृक्ष का फल, भारतम को कहा जा सकता है।

आपने सुना है कि धर्म की अवनति होने पर भगवान् अवतीर्ण होते हैं। हां, वेदों की अवनति धर्म की अवनति के सदृश है, क्योंकि वेद ही धर्म का मूल है। सज्जन लोग पांच कोषागारों की सदैव रक्षा करते हैं और तुम्हें भी उनके पोषण के लिये प्रयत्न करना चाहिए। वे हैं गौ, ब्राह्मण, वेद, शास्त्र, एवं शील। यदि ये खो गये तो जीवन खो गया; जीवन को मूल्य प्रदान करने वाली प्रत्येक वस्तु नष्ट हो जाती है। जहां धर्म है, वहीं कृष्ण हैं। इसलिये, तुममें से प्रत्येक स्वयं के विषय में विचार करे! कहां तक तुमने भगवान् की कृपा के लिए पात्रता प्राप्त की है? तुम उसे निकट खींचते हो; तुम उसे दूर रखते हो। तुम स्वयं को फँसाते हो, बांधते हो तथा जाल में फँस जाते हो। अपने सिवाय तुम्हारा अन्य कोई शत्रु नहीं है। अन्य कोई तुम्हारा मित्र नहीं है; तुम स्वयं अपने एक मात्र मित्र हो। गुरु तुम्हें पथ-प्रदर्शन करते हैं। तुम्हें एकाकी प्रयत्न करना है, निडर एवं निस्सन्देह होकर।

महाभारत सनातन धर्म द्वारा निर्मित बांधों की, जो इन्द्रियों एवं संवेगों की उतावली बाढ़ को महासागर (परमेश्वर) की ओर, तटों को हानि न पहुंचाये बिना संचालित करने के लिए, स्पष्ट व्याख्या की है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास—जीवन की ये स्थितियां हैं जो अपने-अपने निर्धारित नियन्त्रणों एवं नियमों के सहित व्यक्ति एवं समाज को मनुष्य में हिंस्र पशुत्व के उभाड़ से रखवाली करने के लिये हैं। आज भी महाभारत बहुत सहायक हो सकता है। यह समस्त काल के लिये तथा समस्त मानवता के लिये एक प्रेरणा है। धर्मक्षेत्र एवं कुरुक्षेत्र (दुष्ट एवं अहंकारी कौरवों का क्षेत्र) में युद्ध

निरन्तर चल रहा है तथा कुरुक्षेत्र चाहे जितना भी शक्तिशाली हो, यहां तक यादव भी इसके पक्ष में हों, जब तक भगवान् सारथी हैं, धर्म के विजेताओं की विजय निश्चित है। अब भी, चीनी सीमा पर दबाव डाल रहें हैं, देश के लिये सर्वोत्तम रक्षा-कवच धर्म है जो परमात्मा के अनुग्रह को प्राप्त करेगा। उन देशवासियों के लिये क्या सम्भव नहीं है जिन्होंने उसे (ईश-कृपा को) प्राप्त कर लिया है ?

३ श्री शंकराचार्य

(स्थान—प्रशान्ति निलयम्, शंकर जयन्ति, तिथि २८-४-६३)

अरिषड्वर्ग, मनुष्य के छः शत्रु उसके मन में जड़ जमा लेते हैं, क्योंकि वह अज्ञान के अन्धकार से परिपूर्ण है। वे चिमगादड़ एवं उल्लू जैसे रात्रि के पक्षी हैं जो प्रकाश को नहीं सहन कर सकते हैं। पत्थर फेंकने से अन्धकार नहीं भागेगा और न तलवार चलाने या गोली मारने ही अदृश्य होगा। दीपक के जलाने पर ही यह नष्ट होगा। इस सरल तथ्य से अनभिज्ञ अनेक व्यक्तियों को श्रीमद् शंकराचार्य ने यह सत्य सिखाया। इस देश के निवासी अनेक लक्ष्यों के प्रयत्न में विलीन हो गये थे, क्योंकि उनकी दृष्टि अन्धकार से मिट गयी थी। श्री शंकराचार्य ने उन्हें यह शिक्षा दी कि वेदों, उपनिषदों एवं शास्त्रों की दृष्टि में केवल एक (ब्रह्म)—"एको-द्वितीयोनास्ति"—अद्वैत ही था।

श्री शंकराचार्य एक बिल्कुल छोटे बालक थे। वे अपनी कुलदेवी की पूजा कर रहे थे; क्योंकि उनके पिता कहीं दूर चले गये थे और अपनी अनुपस्थिति में उनको पूजा करने के लिये कह गये थे। उसने प्रतिमा के सामने दूध रखा और अत्यन्त करुणाजनक प्रार्थना की कि वह (देवी) दुग्धपान करलें; क्योंकि उसकी यह कल्पना थी कि जब उसके पिता पूजा किया करते थे तब वह देवी ऐसा नित्य किया करती थी। वह अतिशय सच्चाई से रोने लगा। मां (देवी) का हृदय उसके विलाप से द्रवित हो गया तथा वह सम्पूर्ण दुग्ध पी गईं! शंकराचार्य ने देखा था कि मां (देवी) को समर्पित दुग्ध को उसके पिता परिवार के प्रत्येक सदस्य को एक छोटे चम्मच से बाँटा करते थे। किन्तु मां ने एक ही

चुस्की में प्याले को खाली कर दिया था और उसमें कुछ भी शेष नहीं रह गया था। इसलिये, वह बालक डर गया कि कहीं दूसरों के हिस्से को पी जाने का उसपर दोष लगाया जा सकता है। इसलिये, वह पुन: विलपने लगा। देवी को शंकर पर बड़ी दया आयी, क्योंकि वह प्रतिमा को सजीव मानता था। उस प्रतिमा से प्रगट होने के लिये उनको पहले ही विवश कर चुका था। किन्तु देवी ने मेरी तरह अपनी हथेली से दूध नहीं उंडेला। उन्होंने अपने मातृ-स्तनों को दबाया तथा प्याले को दूध से भर दिया। शंकर के आवेदन—उसकी वेदना-पूर्ण आकांक्षा देवी को उत्तर देने के लिये विवश करने में सफल हुई थी!

उसी प्रकार, पिछले दिन, तुम्हारे मध्य यहां बैठा हुआ यह श्रीराममूर्ति सच्ची श्रद्धा एवं वेदना के साथ चिल्लाया, "स्वामी"। उसकी स्त्री कष्ट से वेधित हो रही थी; क्योंकि उसकी साड़ी में आग लग गई थी। वह इतनी अधिक घबड़ा गई थी कि मेरा नाम नहीं पुकार सकी थी। किन्तु, यह पुकार मैंने सुन ली। मैं उस स्थान पर शीघ्र पहुंचा जो तुम्हारे कथनानुसार ४०० मील दूर है। मैंने अविलम्ब ही अग्नि को बुझा दिया।

श्रीशंकराचार्य अपनी बाल्यावस्था में मूर्ति-पूजन किया करते थे और वे सगुणस्वरूप के महत्व को जानते थे। अपने जीवन के उत्तर काल में भी, उन्होंने बहुसंख्यक मनुष्यों को सगुण अराधना करने का परामर्श दिया। छोटे बालकों को स्लेट या श्यामपट्ट के सहारे, जिस पर चित्र खींचे जाते हैं, अवश्य शिक्षा दी जाये। मन्दिर, मूर्तियाँ एवं चित्र बालकों के आध्यात्मिक विकास में स्लेट एवं श्यामपट्ट के समान हैं। किन्तु, हाथी के खिलौने से खेल करके तुम वास्तविक हाथी के सम्पर्क का अनुभव नहीं प्राप्त कर सकते हो। निराकार की कल्पना तुम तभी कर सकते हो जब तुमने आकार या सगुण की सीमा को पार कर लिया है। शंकराचार्य (संसार के लोगों को उपदेश देने के हेतु अधिकार प्राप्त करने के लिये) के मन में संसार के त्याग का विचार आया। उस समय

उन्होंने उस कार्य के लिये अपनी माता की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक समझा। अतएव, अपने गृह के समीप पूर्णा नदी में स्नान करते समय, एक दिन वह चिल्ला पड़े कि मगर ने उनके पैर को पकड़ लिया है। यह सत्य बात थी। गजेन्द्रमोक्ष की कथा के सदृश, यह संसार ही, दूसरे शब्दों में 'ऐन्द्रिक वासना' ही मगर है। जब मां दौड़ती हुई नदी के तट पर पहुंची, तब उन्होंने मां से कहा कि संन्यास लेने या साधु हो जाने पर ही वह मगर उनको मुक्त करेगा ! यह भी सत्य था; क्योंकि स्वयं को बन्धन से बचाने के लिये वैराग्य, अनासक्ति, सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग भी साधन हैं। दुखित माँ राजी होगई तथा बालक शंकर ने अपने गुरु की खोज के लिये, तथा उनके द्वारा मुक्ति के रहस्य को प्राप्त करने के लिये गृह त्याग दिया।

श्री शंकर केवल बत्तीस वर्ष जीवित रहे, किन्तु उसी अवधि में उन्होंने उपासना के अनेक सम्प्रदायों को संशोधित किया, सुसंगठित किया तथा उन्हें एक दार्शनिक सिद्धान्त, अद्वैत के झण्डे के नीचे लाये।

अपने वास्तविक अर्थ सहित वेदों के महावाक्य सब के हृदयों में गुंजारित होने लगे। 'अहंब्रह्मास्मि'. 'तत्वमसि, प्रज्ञानम् ब्रह्म'—सब की व्याख्या सरल, विश्वासप्रद तर्क, एवं मधुर मनोहर छन्दों में की गई। शंकर का अद्वैत चरम सत्य है। इसलिये, वैज्ञानिक आविष्कारों अथवा बौद्धिक उड़ानों से वह कभी कम्पित नहीं होता है; अपितु वह परिपुष्ट ही होता है। वह पदार्थ एवं प्राण (शक्ति) के, काल एवं स्थान के, विश्व एवं जीव के एकत्व की, किन्तु माया के अवगुण्ठन से दृश्यमान् ब्रह्मन् की बातें करता है। माया का वह अवगुण्ठन भी आदि की ही एक क्रिया है।

श्री शकराचार्य यह जानते थे कि अद्वैत के लिये गहन साधना की आवश्यकता होती है जो मनुष्य के मन से अहंकार के सभी चिह्नों को एवं द्वैत के भावों को दूर कर देगा। विश्व-सार के साथ अपने वास्तविक ऐक्य के

ज्ञानोदय के लिये आरम्भिक अनुशासन के रूप में उन्होंने योग, भक्ति एवं कर्म के नियमों की शिक्षा दी। उनके मतानुसार ये बुद्धि को तीव्र करते हैं, भावों को निर्मल बनाते हैं तथा हृदय को शुद्ध करते हैं। प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक स्थान में तथा पूर्ण मात्रा में ईश्वरता की चेतना अद्वैत है।

श्री शंकराचार्य ने सत्संग को साधना की प्रथम कड़ी बताया है क्योंकि सुधी एवं सज्जनों का सहवास अनासक्ति या निवृत्ति तथा मौन एवं एकान्तवास के प्रेम को विकसित करता है। वह मोह को विलीन करता है तथा अर्जुन के मतानुसार गीता श्रवण का वह परिणाम था। जब ऐसा घटित हो जाता है, तब वह साधक तत्-त्वम्—इसके एवं उसके यथार्थ में इसके एवं उसकी एकरूपता में स्थित हो जाता है। हाँ, उस एकरूपता की पहचान ही मुक्ति की प्राप्ति है।

४ नाम स्मरण की महिमा

(प्रशान्ति निलयम् दिनाँक २९-४-६३)

यद्यपि मैं मालायें स्वीकार नहीं करता हूं किन्तु माला को सौरभ प्रदान करने वाली भक्ति को अवश्य ही स्वीकार करता हूं। उन्होंने बताया कि देवताओं का यशोगान करने के लिये वेद हैं—"देवानाम् स्तुत्यर्थम् वेदा:" तथा कलियुग में मुक्ति पाने के लिये हर व्यक्ति को नाम स्मरण का अवलम्बन लेने के लिए कहा। इस युग के मनुष्यों के लिये नाम स्मरण ही क्यों पर्याप्त समझा जाता है ? क्योंकि अन्य साधनायें कष्टमय हैं। उसके लिये कठोर अनुशासन एवं प्रारम्भिक प्रयत्नों की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। पुन: नामस्मरण में एक और लाभ है—ज्योंही नाम का उच्चारण किया जाता है त्योंही नामी दृष्टि में मूर्तिमान हो जाता है। जब, तुम रूप का ध्यान करते हो तो सम्भव है तुम्हें नाम सदैव ध्यान में न आए तथा तुम पहचान न पाओ। वस्तु विशेष के एक से अधिक नाम हो सकते हैं तथा तुममें भ्रान्ति हो सकती है। किन्तु, नाम लेते ही स्वरूप स्वत: मानस पटल पर अंकित हो जाता है।

भारतवर्ष में, इंद्रियों के प्रति आसक्ति को दूर करने के लिये एवं क्षणिक सुखों के पीछे मन की दौड़ को रोकने के लिये युगों से ही नियमों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है। इस देश के पवित्र साहित्य में अंकित अनेक सन्तों का अनुभव हमारे पास है। विचार, वाणि एवं कर्म की सभी क्रियायें इस उच्चतर उद्देश्य के हेतु परिमार्जित की जाती हैं। मनुष्य शिवम् है, शवम् नहीं। उसके तीन नेत्र हैं, जो सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि से प्राप्त होते हैं। अग्नि नेत्र आन्तरिक नेत्र हैं जो यौगिक क्रियायों द्वारा ही खोले जा सकते है। त्रिनेत्र शिव भूत, वर्तमान एवं भविष्य को देख सकते हैं। एक दश वर्षीय बालक, जिसे

आप ने देखा है उसकी उसी तस्वीर को आप स्मरण कर सकते हैं; किन्तु वह जैसा इस समय है या आज से दस वर्ष बाद जैसा होगा, इसे आप नहीं देख सकते हैं। किन्तु यदि आप अतीत, वर्तमान एवं भविष्य को देखने में समर्थ त्रिनेत्र को उपार्जित कर लें तो आप तीनों (कालों को) देख सकते हैं तथा आप काल एवं स्थान के स्वामी बन जायेंगे।

हर प्रकार के साधना के फलों कोप्र दान करने के लिये **नाम** ही पर्याप्त है। इसे सभी शास्त्र स्वीकार करते हैं तथा सभी साधक भी, जो अपने संघर्षों एवं सफलताओं का लेखा छोड़ गये हैं। उनसे ज्ञात होता है कि नाम का सभी लोग समान रूप से उच्चारण एवं ध्यान कर सकते हैं। यह निश्चय है कि नाम सर्वव्यापी सत्ता की एक सीमा है, क्योंकि उसके एक पहलू के द्वारा अज्ञात को ज्ञात कराता है। अपने रक्षार्थ एक साधन के रूप में उपाधि को धारण करो तथा जन्म एवं मरण के सागर के पार पहुंचाने वाली नौका के रूप में इसे ग्रहण करो।

नाम स्मरण करते समय, स्वरूप की समस्त मधुरता एवं तत्सम्बद्ध समस्त महिमा तुम्हारी स्मृति में अवश्य आनी चाहिये तथा जिस प्रकार मिठाई की प्याली, जो तुम्हें अति प्रिय है, की जब तुम याद करते हो तो तुम्हारे मुख में पानी आजाता है। उसी प्रकार जब तुम रूप का ध्यान करते हो तब तुम्हारे मन में अवश्य 'पानी' आना चाहिये। जो नाम तुम्हारे हृदय को मुग्ध करता है, उसी को चुनो। धन दौलत से जो सुख एवं सन्तोष प्राप्त हो सकता है, उससे सौ गुणा अधिक सुख एवं सन्तोष जब **नाम** का जप करने से ही प्राप्त हो मकता है, तब धन के पीछे क्यों दौड़ते हो? भगवान् ने कहा है कि जहां **उनका नाम** गाया जाता है, वहीं मैं रहता हूँ—"तत्र तिष्ठामि" वहीं अधिष्ठित हो जाता हूं। वहां से वह नहीं हटेगा। अतएव निर्मल मन की बोली बोलने वाली रसना उसे पाने के लिये पर्याप्त है।

भगवान् कल्पवृक्ष हैं। तुम्हें उनके पास जाना है तथा उनसे घनिष्टता बढ़ानी है। तुम उनका अनुग्रह अवश्य प्राप्त करो तथा उनसे दूर घसीटने

वाली सारी शक्तियों को पीछे ठेल कर तुम सदैव उनके निकट रहो। उनकी लीलागान करने या पूजन करने में यदि तुमसे कोई प्राविधिक त्रुटि भी होती, तो भी परवाह मत करो। सभी त्रुटियों को भक्ति क्षम्य बना देती है। यथार्थ अमृत पीतल के प्याले में भी उंड़ेला जाय, तो भी अपने स्वाद को नहीं खोयेगा। किन्तु, रत्नमण्डित स्वर्ण के प्याले में भी उंड़ेला गया विष अपने प्राणघातक तत्व को नहीं छोड़ेगा।

भक्ति भगवान् को बाध्य कर देगी कि वे स्वयं को तुम्हें भेंट के रूप में प्रदान करें। राज्याभिषेकोत्सव एवं सभी समारोह समाप्त हो गये तथा सभी महत्वपूर्ण व्यक्तियों को भेंटें भी अर्पण की जा चुकीं, तब सीताजी को स्मरण आया कि मारुति को सब लोग भूल गये। उस भवन में राम, सीता एवं मारुति के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। राम विस्मय में पड़ गये कि उसे क्या दिया जाय ? उन्होंने सलाह दी थी "विवाह के समय राजा जनक ने जो रत्नजटित अंगूठी उन्हें दी थी, वही सर्वोत्तम भेंट होगी, क्योंकि, "जिसदिन तुम्हारे पिता ने तुमको मुझे प्रदान किया, उसी समय उन्होंने यह अँगूठी मुझे दी थी। चूंकि मारुति ने तुमको मुझे दूसरी बार प्रदान किया, इसलिये मैं इसको उसे ही प्रदान करुँगा।" जब अंगूठी उनके हाथ में रखी गई, तब मारुति पूर्णतः प्रसन्न नहीं दिखाई पड़े। निश्चय ही, उन्होंने भेंट की प्रशंसा नहीं कि, क्योंकि सबकी आंखों के सामने यह नहीं दी गई तथा उनकी उपेक्षा की गई ! किन्तु, मारुति ने उसे अपने कान-के निकट रखा। मानो उन्होंने यह जानने क़ी चेष्टा की कि उससे कौन सी ध्वनि निकल रही है। उसने उसे अपने दांतों से काटा तथा उसकी बनावट में झाँकने की कोशिश की।

राम ने इसका कारण पूछा तथा सीता भी जानने को उतावली थीं। मारुति ने कहा,—"मैं यह पता लगाना चाहता हूं कि क्या इसमें **रामनाम** है,

जिसको मैं सभी वस्तुओं से पृथक् चाहता हूं।" तब राम ने उसे हृदय से लगाया तथा कहा, "मारुति ! मैं दूसरी क्या भेंट तुमको दे सकता हूं ? मैं **स्वयं** को तुम्हें भेंट स्वरूप प्रदान करता हूं। **मुझे** स्वीकार करो।" इसलिये, यही कारण था कि जब प्रत्येक को भेंटें प्रदान की गई थीं तब उसकी उपेक्षा हुई थी। यही कारण हैं कि जहाँ भी मारुति है वहां राम को रहना ही है तथा जहां भी राम हैं वहाँ मारुति को अनिवार्य रूप से उपस्थित रहना है। भक्त के लिये नाम इतना अधिक मूल्यवान है। यह **स्वरूपी** को झुकने एवं वरदान देने के लिए बाध्य करता है।

तनिक इस पर विचार करो। आयु के साथ स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है तथा चेहरा-मोहरा बदलकर दूसरा ही हो जाता है। राम एवं कृष्ण अपने स्वरूप में भिन्न थे। उनके कार्य भी भिन्न थे। किन्तु जब तुम यह कहते हो कि वे दोनों एक रूप थे तो भी लोग सहमत हो जाते है। अच्छा, उनसे कहो कि राम ने गोवर्धनगिरि उठाया तो वे इसे नहीं स्वीकार करेंगे। नाम के साथ लीला, महिमा एवं उपदेश के विशिष्ट सौरभ का साहचर्य रहता है। अनेक नामों में से प्रत्येक को एक नाम से विशिष्ट लगाव रहता है जो उनके स्वभाव एवं संस्कार तथा पूर्व जन्मों में निर्मित पैतृक संवेगों एवं प्रवृत्तियों के अनुरूप होता है। मीरा "गिरिधारी" नाम से प्यार करती थीं, क्योंकि वह **लीला** उसे भगवान् की विभूति के महत्तम प्रतीक के रूप में सबसे अधिक महत्वपूर्ण लगती थी। जो नाम तुम्हें आनन्दित करता है, जो मधुरतम एवं पवित्रतम प्रेम को उत्पन्न करता, है, वही तुम्हारे लिये सर्वोत्तम है। 'रमति इति रामः' 'हरति इति हरः'— जो वस्तु आनन्द देती है, वह **राम** है तथा जो माया को नष्ट करती है वह **हर** या **हरि** है।

जब उस मनोहर छोटे से बालक ने, जो सूरदास की लाठी को पकड़े था और वृन्दावन की सड़क पर ले जा रहा था, अपने नाम 'कृष्ण' की

घोषणा करते हुए, अकस्मात उन्हें त्याग दिया तब सूरदास दुःख से पराभूत हो गये। अपनी दोनों भुजाओं को फैलाये हुए उसे पकड़ने के लिये तथा उसे अपने हृदय से लगाने के लिये वे इधर-उधर दौड़े, किन्तु कृष्ण अदृश्य हो गये। तब सूरदास चिल्ला पड़े, "तुम मेरी पकड़ से भाग सकते हो, किन्तु मैंने तुझको अपने हृदय में रखा है। तुम वहां से कभी नहीं, कभी नहीं भाग सकते हो।" प्रह्लाद भी ऐसा ही था। उसमें कोई दूसरा भाव नहीं था। वह दूसरा कुछ नहीं देखता था। हाथी, सर्प विष एवं अग्नि—उसके लिये वे सभी वस्तुएँ स्वयं नारायण तत्व थीं। तब उसे वे कैसे हानि पहुंचा सकती थीं ?

मन रूपी हिरण्यकश्यप के लिये नाम नृसिंह है। राजसिक ऐवं तामसिक शक्तियाँ तुम्हारे हृदय को अधिकृत कर लेती हैं और तुम्हारा पतन करती हैं। जिस प्रकार, तुम्हारी रक्ताल्पता आदि ठीक करने के लिये कैलशियम एवं विटामिन की गोलियाँ दी जाती हैं, उसी प्रकार, मानसिक कमजोरी एवं अन्य रोगों से मुक्त होने के लिये नाम रूपी गोलियां ग्रहण करो। कुछ गले की टिकियाँ होती हैं, जिन्हें कफ़ दूर करने के लिये तुम मुख में रखते हो और उसका धीरे धीरे स्वाद लेते हो। उसी प्रकार **वासनाओं एवं भावों के कष्टकारक वेगों से छुटकारा पाने के लिए नाम को अपनी जीभ पर रखो और इसका स्वाद धीरे धीरे लो। रसना पर नाम का दीप जलाओ और यह तुम्हारे अभ्यन्तर को आलोकित करेगा यह तुम्हारे मन को साफ करेगा तथा उन के मन को भी साफ करेगा जो तुम्हारे नाम-उच्चारण के समय इसे सुनते हैं।** जीभ पर नाम का रखना वैसा ही है जैसा तुम्हारे घर में प्रवेश द्वार की ढयोढ़ी पर दीपक का रखना।

नाम स्मरण सर्वोत्तम साधन है। यह सर्वाधिक लाभदायक सत प्रवर्त्तन है।

यह उच्चतम 'जपम्' एवं लाभप्रद 'तपम्' है। इसी साधन से कुचेला ने भगवान् की कृपा प्राप्त की थी। नाम को अपने प्रेम से भर दो, जब कभी तुम इसे दुहराते हो तथा इसे भक्ति से गीला करदो। तुम सबके लिये यह सरलतम पथ है।

५ शिव शक्ति

(प्रशान्ति निलयम् गुरु पूर्णिमा दिवस, तिथि ६-७-६३,
समय ६.३० सायं)

(निचले खंड के वैयक्तिक कक्ष में बाबा को चक्करदार सीढ़ियों से उतारा गया; क्योंकि उस मंगलमय दिवस पर आये हुए सहस्रों भक्तों को दर्शन देने का उन्होंने आग्रह किया। भयंकर रोग से वे पीड़ित थे और २९ जून, शनिवार प्रातःकाल से आठ दिनों तक, सायं ६ जुलाई तक शय्या पर पड़े थे। उनका बायाँ हाथ, पैर एवं आँख ग्रसित थी। उनके दाहिने हाथ पर भी लकवे का हल्का असर था; वाणी अस्पष्ट थी तथा चेहरा भी झटके मार रहा था। प्रार्थना भवन में चाँदी की कुर्सी पर उन्हें बैठाया गया तथा उनके हाथ-पैर को ठीक स्थिति में रखा गया। ज्योंही वे बैठ गये, उन्होंने अधोलिखित संदेश दिया, जिसका अर्थ अनूदित हुआ एवं घोषित किया गया)

"यह स्वामी की बीमारी नहीं है। किसी व्यक्ति को बचानेके लिये स्वामी ने इस बीमारी को अपने ऊपर लिया है। स्वामी को कोई बीमारी नहीं है और न वह किसी समय बीमार होंगे। तुम्हें अवश्य प्रसन्न होना है; क्योंकि, एक मात्र वही स्वामी को प्रसन्न करेगा। यदि तुम शोक करोगे तो स्वामी प्रसन्न नहीं होंगे। तुम्हारा आनन्द ही स्वामीं का भोजन है।"

(तब बाबा ने कस्तूरी को बोलने के लिये संकेत किया तथा उनके संक्षिप्त भाषण के समाप्त होने पर, बाबा ने ध्वनि विस्तारक को अपने सामने रखने की कामना की। इसके द्वारा उन्होंने पूछा "विनपिस्तुण्डा !" यद्यपि उन्होंने

बारम्बार यह पूछा किन्तु उनकी आवाज इतनी अस्पष्ट थी कि कोई भी उसका अर्थ नहीं समझ सका। तब उन्होंने पानी के लिए संकेत किया। पानी के लाने पर, उन्होंने अपने काँपते हुए दाहिने हाथ से थोड़ा जल पीड़ित बायें हाथ एवं बायें पैर पर छिड़का। दाहिने हाथ से अपने बायें हाथ को उन्होंने थपथपाया। अविलम्ब, उन्होंने अपने दोनों हाथों का प्रयोग अपने बायें पैर को थपथपाने के लिए किया। वह स्पर्श ही इसे ठीक करने के लिए पर्याप्त था। एक क्षण में ही उन्होंने रोग को भगा दिया! वे बोलने लगे! यह वही संगीतम स्वर था।

"द्विक्कू लेनिवानिकी देवुड़े गतिः"—"जिनकी कोई शरण नहीं है उनकी शरण ईश्वर है।" ठीक यही कारण है कि मैंने एक दीन भक्त को होने वाले रोग को अपने ऊपर लिया था। यह सम्पूर्ण रोग उसे होने वाला था तथा इसके साथ चार हृदय रोग का आक्रमण भी। वह जीवित नहीं रह सकता था। इसलिये अपने भक्त संरक्षण के धर्म के अनुसार, मुझे बचाना पड़ा था। निश्चय ही, यह प्रथम अवसर नहीं है कि उन व्यक्तियों के रोग को जिन्हें मैं बचाना चाहता हूँ अपने ऊपर लिया है। पूर्व कालीन शिरडी के साईराम रूप में भी मैंने यह दायित्व लिया था। आप लोगों ने जिस बीमारी को देखा है वह उस विशिष्ट भक्त के लिये अत्यधिक थी। इसलिये, उससे स्वयंग्रसित होकर मुझे उसे बचाना था। यह मेरी **लीला** है; मेरी प्रकृति है। शिष्यरक्षण मेरे उन कार्यों का एक अंश है जिसके लिये मैं अवतरित हुआ हूँ।

विगत सप्ताह में जो व्यक्ति मेरे निकट थे, वे मुझसे उस व्यक्ति का नाम पूछ रहे थे, जिसकी मैंने रक्षा की थी। मैंने उनसे कहा कि उनको उस व्यक्ति पर क्रोध आजायेगा; क्योंकि वे कहेंगे, "एक आदमी को बचाने के लिए स्वामी को इतना अधिक कष्ट उठाना पड़ा।" तब, उन लोगों ने उत्तर दिया, कि वे लोग उस व्यक्ति का आदर करेंगे; क्योंकि उसकी असाधारण भक्ति ने शनिवासर के प्रातःकाल उसकी रक्षा करने के लिये स्वामी को दौड़ने के लिये विवश किया था।

लोगों ने कुछ व्यक्तियों का नाम लेकर भी मुझसे पूछा, विशेषता: जिनके बायें अंग में लकवा हुआ था ! यह और भी हँसने की बात है कि जिसकी मैं रक्षा करता हूँ उसकी रक्षा पूर्णतया करता हूँ । उसके रोगग्रस्त होने तक मैं प्रतीक्षा नहीं करता हूँ और न रोग का एक अंशमात्र भी उसमें छोड़ता हूँ ताकि कालान्तर में वह पहचाना जा सके । जो अटकलबाजियां एवं आशंकायें आप लोग करते हैं, वह सब मुझे बहुत खिलवाड़ दीखता है ।

शिरडी में भी मैंने दादा साहेब, नन्दराम, बलवन्त आदि को इन साधनों द्वारा बचाया था । बलवन्त को प्लेग होना निश्चित था; किन्तु गिल्टी मैंने लेली तथा लड़का बच गया ।

कदाचित्, यह दीर्घतम् समय था जब मैंने, अपने भक्तों को चिंतित रखा। यह हृदयरोग के आक्रमण के कारण था, जो भक्त के ऊपर कालान्तर में आता और उससे भी उसे बचाना था । तदनन्तर एक दूसरा भी कारण है कि आठ दिन की अवधि तक क्यों प्रतीक्षा करनी पड़ी ? अच्छा, इसका कारण मैं बताऊँगा । इसका अर्थ यह है कि अपने सम्बन्ध में, उस सम्बन्ध में जिसे मैंने अबतक नहीं बताया था, जो विगत ३६ वर्षों तक अपने भीतर ही रखता था, अवश्य बताऊँगा । इसे उद्घोषित करने का समय आगया है । यह पवित्र दिन है और मैं तुमको बताऊँगा ।

तुम जानते हो कि जिस दिन मैंने अपनी **पहचान, अपना उद्देश्य** एवं **अपने अवतरण** की अभिव्यक्ति करने का निश्चय किया था, उसी दिन मैंने यह घोषणा की थी कि मैं **'आपस्तम्भ सूत्र** एवं **'भरद्वाज गोत्र'** का हूँ । यह **भरद्वाज** एक महर्षि थे, जिसने पूरे सौ वर्ष तक वेदों का अध्ययन किया; किन्तु वेदों को अनन्त समझकर उन्होंने अपने जीवन को बढ़ाने के लिये तपस्या की, तथा इन्द्र के द्वारा एक-एक शताब्दी की दो वृद्धियां प्राप्त कीं । तब भी वेदों का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सका । इसलिये, उन्होंने इन्द्र से एक सौ वर्ष और मांगे । इन्द्र ने उन्हें तीन विशाल पर्वत श्रेणियों को दिखाया और कहा, "तुमने तीन

शताब्दियों तक जो अध्ययन किया है, वह इन तीन पर्वत श्रेणियों में से केवल एक मुठ्ठी भर होता है। इसलिये, वेदों को समाप्त करने के प्रयत्न को त्याग दो। उसकी जगह **यज्ञ** करो। मैं इसे तुम्हें समझाऊँगा और यह तुमको वैदिक अनुशीलन का सम्पूर्ण एवं समस्त फल प्रदान करेगा।"

भरद्वाज ने **यज्ञ** करने का निश्चय किया तथा इन्द्र ने उन्हें सिखाया कि यह कैसे किया जाता है। सभी तैय्यारियां पूरी की गईं। ऋषि की इच्छा थी कि **शक्ति** यज्ञ की अध्यक्षता करें तथा आशीर्वाद दें। इसलिये, वे कैलाश पहुंचे; किन्तु उनकी प्रार्थना प्रस्तुत करने के लिये यह शुभ समय नहीं था। **शिव** एवं **शक्ति** एक प्रतियोगात्मक नृत्य में जुटे थे और यह जानने की चेष्टा कर रहे थे कौन दीर्घतर समय तक नृत्य कर सकता है। इस प्रकार आठ दिन व्यतीत हो गये तब शक्ति ने भरद्वाज को शीत में खड़े देखा। एक जरा सी मुस्कान के साथ उनको देखा तथा पूर्ववत् नृत्य करने लगीं। ऋषि ने उनकी मुस्कान को ग़लत समझा कि यह मुसकराहट उन्हें देखने की रूखी अस्वीकृति है। इसलिये, वे कैलाश की ओर पीठ घुमाये नीचे उतरने लगे। वे संकट में पड़ गये, उनके वाम पैर, वाम हाथ एवं नेत्र एक झटके से क्रिया हीन होगये। उनको गिरते हुए शिव ने देखा उनके पास वे आये और उन्हें सान्त्वना दी। भरद्वाज से बताया गया कि शक्ति ने उन्हें तथा उनके यज्ञ को सचमुच वरदान दिया था तब शिव ने अपने कमण्डल से जल डालकर पुनः शक्ति दी एवं स्वस्थ किया। शिव एवं शक्ति दोनों ने ऋषि को वरदान दिया। उन्होंने कहा कि वे दोनों यज्ञ में उपस्थित रहेंगे।

यज्ञ के समाप्त होने पर, वे इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने ऋषि को और भी वरदान दिये। शिव ने कहा, "हम लोग मानव स्वरूप धारण करेंगे तथा भरद्वाज गोत्र में तीन बार जन्म लेंगे:—अकेले शिव **शरडी साई बाबा** के रूप में, पुट्टपर्ती में शिव एवं शक्ति दोनों एक साथ **सत्यसाई बाबा** के रूप में तथा तदनन्तर, अकेले शक्ति **प्रेम साई** के रूप में।" तब शिव को उस बीमारी का

स्मरण आया, जो कैलाश पर शीत में बर्फ पर पड़े प्रतीक्षा करते हुए आठवें दिन भरद्वाज पर आयी थी। उन्होंने दूसरा आश्वासन दिया, "शक्ति ने आपके प्रति कैलाश पर आठ दिन तक जो उपेक्षा प्रदर्शित की उसके प्रायश्चित रूप में शक्ति को आठ दिनों तक झटकों से पीड़ित होना पड़ेगा तथा मैं जल छिड़कर बीमारी के सभी लक्षणों से मुक्त कर दूंगा, जैसे मैंने तुम्हारी बीमारी को दूर करने के लिये कैलाश पर यज्ञ किया था।"

यह उसी आश्वासन का कार्यान्वियन था, जो तुम लोगों ने अभी देखा है। इसे घटित होना था, इस झटके को एवं इस उपचार को। त्रेतायुग में प्रदान किये गये आश्वासन को पूरा करना था। मैं तुमसे, अब, कह सकता हूं कि दीन-दुःखी भक्त, जिसे झटके आने थे और जिन्हें मैंने अपने ऊपर लिया था, एक सरल बहाना था जिसे काम में लाया गया। तुम देखते हो कि रेल के एक ही डिब्बे को खींचने के लिये रेल का इंजन प्राप्त नही होता है। खींचे जाने को अनेक डिब्बों के आने तक प्रतीक्षा करनी होती है और तब इंजिन को सक्रिय किया जाता है। उसी प्रकार, बीमारी को अवश्य भोगना था, भक्त को अवश्य बचाना था, आश्वासन का पालन करना था, **रहस्य** का खोलना था, देवत्व को इस **भव्य चमत्कार** की अभिव्यक्ति द्वारा अधिक स्पष्टता पूर्वक उद्-घोषित करना था। इस एक घटना के द्वारा ये सब चरितार्थ किये गये।

मैं तुम लोगों से एक बात और कह दूं:—"इस अवतार के कार्य को कोई भी नहीं रोक सकता है। इन दिनों जब मैं ऊपर था, कुछ व्यक्ति मूर्खतापूर्वक यह कह रहे थे, "साईबाबा का सब कुछ समाप्त है।" और उन लोगों ने पुट्ट-पर्ती आने वाले अनेक व्यक्तियों को वापस कर दिया ! **कुछ ने कहा कि मैं समाधि में हूं। मानो मैं एक साधक हूं।** कुछ लोग डर गये कि मैं काले जादू का शिकार हो गया। मानो कोई भी वस्तु मुझे दुष्प्रभावित कर सकती है ! इस अवतार की महिमा दिन-प्रति दिन बढ़ती जायेगी। पूर्व समय में जब छोटे से बालक द्वारा गोवर्धन गिरि उठाया गया था, गोपियों एवं गोपालों ने समझा

था कि कृष्ण भगवान् थे। अब एक ही गोवर्धन गिरि नहीं, समस्त पर्वतमाला उठायी जायेगी। तुम लोग देखोगे! धैर्य रखो, विश्वास रखो! कल प्रातः-काल मैं तुममें से प्रत्येक को **नमस्कारम् आशीर्वाद** दूंगा, जिसे तुमने आज नहीं पाया।

६ भक्त रक्षण

(प्रशान्ति निलयम, दिनाँक ७ जुलाई, १९६३)

कल मैं जब प्रार्थना भवन में आया, तब तुम लोगों के अनुभूत दुख को देख सका था। इसका कारण यह था कि तुम लोगों ने मुझे इस शरीर से, जिसे बीमारी हुई थी, एक रूपता प्रदान की। यदि तुमको **मेरी सत्यता** का ज्ञान होता तो दुखी नहीं होते। वस्तुतः, यदि तुम अपनी सत्यता को समझे होते, तो वही पर्याप्त होता। यह बीमारी आयी एवं चली गयी; किन्तु मैं हर समय इसका स्वामी बना रहा। एक दिन, जब, यह अपने चर्म बिन्दु पर पहुंची, तब मैं इसके आचरण को ध्यानपूर्वक देख रहा था तथा इसको स्वधर्म समाप्त करने का निर्देशन कर रहा था। चूँकि, मैंने इसे अपने ऊपर धारण किया था; इसलिए, इसे स्वधर्म पालन की अनुमति मुझे अवश्य देनी थी। कुछ लोगों को आशंका थी कि अभी मैं दक्षिण (भारत की ओर गया था, (वहां किसी के द्वारा) मेरे ऊपर काला जादू चला दिया गया तथा झटका उसी का परिणाम था। तुमसे मैं यह कहता हूं कि मुझे दुष्टता प्रभावित नहीं कर सकती है, कोई वस्तु मुझे हानि नहीं पहुंचा सकती है। मैं स्वामी हूं–वह शक्ति हूं, जो अन्य सभी वस्तुओं को पराभूत कर लेती है। मैं जानता था कि कुछ व्यक्ति कह रहे थे कि मैं मौन या समाधि में हूं। अब मुझे मौन का व्रत क्यों करना चाहिये? यदि मैं मौन रहूं, तो तुम लोगों की सुधारने तथा तुम सबको जीवन के उद्देश्य की अनुभूति कराने के **अपने कार्य** को कैसे पूरा करता? मुझे समाधि क्यों लगानी चाहिए? मैं तो स्वयं आनन्दस्वरूप एवं प्रेमस्वरूप हूं। यह डगमगाते सन्देह कर्त्ता या अबोध तथा नौसिखिए व्यक्ति का काम है, जो ऐसी वार्ता पर कान देंगे। सच्चा भक्त ऐसे समाचारों की अवहेलना करेगा

भक्तों के लिए यहां के आठ दिन महान् तप के दिन थे। **स्वामी** के अतिरिक्त उनमें अन्य **कोई विचार** नहीं था।

एक बार श्रीकृष्ण ने बहाना किया कि वे भयंकर एवं असह्य सिरदर्द से पीड़ित थे। उन्होंने वह अभिनय नितान्त उतनी ही वास्तविकता के साथ किया, जितनी वास्तविकता से मैंने गत सप्ताह किया। उन्होंने अपने सिर के चारों ओर गर्म कपड़ा लपेटा और बिस्तर पर छटपटाते हुए करवटें लेते रहे। उनकी आँखें लाल थीं तथा **वे** प्रत्यक्ष कष्ट में थे। चेहरा भी सूजा हुआ एवं पीला दिखायी देता था। रुक्मिणी, सत्यभामा तथा अन्य रानियाँ सब प्रकार की औषधियों एवं उपशामकों के साथ इधर-उधर दौड़ रही थीं। किन्तु वे अप्रभावकारी थे। अन्ततः उन्होंने नारद से सलाह की। वे स्वयं कृष्ण से सलाह करने रोग कक्ष में गये कि कौन सी औषधि उन्हें ठीक करेगी।

तुम्हारे विचार से कौन सी औषधि हो सकती थी? **कृष्ण ने एक सच्चे भक्त की चरण रज लाने के लिए उनको निर्देश दिया।** एक पल में ही नारद ने भगवान् के कुछ प्रख्यात भक्तों की उपस्थिति में ही स्वयं को प्रकट किया; किन्तु वे भी अपने चरणरज को, अपने भगवान के द्वारा औषधि के रूप में प्रयोग करने के लिए, स्वयं को बहुत तुच्छ समझते थे।

वह एक प्रकार का अहंकार है। "मैं तुच्छ हूं, नीच हूं, छोटा हूं, व्यर्थ निर्धन, पापी एवं हीन हूँ"—ऐसी भावनायें भी अहंवादी हैं। जब, अहंकार निकल जाता **है**, तब तुम बड़े या छोटे का अनुभव नहीं करते हो। भगवान् द्वारा अभीप्सित धूल किसी ने नहीं दिया। **उन** लोगों ने कहा कि वे बिल्कुल व्यर्थ हैं। निराश होकर नारद रोगशय्या के पास वापस आये। तब, कृष्ण ने उनसे पूछा, "क्या आप ने बृन्दावन में, जहां गोपियाँ रहती हैं, कोशिश की?"

तब, रानियां इस निर्देश पर हँस पड़ीं और नारद ने भी डरते हुए पूछा, "वे भक्ति के विषय में क्या जानती हैं?.' तिस पर ऋषि को वहां शीघ्र से

ही जाना पड़ा। जब गोपियों ने यह सुना कि वे (कृष्ण जी) बीमार हैं तथा उनके चरणों की धूल उनको ठीक कर सकती है, तब, बिना किसी अन्य भावना के, सबने अपने पैर की धूल झाड़ी तथा उनके हाथों को उससे भर दिया। जिस समय नारद द्वारका पहुंचे, सिरदर्द गायब हो चुका था। यह ठीक पांच दिन का नाटक था। इसका उद्देश्य यह सिखाना था कि **आत्मनिन्दा भी अहंकार है तथा भगवान् के उपदेश का सभी भक्तों द्वारा, बिना किसी भ्रम या विलम्ब के अवश्य पालन होना चाहिए।**

जब मैंने यह कहा कि किसी दूसरे पर आने वाले रोग को मैंने अपने ऊपर लिया था और वह इस रोग को झेल नहीं सकता था, या इससे बच नहीं पाता, तब तुममें से अनेक ने सोचा, "एक व्यक्ति के लिए स्वामी ने हममें से इतने अधिक लोगों को शोक निमग्न क्यों किया ?" अच्छा, यद्यपि समस्त अयोध्या रोती रही, तब क्या राम बन के लिए नहीं गए ? भक्त रक्षण का मेरा धर्म अवश्य पूरा होगा और बीमारी का धर्म भी अवश्य पूरा किया जायेगा। इन्द्र चाहे जितना भी शक्तिशाली था, कृष्ण वर्षा को रोक सकते थे; किन्तु इन्द्र को अपने धर्म का पालन करना था और गौओं तथा गोपालों की रक्षा करने के लिए गोवर्धनगिरि को उठाकर कृष्ण ने अपनी **ईश्वरता** को प्रकाशित किया ! इस मामले में भी, वही **लीला** है : इस मानवीय आकार में निहित ईश्वरता को संशयपूर्ण संसार के सामने प्रदर्शित करने के लिए अवसर का उपयोग करना है। कल, मैंने तुमसे बताया था कि यह भाग्यशाली भक्त ऋषि भरद्वाज को अतीत में दिये गये वचन को कार्यान्वित करने के लिए एक साधन मात्र था। तुमसे अपनी वास्तविक **प्रकृति** को बताने के लिए इसने काम किया। वस्तुतः तुम लोग भाग्यशाली हो कि गुरुपूर्णिमा के पवित्र दिवस पर मेरे ईश्वरत्व के इस भव्य प्रमाण को देख सके।

शिवम् के बिना कोई सत्यम् नहीं है तथा सुन्दरम् के बिना कोई शिवम् नहीं है। केवल सत्य ही मंगल प्रदान कर सकता हैं तथा केवल मंगल ही

वास्तविक सौन्दर्य है । सत्य ही सौन्दर्य है, आनन्द ही सौन्दर्य है, मिथ्यापन एवं शोक असुन्दर हैं, क्योंकि वे अस्वाभाविक हैं । व्यक्ति में बुद्धि, चित्त एवं हृदय यह तीन केन्द्र जहां ज्ञान कर्म एवं भक्ति निवास करते हैं । सत्य की प्रभा शिव को व्यक्त करती है । उच्चतर विवेक द्वारा स्वीकृत कर्म को करो, अज्ञान जन्य कर्म को नहीं करो । तब, सर्व कर्म शिवम्, मंगलकारक, लाभदायक एवं शुभ होंगे । शिवम् की अनुभूति ही सुन्दरम् कही जाती है, क्योंकि यह वास्तविक आनन्द प्रदान करती है । यही मेरी यथार्थता है । यही कारण है कि मेरी जीवनी को 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' की संज्ञा दी गई है ।

ज्ञानाश्रित कर्म करो । ज्ञान यह है कि सभी एक हैं । कर्म को भक्ति पूरित होने दो । अर्थात्, विनम्रता, प्रेम, करुणा एवं अहिंसा के भाव से कर्म करो । भक्ति को ज्ञान-पूरित होने दो । अन्यथा, यह गुब्बारे के समान हल्की होगी जो हवा के ऊपर या वायु के झोंके के साथ उड़ता है : ज्ञान मात्र हृदय को शुष्क बना देगा । भक्ति इसको सहानुभूति के साथ कोमल बनाती है तथा कर्म हाथों को कुछ करने के लिये प्रदान करता है जो तुम्हारे भाग्य में यहां रहने के लिये प्रदत्त प्रत्येक क्षण को पावन या शुद्ध कर देगा ।

यही कारण है कि भक्ति को उपासना, निकट रहना, उपस्थिति का अनुभव करना, पड़ोसीपन की मधुरता में हाथ बटाना—के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है । उपासना की आकांक्षा ही तुम्हें तीर्थयात्रा करने के लिये, मन्दिरों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार करने के लिये तथा प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करने के लिये उकसाती है । उपचार की षोडश सामग्रियां, जिनसे भगवान् की पूजा की जाती है, सर्वोच्च सत्ता से व्यक्तिशः सम्पर्क के लिये आतुर मन को सन्तुष्ट करती हैं । ये सब उच्चतर कोटि के कर्म हैं । वे ज्ञान के पास ले जाते हैं । सर्वप्रथम, तुम इस विचार से प्रारम्भ करो, "मैं प्रकाश में हूं ।" तब यह भावना संस्थापित हो जाती है—"मुझमें प्रकाश है।" "मैं प्रकाश हूं ।"—इस विश्वास को यह पैदा करती है । यही सर्वोच्च ज्ञान या विवेक है ।

अपनी आत्मा को सबमें देखो तथा सबसे अपनी आत्मा सा प्रेम करो। शीशे की दीवाल वाले कमरे में पड़ा हुआ एक कुत्ता अपनी सहस्रों परछाइयों में स्वयं को नहीं देखता है; बल्कि, प्रतियोगियों को, अन्य कुत्तों को देखता है, जिनपर अवश्य भूंकता है। इसलिए, इस या उस परछाईं पर कूदता हुआ स्वयं को थका डालता है और जब, परछाइयां भी उछलती है, तब वह क्रोध से उन्मत्त हो जाता है। **ज्ञानी मनुष्य हर जगह स्वयं को ही देखता है तथा शान्ति में रहता है।** वह हर्षित होता है कि **उसके चतुर्दिक् अपनी ही इतनी अधिक छाया है।** इस मनोवृत्ति को धारण करना तुम अवश्य सीखो। यह तुम्हें अनावश्यक चिन्ता से बचायेगी।

७ लक्ष्य पूजा

(प्रशान्ति निलयम, तिथि २-८-६३)

यद्यपि, इस सायंकालीन सभा का कोई विशिष्ट हेतु नहीं है, तथापि कोम्परत्ना सुब्बारैया शास्त्री ने एक कारण ढूंढने की चेष्टा की है तथा उन्होंने आज हिन्दू घरों में सामन्यत: होने वाली महालक्ष्मी पूजा के सन्दर्भ सहित अपने भाषण का उपसंहार किया। कारणों की शोध करना भी एक दूसरी छलना है जो मानव को कष्ट देती है। वह हर वस्तु का कारण ढूंढने में तत्पर रहता है और उस गड़बड़ी में वह उस फल का पूर्ण लाभ उठाना भूल जाता है, जो उसके सम्मुख रहता है।

शास्त्री ने शिव-शक्ति के अर्थ को समझाने के लिए "सौन्दर्यलहरी" से उद्धरण लिया। कदाचित् गत गुरुपूर्णिमा दिवस की घटनाओं से द्रवित होकर उन्होंने ऐसा किया। शिव-शक्ति जड़ एवं चेतन का संयोजन है—विद्युत तरङ्ग के साथ तार का संयोजन है जो सभी साधनों—पंखा, स्टोव, वल्ब एवं रेडियो को क्रियाशील करता है। शिव-शक्ति सब में है, केवल मुझमें ही नहीं। प्राकट्य की शक्ति एवं क्षमता में केवल अन्तर है। जुगनू में आलोक की कुछ शक्ति है। यह भी प्रकाश फेंकता है। हमारे पास तेल के दीपक है, विद्युत वल्ब हैं, पेट्रोमेक्स लैंप हैं, चंद्रमा एवं सूर्य हैं—सब प्रकाश देते हैं। यही सामान्य गुण है।

उसी प्रकार, उत्तम एवं अनुत्तम दोनों को रहने का अधिकार है। अनुत्तम उस उद्देश्य के काम में लाने के लिए है जिसके लिए वह उपयुक्त है। सन्तरे का छिलका मीठा नहीं होता है, इसीलिये वह भीतरी मिठास की रक्षा करने

में सहायता देता है। कच्चे सन्तरे का खट्टा हरा छिलका पकने के समय फल की रक्षा करता है। पकते हुए सन्तरे की मधुरता एवं स्वाद का कुछ अंश वह छिलका भी धीरे-धीरे ले लेता है। उसी प्रकार, सत्संग के सूक्ष्म प्रभाव के द्वारा अनुत्तमता या बुराई को उत्तमता में धीरे-धीरे रूपान्तरित करना है। इन्द्रियों को आध्यात्मिक आनन्द के संवर्धन के उद्देश्य हेतु काम में लाया जा सकता है।

फल के रस को एक प्याले में उंडेला जाता है। वह प्याला उसके स्वाद को नहीं जानता है। हथेली पर लेकर तुम भी उसके स्वाद को नहीं पाते हो। तुम उसे किसी नली—इन्द्रिय के सहारे पीते हो। तब, बुद्धि, जीभ माधुर्य का अनुभव करते हैं। फल का रस प्रकृति है जो हमारे चतुर्दिक् है। इसके माधुर्य-ईश्वरत्व को चखो, जो इसमें व्याप्त है यही जीवन का उद्देश्य एवं बुद्धिमत्ता है।

प्रकृति भगवान की लीला मात्र है, जो तुम्हारे सम्मुख प्रस्तुत है, ताकि तुम उसके ऐश्वर्य, उसके वैभव से सुपरिचित हो सको।

जब मन बुद्धि के आदेशों का पालन करता है, तब व्यक्ति लाभ उठाता है। यदि दिल्ली के आदेशों का हर एक राज्य द्वारा पालन होता है, तब देश की शक्ति एवं एकता बढ़ती है। किन्तु; जब मन इन्द्रियों का दास बन जाता है, तब व्यक्ति को कष्ट भोगना पड़ता है। जब मन इस प्रकार बाह्योन्मुखी इन्द्रियों का अनुसरण करता है तथा **यथार्थ** को विस्मृत कर देता है, जब व्यक्ति मिथ्या कल्पनाओं के स्वप्निल विश्व में विचरण करता है, तब यह शिव-दाई शिशु को थपकियाँ लगाती एवं इसे जगाती है। तब उनसे अन्येतर कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। जागृत होने पर, सत्य अभिव्यंजित होकर सामने खड़ा होता है। विश्वस्वरूप होने का तुम्हारा अधिकार है। इसलिये तुम सदैव देहभाव—यह चेतनता कि मैं केवल पांच फीट की देह हूं—में क्रीड़ा न करते रहो। तुम परिवार, गृह, ग्राम, समाज, जिला, प्रान्त एवं राष्ट्र के मोह का अतिक्रमण करो। स्वराज्य के राजनीतिक तथ्य द्वारा चिह्नित स्वतंत्रता

को ही तुम्हें अर्जित नहीं करना है, किन्तु, तुमको आत्मा की स्वतन्त्रता, जिसे स्व-राज्य—स्वयं पर राज्य प्राप्त करना है।

इस समय, समानता की पुकार का नारे के रूप में प्रयोग करना व्यर्थ एवं निरर्थक है, क्योंकि अपने पूर्वजों से तथा अपने ही इतिहास (अतीत जीवन) से प्राप्त किये गये अगणित संवेगों, कौशलों, गुणों, प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों एवं रोगों वाले सभी मनुष्य एक ही समान मुहर या छाप के कैसे हो सकते हैं? इस स्वकल्पित समता के इतने विज्ञापनों के बावजूद भी, तुम इतिहास के किसी अतीत काल की अपेक्षा इस समय अधिक गलतफहमियां—भ्रान्त विचार एवं कलह पाते हो। असमानता का संवर्धन वे ही लोग करते हैं जो समानता के आधुनिक सिद्धान्त की अत्यन्त जोर से घोषणा करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा एवं सज्जनता की विभिन्न धारणा अपने पालन-पोषण एव अपने संवेगों के प्रक्षालन की स्थिति के अनुसार रखता है। ऐसी सभी धारणायें शक्तिमान हैं; क्योंकि जब खेतों में जल प्रवाहित कर दिया जाता है, तब तुम खेतों की आकृति के अनुसार विभिन्न आकृत्तियों की जलीय चादरें-वृत्ता कार, आयताकार, अण्डाकार, वर्गाकार देखते हो। उर्वरता या फसलों की उपज की मात्रा आकृतियों की भौमिक क्षेत्रों के अनुरूप भिन्न-भिन्न नहीं होती हैं। कहां तक एवं कितनी दृढ़ तुमने परमेश्वर से घनिष्टता स्थापित की है, यही परीक्षा है। अन्येतर का महत्व नहीं है।

भगवत्-प्रेम एक मच्छरदानी के समान है। यह मोह, मद, काम, क्रोध, लोभ एवं मात्सर्य के रोगों को लाने वाले मच्छरों को बाहर रखेगा, विश्वास विकसित करो ताकि तुम असंशय प्रेम कर सको। गुरुपूर्णिमा के दिन जो 'बीमारी' विनष्ट हुई, उसने सर्वप्रथम बहुतों के विश्वास को झकझोर दिया, किन्तु; कालान्तर में, डिगते हुए विश्वास को उसने सुदृढ़ कर दिया। यह उतना उत्तम नहीं है, जितना कि उसे (विश्वास को) अडिग रखना उत्तम है, चाहे कुछ भी घटित हो। वह नकस्राव (पोंटा) जो केवल तुम्हारे खांसते ही टपक पड़ता है, तुम्हारे छींकने के समय वह कैसे दृढ़ रह सकता है?

मुझे स्वधर्म का पालन करना था। मेरे प्रत्येक कार्य की गरिमा है। उसे तुम नहीं समझ सकते हो। तुम अंधकार में पड़े हो। इसलिये तुम अधिक भयभीत हो। तुम पथ पर मिट्टी के ढेरों को तथा गड्ढों को भी नहीं देख सकते हो। तुम यह भी नहीं समझ सकते हो कि पथ समतल एवं सुन्दर है। सृष्टि-रचना में कोई दोष या अपूर्णता नहीं है। इसमें निश्चय रखो। तब तुम अपनी आस्था में विचलित नहीं होगे। परमेश्वर की सृष्टि-रचना स्वयं दूषित होने पर सबको समान रूपेण कष्ट भोगना पड़ता! इस समय, प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न बयान देगा, यदि तुम उससे पूछो कि क्या वह सुखी है और क्यों? वही व्यक्ति विभिन्न समयों पर परमेश्वर के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार से बातें करता है। इसलिये दोष तुम में है तथा सर्वोत्तमता, जिसकी तुम प्रशंसा करते हो, वह भी तुममें है। बाह्य संसार में तुम अपने आत्मा को ही देखते हो तथा जो तुमको प्रिय या अप्रिय है वह तुम्हारा ही आत्मा है।

श्री शँकराचार्य ने घोषणा की, "ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या।"—केवल ब्रह्म ही सत्य है; संसार असत्य है। किन्तु, उन्होंने दृष्टिगत जगत का त्याग नहीं किया। उन्होंने कुमारिल भट्ट के कार्य को जारी रखा, उस युग के अनेकानेक दार्शनिक मतों एवं सम्प्रदायों को सुसम्बद्ध किया तथा भारतवर्ष के चारों कोनों में अद्वैत सिद्धान्त के प्रचारार्थ मठों की स्थापना की जो बद्रीनाथ, शृङ्गेरी, पुरी एवं द्वारका में हैं। तदनन्तर, वे संसार से कूच कर गये। "ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या" की उक्ति श्रुतियों (वेदों) का सार है। वैयक्तिक परमेश्वर की द्वैत उपासना से एवं सर्वोच्च शक्ति के अंग रूप में जीवि के विशिष्टाद्वैत भावना की सबलता से प्रशिक्षित मन के द्वारा उस सत्य को जाना जा सकता। एक विद्यालय से विद्यार्थियों का एक समूह दूसरे के पश्चात् विद्यालय को छोड़ कर जाना चाहिए तथा एक समूह के पश्चात् दूसरा समूह प्रथम वर्ष की कक्षा में प्रवेश पाना चाहिए। उसी प्रकार, अधिकाधिक मनुष्यों को भक्ति-कर्म ग्रहण करना चाहिए तथा धीरे-धीरे पूर्ण ज्ञान की स्थिति पर आरूढ़ होना चाहिए। केवल तभी मानवता अपने लक्ष्य को उपलब्ध कर सकती है। इसी विचार से श्री शंकराचार्य ने मठों की स्थापना की थी।

जंगल में खोये हुए एक मनुष्य को एक निश्चित दिशा में चलने के लिए कहा गया। कुछ समयोपरान्त, उसने एक ग्राम देखा। वह ग्राम उसके लिये ठीक उसी समय नहीं पैदा हो गया था। जो पहले से स्थित था, उसे ही उसने देखा। यही सब बात है। उसी प्रकार, अद्वैत भी तुमको उसी वस्तु का पथ दिखाता है, जो पूर्व काल से ही वहां स्थित है। किन्तु, उसको तुमने अब तक नहीं पहचाना था—तुम स्वयं असीम एवं ब्रह्म हो।

हां, एक शब्द महालक्ष्मी व्रत के विषय में, जिसका उल्लेख सुब्बारैया शास्त्री ने किया था। तुमसे मैं स्पष्ट कहूं कि मैं यह लक्ष्मी पूजा पसन्द नहीं करता हूं, जिसे लोग धनी होने एवं धन संग्रह की आशा से करते हैं। वे धन लक्ष्मी की भी बातें करते हैं तथा उसे प्रसन्न करने के लिए विशेष स्तोत्रों का पाठ करते हैं।

लक्ष्मी या सम्पत्ति उत्तम साधनों से एवं बुरे साधनों से भी पैदा होती है। जुआ से धनोपार्जन होता है। अनेक प्रकार की धोखेबाजी से धन पैदा करते हैं। राहज़नी से स्वयं धन पैदा करते हैं। श्रेष्ठ एवं तुच्छ, सभी लोगों द्वारा धन पैदा किया जाता है। लक्ष्य की उपासना करो। मैं तुम्हारी प्रशंसा करूंगा। अपने प्रेम के विस्तारण के लक्ष्य को तब तक अपने मन की आंखों के सामने धारण किये रहो जब तक यह सभी प्राणियों का हृदयालिंगन नहीं करता—जब तक प्रत्येक प्राणी को अपने ही आत्मा के रूप में नहीं देखता। तब लक्ष्मी स्वेच्छा से लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक मात्रा में तुम्हारे पास आयेगी। इसमें कभी संशय न करो; कभी रुको नहीं।

८ गोपियों का प्रेम

(प्रशान्ति निलयम, कृष्ण जन्माष्टमी, दिनाँक १२-८-६३)

केम्पिला के सुब्बारैया शास्त्री ने कृष्ण के अवतार के इस पृथ्वी पर आने के विषय में बताया तथा उनके जन्म की विशिष्टताओं का वर्णन करने वाले उद्धरणों को भागवत से पढ़ा । तुम सबने उनको सुना एवं आनन्द पाया, यद्यपि तुम में से अनेक ने उस कथा को शत बार सुना है, क्योंकि भगवान् की कथा दुहराने पर भी अपनी मधुरता नहीं खोती है । ज्ञान, कर्म एवं योग में से प्रत्येक का अध्ययन कठिन है; किन्तु, चटनी, जो नमक, मिर्च एवं इमली का ठीक अनुपात में पिसा हुआ घोल है, के समान भक्ति, जो ज्ञान, योग एवं कर्म के ठीक अनुपात में है, सभी रसना को अनिवार्य रूप से स्वाद देती है ।

भगवान् की कृपा प्रत्येक व्यक्ति को प्यारी है । यह वह विषय है जो सबकी समझ या पकड़ में आता है । भगवान् को, अपनी रसना को प्रिय लगने वाले किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है अथवा, आश्चर्य एवं भय की निज भावना को प्रिय लगने वाले किसी रूप में निरूपित किया जा सकता है । मुरुग, गणपति, शारदा, ईसा, मैत्रेयी, शक्ति, के रूप में उसका गुणगान कर सकते हो, अथवा तुम अल्ला या निराकार या सभी रूपों के स्वामी के रूप में पुकार सकते हो । इसमें कोई अन्तर नहीं होता है । **वह सर्वनामा एवं सर्व स्वरूपा हैं । वह आदि, मध्य, एवं अन्त हैं, आधार, तत्व एवं स्रोत हैं ।** इसलिये, तुम्हारी चेतना में उनकी महिमा, उनकी कृपा एवं उनका सौन्दर्य लाने वाली कोई कथा तुम्हें अवश्य अधिक प्रिय लगेगी ।

मेरा विश्वास करो—सभी वृत्तियां अनित्य है । वृत्ति एक वृत्त है । यह उस वृत्त के समान है जो सरोवर के शांत जल में पत्थर के टुकड़ के गिरने

वाले स्थान से बनती है । जल क्षुब्ध हो उठता है तथा वृत्त सुदूरतम छोर तक पानी को प्रभावित करता है । मन की स्थिरता पर प्रत्येक विचार पाषाण की भांति काम करता है; यह एक वृत्ति को उत्पन्न करता । **प्रवृत्तिमार्ग इन वृत्ताकार लहरों को गुणित करता है तथा आगे और विस्तृत उद्वेगों को उत्पन्न करता है । किन्तु, निवृति-मार्ग का लक्ष्य जल की स्थिरता है । नितान्ततः कोई उद्वेग नहीं । शान्ति या सम स्तर की आरक्षा करो । क्षुब्ध विचारों को दूर रखो ।**

कृष्ण के नाम एवं स्वरूप पर मन की एकाग्रता वृत्ति की तरंगों को शांत करती है । जब ई० एम० फारस्टर भारतवर्ष में आये, तब कुछ समय तक राजकोट के ठाकुर के यहाँ ठहरे थे । राधा-श्याम की प्रतिमा के सामने ठाकुर को ध्यान में लीन देख कर उनको सर्वप्रथम आश्चर्य हुआ कि यह सब क्या है । ठाकुर की कोई इच्छा पूरी करने के लिये न थी । वह किस लिये प्रार्थना कर सकते थे ? एक दिन, उसने ठाकुर से पूछा, "क्यों ?" उन्होंने उत्तर दिया कि **उनके लिये कृष्ण प्रेम, सौन्दर्य एवं आनन्द के स्वरूप हैं । इसलिये, जब उनके रूप का वे ध्यान करते हैं तब वे प्रेम, सौन्दर्य एवं आनन्द से भर जाते हैं । इन्द्रियां, बुद्धि, एवं स्थायी भाव—सभी पवित्र एवं स्पष्ट हो जाते हैं, जब हम उस निर्मल एवं भव्य का ध्यान करते हैं ।** प्रथम साधन की परीक्षा के लिए फ़ारस्टर को बाध्य किया गया और यद्यपि, सर्वप्रथम उसे यह बहुत कठिन लगा, किन्तु विचित्र शांति से स्पन्दित आनन्द ने उसे जारी रखने के लिए प्रेरित किया । उसे ध्यान उत्तम एवं उपयोगी मालूम हुआ ।

कृष्ण कुछ सप्ताह के ही हुए थे कि कोई संन्यासी नन्द के घर में आया । यशोदा की गोद में शिशु था । यह घटना, निश्चय ही, किसी पुस्तक में नहीं पाई जाती है । मुझे यह स्वयं तुमको बताना है । दासियाँ भीतर दौड़ीं; क्योंकि उनको भय था कि इस कुरूप व्यक्ति के दर्शन से बालक रोना प्रारम्भ कर सकता था । तिसपर भी वह भीतर घुस आया । उसके चले जाने पर यशोदा ने देखा कि शिशु रोने लगा और उसके निकट आने पर नहीं रोया । मुनि ने

भी स्वयं घोषित किया कि वे कृष्ण रूपी परमात्मा का दर्शन करने आये हैं। यह नाम समूचे परिवार के लिए नवीन था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, कि उस असाधारण आगुन्तक को जाने के लिए जब कहा गया, तो शिशु रो पड़ा! देवकी को कृष्ण के स्वयं भगवान होने का दृष्टान्त दिया गया था; किन्तु इस मुनि ने सर्वशक्तिमान् की कृपा से अवतार के आगमन का अनुसन्धान किया था यह शिशु ही था जिसने अपने दर्शन के लिए मुनि को आमन्त्रित किया था।

जब, गोपियों ने उनकी माता से उनकी शरारतपूर्ण बातों एवं दूध, नवनीत आदि की चोरी की शिकायतें कीं, तब कृष्ण ने जो उत्तर दिये, वे अपने आन्तरिक अर्थ द्वारा उस **ईश्वरीय सार** को भी व्यक्त करते हैं, जो वे थे।

"तुमने उस मटके से, जिसे वह ले जा रही थी, दूध क्यों पीया ?"

"वह भगवान् को चढ़ाने के लिए ले जा रही थी। कदाचित्, भगवान् ने उसे पी लिया हो।"

"तुम कहां भाग गये थे ?"

"मैं सदैव तुम्हारे साथ था। क्या यह बात नहीं है ?"

"तुमने उस नवनीत के मटके को अपनी मुट्ठी में क्यों पकड़ा ?"

"ताकि दूसरे न खा सकें।"

"नवनीत के मटके में तुमने अपना हाथ क्यों डाला ?"

"मैं एक खोये हुए बछड़े को खोज रहा था।"

इस प्रकार के उत्तरों द्वारा उसने उनको शिक्षा दी। वे **पुराण** पुरुष थे एक नए कलेवर में। उनके शब्द **काल** के आदि से आते थे।

राधातत्व भी गहन एवं अगाध (तत्व) है। वह निरन्तर **भगवान्** एवं **उनकी महिमा** के ध्यान में रहती थी। वह भी शिशु कृष्ण को, मानव शरीर से पृथक् **दैवी प्रकाश** के रूप **में** देखती थी। एक दिन, यशोदा कृष्ण को खोज रही थीं। वे कहीं भटक गये थे। वह प्रायः हर जगह ढूँढ़ीं और अन्ततः वह राधा के घर गईं। राधा ने अपने नेत्रों को तनिक बन्द कर लिया और

कुछ समय कृष्ण का ध्यान किया तथा जब "कृष्ण" कहकर पुकारा तो कृष्ण वहां थे। तब, यशोदा की आँखों में हर्ष के आंसू उमड़ पड़े। वह बोली — "मैं कृष्ण को मातृवत प्यार करती हूं। मुझमें अहंकार की भावना है कि **वह मेरा** पुत्र है और मैं उसको हानि से बचाऊं। मैं उसे पथप्रदर्शन एवं रक्षण प्रदान करने का प्रयत्न करती हूं। तुम्हारा प्रेम विशुद्ध है तथा उसे भड़काने वाला अहंकार उसमें नहीं है।"

गोपियों में एक तीव्र प्रेम था—अविचल, स्पष्ट एवं विशुद्ध। भागवत में वर्णित गोपियों एवं कृष्ण के सम्बन्ध की परीक्षा दुर्भाग्यवश ऐसे व्यक्तियों द्वारा की गई है, जिन्होंने अपनी वृत्तियों को संयमित एवं नियंत्रित नहीं किया है। यह विषय ऐसे व्यक्तियों की समझ के परे है। शुक महर्षि, जिसने इसका राजा परीक्षित से वर्णन किया था तथा आधुनिक समय में, रामकृष्ण परमहंस के समान अत्यन्त प्रखर एवं संन्यासी रूप के ब्रह्मचारी मात्र ही इस सम्बन्ध का गुणगान कर सकते हैं तथा उसकी अनुपमता की घोषणा कर सकते हैं। शेष सभी लोग अपनी दुर्बलताओं एवं अपनी भावनाओं की छाया मात्र ही इसमें देखने के अभ्यस्त हैं। वे केवल **संसार** की भाषा को ही जानते हैं। जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति के परे क्षेत्रों से वे अनुभूतियां सम्बन्धित हैं और वे उनकी पहुँच के भीतर नहीं हैं। इसलिये, वे उस विषय को अपने ही स्तर पर घसीटते है तथा यह दावा करते हैं कि वे उनके रहस्यों पर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं।

वस्तुतः, इस सम्बन्ध के अर्थ को समझने के लिए आन्तरिक दृष्टि—आन्तरिक इन्द्रियों की आवश्यकता होती है। श्रोरुगन्ती ने यह दर्शाया है कि अधिकाँश व्याख्याताओं की पकड़ से वे बच गये हैं; क्योंकि यह स्वयं निर्विकल्प समाधि की अद्वैतिक अनुभूतियों से घनिष्टतापूर्वक संयुक्त है। **मन को इन्द्रियों का स्वामी बनना है, उनका दास नहीं बनना है। विचारों, कामनाओं कर्मों एवं भावनाओं—सभी को लाभ की इच्छा से निर्मल करना है। व्याख्याता**

पर से अहंकार का सारा अधिकार स्वयं समाप्त होना है, जैसा यह गोपियों पर से समाप्त हुआ। गोपियों के प्रेम के समान भगवान् के प्रति प्रेम, मनुष्य को शक्तिशाली बनाना चाहिए, कमजोर नहीं। वस्तुतः अपने प्रेम से गोपियां दुर्बल नहीं बनीं; अपितु वे कठोर बन गईं। रामकृष्ण ने भी नरेन्द्रनाथ जैसे अपने शिष्यों को भगवान के प्रति प्रेम उत्पन्न करके बलवान बनने के लिये शिक्षा दी थी।

भगवान् के प्रति उठाया गया प्रत्येक कदम संसार के प्रति मोह या आसक्ति को थोड़ा-थोड़ा करके तुमसे दूर करता है। गोपियां, तब, किस प्रकार अपनी शारीरिक चेतनता को कायम रख सकती थीं? अपने पिता की गोद में बैठे रहने के वरदान को भगवान् से प्राप्त करने के लिये ध्रुव जंगल में गया था। यह स्पष्टतः सांसारिकता की अतिशय साधारण इच्छा थी। किन्तु, तपस्या में आगे बढ़ने पर यह इच्छा उसके मन से गायब हो गई तथा उसका मन आध्यात्मिकता की महान ऊंचाई पर उठ गया। जिसने अमृत का स्वाद लिया है वह जल के स्वादन के लिये कैसे उत्सुक हो सकता है? अथवा, खजूर का स्वाद लेने पर एवं उसे अपने अधिकार में रखने पर कोई इमली के फल की आकांक्षा क्यों करेगा? ज्योंही, कोई आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करता है, प्रत्येक आकांक्षा निर्मल चेतना के श्रेष्ठतर प्रदेशों में परिमार्जित हो जाएगी।

स्वयं भागवत् के अनुसार ये गोपियाँ कौन थीं? वे देवता हैं जो अवतार की महिमा में सम्मिलित होना चाहते थे तथा जो दैवी लीला के साक्षी के रूप में एवं साझीदार के रूप में इस संसार में आये थे। एक उद्देश्य से वे आये थे। वे सामान्य ग्रामीण नहीं थे, जो कामिनियों के झुण्ड के रूप में निरस्त की जा सकती थीं। कृष्ण के प्रत्येक हाव-भाव में, प्रत्येक शब्द एवं मुहावरे में ईश्वरत्व को देखती थीं, मानवीयता को बिल्कुल नहीं। किसी अवसर या समय पर धर्महीन वृत्ति द्वारा वे उद्वेलित नहीं हुईं। उनकी सभी वृत्तियां ईश्वरीय उद्वेगों एवं उद्भावनाओं से जागृत हो गई थीं। 'मैग्नीफाइंग' शीशा

जिस प्रकार, सूर्य की किरणों को पकड़ता है, उन सबको एक ही स्थल पर केन्द्रित करता है और इस प्रकार ऊष्मा को एक बिन्दु पर केन्द्रित करके इसे जलाने में सहायता करता है। उसी प्रकार, **गोपियों के हृदय ने सारी वृत्तियों को संचित किया, उन्हें केन्द्रित किया तथा आलोक एवं ज्वाला पैदा की तथा सभी मैल को उनकी ज्वाला ने दग्ध कर दिया तथा उनके आलोक ने सत्य को प्रकाशित कर दिया।** अन्य सभी व्याख्याओं को अज्ञानता या धार्मिक पाण्डित्य—पुस्तकीय विद्वत्ता मात्र का भड़कीला दम्भ, जो यम-नियम के अभ्यास से घृणा करता है—के द्वार पर रख देना है।

कृष्ण की, चोर के रूप में, निन्दा की जाती है कि उसने गोप-कुमारियों का मक्खन चुराया; किन्तु नवनीत हृदय की भक्ति का प्रतीक है जो मंथन की क्रिया के पश्चात् प्राप्त होता है। यह प्रतीक की समस्या है जो शब्दशः सत्य मानी जाती है। वह चित्त-चोर—हृदयों को चुराने वाले हैं। चोर रात्रि में स्वामी को बिना जगाये चुराते हैं; किन्तु यह चोर चोरी करता है, जब स्वामी जागता रहता है। वह उसको जगाता है और उससे कहता है कि मैं आया हूं। वह व्यक्ति अत्यधिक सुखी एवं सन्तुष्ट छोड़ दिया जाता है।

प्रत्येक गोपी के हृदय में उच्चतम कोटि की भक्ति थी। वे जिधर भी जाती थीं, कृष्ण को ही देखती थीं। वे स्वयं को कृष्ण का स्मरण कराने के लिए अपने सिर पर नीला कुमकुम धारण करती थीं। अनेक पतियों ने कुम-कुम के रंग का विरोध किया; किन्तु उसे मिटाने का साहस वे नहीं कर सके, ताकि कहीं उन पर आपत्ति न टूट पड़े तथा धार्मिक वस्तु का निरादर उन पर आघात न कर बैठे। जो रत्न उन्हें प्रिय थे, वे कृष्ण के समान नीले वर्ण के थे। (इस समय बाबा को जो हार दिया गया था, उससे उन्होंने मल्लिका पुष्प की पंखुड़ियों को खींच कर अपना हाथ भर लिया था। एक हथेली से उन्होंने दूसरी हथेली पर पंखड़ियों को बरसाया और वे नीले रत्नों के एक निर्झर के रूप में गिर पड़ीं। जिन रत्नों को वे निर्दिष्ट कर रहे थे, वे विस्मित जनता को दिखलाये। प्रत्येक रत्न में कृष्ण की मूर्ति थी, वह सुषुमामयी एवं स्पष्ट थी।)

उदाहरणार्थ वह नीरजा थी। वह एक गोप की दुल्हन बनकर एक दूरस्थ ग्राम से वृन्दावन आयी थी। उसे कृष्ण की चतुराइयों से सावधान किया गया था। सब चेतावनी के बावजूद भी किसी तरह, उसने कृष्ण को गोवर्धनगिरि-पर्व में देखा। देखते ही, उसने अपना हृदय कृष्ण भगवान् पर न्यौछावर कर दिया। इस आध्यात्मिक सम्बन्ध के कारण उसे अनेक परीक्षाओं से गुजरना पड़ा; किन्तु उसने साहसपूर्वक उनको सहन किया। सर्वप्रथम, उसने कृष्ण को वंशी बजाते हुए गोवर्धन पर्वत की तलहटी में देखा था। इसलिए, उस कुंज के पास पवित्र वायु का पान करने के लिए वह प्रायः जाती थी, जहां कृष्ण को प्रथम बार उसने देखा था। इस प्रकार वर्षों व्यतीत हो गये। कृष्ण को वृन्दावन से मथुरा ले जाने वाले अक्रूर के रथ के अश्वों को रोकने वाली गोपियों में वह सबसे अग्रणी थी। अनेक वर्षों तक वह वियोग का कष्ट सहती रही। एक दिन वह व्यथा से शक्तिहीन हो गई और बिल्कुल क्षीण हो गई। तब कृष्ण उसी कुंज में, जहाँ वह थी, उसके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने गोपी को पुचकारा एवं उसे साँत्वना दी। लेकिन, उसे एक प्रार्थना करनी थी। कृष्ण की गोद में प्राण त्यागने से पूर्व वह दिव्य वंशी की ध्वनि सुनना चाहती थी। भगवान् ने कहा, "मैं उसे नहीं लाया।" किन्तु उसे वरदान मात्र देने के लिए, उन्होंने कुंज से एक छड़ी तोड़ी और एक क्षण में मुरली बनाई तथा उससे वह ध्वनि बजाई जिसने नीरजा के हृदय को आंसुओं में पिघला दिया तथा उसकी आत्मा को वहा ले गयी। संगीत के समाप्त होतें ही वह कृष्णतत्व में लीन हो गई। कृष्ण ने, उस वंशी को भी त्याग दिया जिसको उसके लिये ही उन्होंने धारण किया था। उस वंशी को जन्स देने एवं उसे बारम्बार सुनने की स्मृति में उस कुन्ज को वंशीकुन्ज के नाम से लोग पुकारने लगे।

दूसरी गोपी सुगुणा थी। एक दिन, कृष्ण सत्यभामा के साथ थे। उन्होंने भयंकर पेटदर्द का बहाना किया। सत्यभामा ने सभी औषधियों का प्रयोग किया, किन्तु, वह आराम नहीं पहुंचा सकीं। वस्तुतः, यह सब अभिनय मात्र था। यह एक उत्कृष्ट अभिनय था, जैसा, अभी गुरुपूर्णिमा के पूर्व एक सप्ताह

तक मुझे लकवे का आक्रमण हुआ था ! कृष्ण के स्वास्थ्य के बिषय में पूछ-ताछ करने के लिए रुक्मिणी को भी घर में प्रवेश नहीं करने दिया गया। किन्तु, भगवान् की बीमारी पर सुगुणा को महती वेदना से व्यथित दरवाजे के बाहर रुक्मिणी ने देखा। उसने उसको सब सामग्रियां दीं और भीतर जाने के लिए कहा। कृष्ण ने सुगुणा का स्वागत किया तथा **अपने चरणों** के पास बैठाया। सत्यभामा की बाटिका से उसके द्वारा तोड़कर लाये फलों को उन्होंने खाया तथा अकस्मात् दर्द चला गया। भगवान् की दशा पर उसकी जो वेदना थी, उसकी जो सरल एवं सच्ची भक्ति थी, वही इतनी प्रभावकारी हुई थी। **भगवान के प्रति तुम्हारे सम्बन्ध में किसी प्रकार की कृत्रिमता न होनी चाहिए। जो सुमन तुम अर्पण करते हो उसे दूषित करने के लिए कोई स्नेह, कोई दम्भ, कोई अहंकार नहीं रह जाना चाहिए।** कृष्ण ने जब (सुगुणा के) फलों को स्वीकार किया तब सत्यभामा ने विरोध किया; क्योंकि कृष्ण ने उसके द्वारा स्वयं दिये गये फलों को, जो उसके श्रमपूर्ण बागवानी के प्रयत्न के मूल्यवान उपज के रूप में थे, स्वादहीन कहकर दूर कर दिया था। वे स्वाद-विहीन थे, क्योंकि उनमें उसका दम्भ समा गया था। अब, उस सरल ग्रामीण गोपिका द्वारा धरती पर से उठाये गये एवं भक्ति से अभिषिक्त होने पर वे भगवान के लिये स्वादिष्ट एवं आकर्षक हो गये थे। **वह तो भीतरी भाव के भूखे है। बाह्य के नहीं।**

एक मात्र **प्रेम**, जो दम्भ एवं इर्ष्या को अपनी विशुद्धता में हस्तक्षेप नहीं करने देता है वह **भगवान् के प्रति प्रेम** है। मैं जानता हूं कि तुममें से अनेक व्यक्ति यह जानकर सचमुच दुखी हैं कि मैं दो महीने से केवल एक प्याला मक्खन का दूध प्रति दिन लेता हूं, यद्यपि मैं तुम लोगों से कहता रहा हूं कि मेरे "कम भोजन ग्रहण करने" के परिणाम स्वरूप मेरा कोई भी काम नहीं रुका है और न बिलम्बित हुआ है। यह उनके प्रेम का ही लक्षण है। किन्तु, सचमुच, मैं तुम्हारे आनन्दम् पर जीवित रहता हूं इस भौतिक भोजन पर बिल्कुल नहीं। मेरी कामना है कि तुम इसे महसूस करो तथा चिन्ता करना या रोना बंद करो।

९ विषय-विष

(स्थान—प्रशान्ति निलयम, दिनाँक ६-९-६३)

कल्लूरी वीरभद्र शास्त्री ने श्रीमद्‌भागवत की घटनाओं के सुस्पष्ट एवं हृदय-द्रावक वर्णन द्वारा तुममें से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में आनन्द प्रवाहित कर दिया। उनके शब्द उपयुक्त एवं मधुर थे। उनके विश्लेषण ने घटनाओं की आन्तरिक गरिमा को उद्‌घटित कर दिया। कृष्ण गोपालों के मध्य वृन्दावन में थे। उस समय वहाँ पर उनके पारिवारिक जीवन में तुम सबको उन्होंने व्यक्तिशः शामिल कर दिया। अपनी निष्ठापूर्ण भक्ति के कारण कुछ व्यक्ति भावों से उन्मत्त अथवा पागल से हो जाते हैं। किन्तु ऐसे पराभूत करने वाले भावों पर अधिकार प्राप्त करना है। भक्ति को ज्ञान में रूपान्तरित करना है तथा उसके द्वारा अधिक शक्तिमान बनना है।

मानव जीवन ही सार्थक है, क्योंकि वह परमेश्वर के दर्शनार्थ इसका प्रयोग कर सकता है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य सागर, परमेश्वर में विलीन होना है। तुम्हें सांसारिकता से जीवन को आपूर्ण नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह जीवन को अहंकार का खेल—एक पागलपन का खेल बना देगा। परमेश्वर के आदर्श की ओर आकृष्ट करने वाली सभी बातों को ध्यान से सुनो। तदनन्तर, एकान्त में उसपर विचार करो तथा उसे अपनी चेतना का एक अंग बना लो। मनन करने की यह पद्धति तुम्हें मानव बनायेगी। मानव या मनुष्यत्व की यही परीक्षा है!

वीरभद्र शास्त्री ने कालीनाग-मर्दन के दृश्य का सुन्दर वर्णन किया। हाँ, कालीनाग एक विशाल सर्प है, वह विषधर है जो मौत एवं विध्वंस में विचरण

करता है। वह ऐन्द्रिक वस्तुओं में विचरण करने वाले मनुष्य का प्रतिनिधि, जिनका प्रभाव जीवन के लिये विषतुल्य है। विषय भयानक से भयानक विष है। जब कृष्ण ने कालीनाग के सिर पर नृत्य किया, तब उसने विष को उगल दिया ! (मैं यह जोड़ना चाहता हूं कि आप अपने हृदय के सर्प के फण के समान समतल एवं कोमल बनाइये) सर्प का दमन हो गया, जब परमेश्वर की अराधना की जाती है तथा तुम अपनी मूल स्वस्थता को पुनः प्राप्त करते हो।

भगवान् के नाम एवं रूप को अपने हृदय रूपी फण पर नृत्य करने दो। कृष्ण में कोई विषय-वासना नहीं थी। इसीलिये वे जलाशय में कूद सके; कालीनाग को बाहर बुला सके; उसके फण पर कूदकर चढ़ सके एवं उसे कुचल कर उसके विष को निचोड़ कर बाहर कर सके। गहरे दलदल में फंसे होने पर तुम इसमें गिरे हुए किसी दूसरे व्यक्ति को बाहर नहीं निकाल सकते हो। तट पर खड़े रहो; परन्तु फंसो नहीं। तुम, इस समय संसार के दलदल, मोह के कीचड़ में पड़े हो। अतएव, तुम सर्प के फण को कैसे कुचल सकोगे ? तुम अपनी रक्षा विषयमुक्त एवं तट पर खड़े केवल परमेश्वर को पुकार कर ही कर सकते हो। उसके हाथ को पकड़ो और वह तुमको कड़ी धरती पर खींच लायेगा।

उन दिनों में कृष्ण कभी भी बलराम से अलग नहीं होते थे; किन्तु उस दिन, उनके बिना ही वे अकेले आये। वे हरि मणियों का हार, मोतियों की नथुनी, तथा अपने दायें कान में मोतियों का एक झुमका धारण किए हुए थे। वे कुर्ता या कोट नहीं पहने हुए थे; अपनी कमर के चारों ओर पीताम्बर बांधे थे तथा अपने सिर पर एक रुमाल या दस्ती लपेटे या असावधानी से उसके एक छोर को इस ओर तथा दूसरे छोर को दूसरी ओर फैंके हुए थे। कवियों एव ऋषियों द्वारा वर्णित मोर पंख भी वे सदैव नहीं धारण करते थे। कभी-कभी उसे वह खोंस लेते थे। उस समय, वृन्दावन में मयूर अवश्य अधिक संख्या में

पाये जाते थे और आज भी वे अधिकता से वहां पाये जाते हैं। उनके नग्न वक्ष-स्थल पर एक तिल या मसा था जो स्पष्टतः देखा जा सकता था । यह साई सहित सभी अवतारों का एक अनिवार्य चिन्ह है । विषयुक्त वायु की सांस लेने से मरे हुए पशुओं की शवों को कृष्ण ने काली-दह के निकट पड़ी हुई देखा । वहां पक्षी भी धरती पर निष्प्राण पड़े हुए थे । आस-पास कुछ हरियाली नहीं रह सकती थी । ज्योंही, कृष्ण उस क्षेत्र के प्राणियों की रक्षा हेतु उस जलकुण्ड में कूदे त्योंही, उनके साथी उनके माँ-बाप को बुलाने के लिए घर दौड़े गये ताकि वे हस्तक्षप कर सकें तथा अपने नट-खट पुत्र के मूर्खतापूर्ण प्रलापों को रोक सकें । वे (यह सुनकर) बहुत घबड़ाये । केवल राधा शान्त एवं प्रसन्न थी । वह जानती थी उनके लिये यह एक क्षण का खेल है, एक पल का संकल्प मात्र है । "उनमें कोई विषय नहीं था । इसलिये, विष उनको दुष्प्रभावित नहीं कर सकता ।"

सांसारिक इच्छाओं को भी निर्मलता के उच्चतर क्षेत्रों में रूपान्तरित किया जा सकता है, भगवान् के समीप पहुँचकर । भगवान् की उपस्थिति में धर्मविरोधी कोई भी नहीं टिक सकते हैं । सभी अपावनों को वह ज्वाला दग्ध कर देती है । लोग यह भूल जाते हैं कि रास-लीला के स्थल,—बृन्दावन का कृष्ण ने जब अन्तिम समय परित्याग किया, तब उनकी आयु केवल ग्यारह वर्ष की थी । उस समय वे मथुरा गये तथा पुनः द्वारका चले गये । भागवत स्वयं इसे स्पष्टतः बताता है किन्तु इसकी उपेक्षा की जाती है; क्योंकि रासलीला में विषय वासना देखने की कामना करने वाले कवियों एवं लोगों का मन विषय-वासना से दूषित है ।

बालक ध्रुव तपस्या के लिये जंगल में गया, क्योंकि वह भगवान् से एक वरदान पाना चाहता था ताकि उसके पिता उसे सौतेले भाइयों के समान ही प्यार करें । किन्तु, साधना में प्रगति करने पर, वह उस कामना को भूल गया तथा उसके स्थान पर उसके मन में और अधिक भव्य भावना समा गई । मन

में एक बार भगवान् के प्रवेश करते ही, मन सारी बुराइयों से मुक्त हो जाता है। राम एवं काम एक साथ नहीं रह सकते, भगवान् एवं भोग-विलास साथ-साथ नहीं रह सकते। तब, कृष्ण की आराधना करते समय, गोपियों के मन में कोई बाल-चेतना कैसे रह सकती है? गोवर्धनगिरि को धारण करने के 'ईश्वरीय चमत्कार' द्वारा कृष्ण ने गोपियों से अपने ऐश्वर्य की घोषणा पहले ही कर दी थी। उन्होंने स्वयं को इन्द्र, ब्रह्मा एवं वरुण से श्रेष्ठतर सिद्ध कर दिया था। उन्होंने अपने मुख में ब्रह्माण्ड को प्रगट किया था तथा यह दिखाया था कि दुष्टों का विनाश करने एवं सज्जनों की रक्षा करने के ईश्वरीय उद्देश्य के लिये उन्होंने अवतार लिया है। उनके व्यवहार में कोई "लौकिकता" नहीं है। यह सब "अलौकिक" है—अपर लोक का है।

भगवान् बिना किसी औचित्य अथवा गरिमा के एक शब्द कभी नहीं बोलते हैं; न कोई काम औचित्य या उद्देश्य बिना करते हैं। श्रद्धा एवं भक्ति की दो पांखों सहित गरुड़ 'कर्म' का प्रतीक है। भगवान् इसी हृदय रूपी विहंग पर अपना आसन जमाते हैं। राधा प्रकृति है जो 'धार' रूप विदित है तथा जो 'आधार' के विषय में विचार करने के लिए तुम्हारी सहायता करती है, एक नियमित 'धारा' या अप्रतिहत प्रवाह में।

रस्सी से बाँधने की घटना एक दूसरा उदाहरण है। कृष्ण ने यह समझा कि **अपनी सत्यता** को व्यक्त करने का वही ठीक समय है। इसलिये, उन्होंने अधिकाधिक लम्बी रस्सी को भी इतनी छोटी बना दिया कि वह उनको नहीं बांध सकी। यह कार्य ठीक वैसा ही था जैसा माँ (यशोदा) के यह सन्देह करने पर कि उन्होंने बालुका या रेत खा लिया है और मुंह खोलकर जीभ दिखाने के लिए कहने पर उन्होंने अपने समस्त सृष्टि रचना को दिखाया था। स्थान-स्थान पर इसकी चर्चा होने लगी तथा हर व्यक्ति यह समझने लगा कि उनमें समस्त चौदह भुवन हैं।

अवतार अपने आगमन एवं अपने ऐश्वर्य की घोषणा के समय एवं पद्धति को स्वयं चुनते हैं। इस अवतार में भी, ऐसे चमत्कार करने पड़े थे, जब कभी

मैंने यह निश्चय किया कि लोगों को अपने गूढ़ता में लाने के लिए यह समय उपयुक्त है ।

ऐसे उच्चस्तरीय कृष्ण पर तुम्हारा मन सदैव केन्द्रित रहे । अपने प्रत्येक शब्द एवं कर्म को कृष्ण-प्रेम से आपूर्ण करके पावन बनाओ अथवा जिस भगवान् से तुम प्रेम करते हो उसके किसी भी नाम एवं रूप द्वारा तुम अपनी वाणी एवं कर्म को पवित्र बनाओ । जिस स्वर्ण से नूपुर बनता है, वह मन्दिर की प्रतिमा के सिर के मुकुट के लिये भी सोना हो सकता है, केवल उसे भट्टी की अग्नि में गलाना एवं उसे पीटकर वह आकृति प्रदान करने की आवश्यकता है । नदी का जल गन्दा हो सकता है; किन्तु इसे किसी मन्त्र या स्तोत्र सहित कोई भक्त अपने अधरों से पान कर लेता है तथा उसे वह पवित्र तीर्थ में रूपान्तरित कर देता है । **व्यायाम एवं कार्य करने से शरीर स्वस्थ रहता है और मन उपासता एवं नाम स्मरण द्वारा, नियमित एवं सुनियोजित अनुशासन द्वारा, जिसे हम सहर्ष स्वीकार करते हैं तथा सहर्ष जिसका पालन करते हैं ।**

अहिंसा गेहूं का आटा है, अर्पण या निष्ठा चना है, प्रायश्चित दाल है, पश्चाताप या खेद दलिया है । इन सबको घी, सदाचरण या सद्गुण से भली प्रकार मिला दो । यही भेंट तुम अपने इष्टदेवता को चढ़ाओ, न कि दूकान से पैसा देकर ली गई वस्तुओं से बना हुआ तुच्छ भोग अर्पण करो । भगवान् के हृदय के इस गुप्त प्रवेश मार्ग को गोपियाँ जानती थीं तथा उनको शीघ्र ही प्राप्त करतीं ।

तुमने यह सुना है कि कृष्ण मुरली-माधव हैं । यह मुरली सही रूप में क्या है ? **तुम स्वयं मुरली या वंशी बनो । कृष्ण की स्वांस तुममें प्रवेश करे तथा वह आनन्ददायक संगीत रचे जो हृदयों को द्रवित कर देता है । तुम स्वयं उनके चरणों पर आत्मसमर्पण कर दो, खोखला बन जाओ—वासना विहीन, अहंकार विहीन, कामनारहित बन जाओ । तब वे स्वयं आयेंगे, तुम्हें स्नेहपूर्वक उठा लेंगे तथा तुमको—वंशी को—अपने अधरों पर रखेंगे एवं तुममें अपनी मधुर सांस को फूंकेंगे । उन्हें जो भी गीत प्रिय हों, तुम उन्हें गाने दो ।**

परमेश्वर सम्पूर्ण प्रेम हैं। उनमें क्रोध या द्वेष नहीं है। एक बार शिरडी में एक डाक्टर पिल्ले आये थे। उन्हें बड़ा कष्ट था। उन्होंने प्रार्थना की थी कि उन्हें दस जन्म दिये जाएं तथा उनके कष्टों को दस भागों में विभाजित करने का अवसर दिया जाए, ताकि वे प्रत्येक बार उसके एक अंश को भोग सकें तथा अपने कर्म ऋण को धीरे-धीरे चुका सकें और उन्हें एक ही बार में सब ऋण चुकाने के लिये विवश न होना पड़े। उन्हें काका साहेब के द्वारा यह सूचना भेजी गई कि उन्हें बाबा (शिरडी) के चरणों पर पड़ना चाहिये। ज्योंही उन्होंने ऐसा किया, बाबा ने दर्द को अपने ऊपर हस्तान्तरित कर लिया। दस मिनट तक बाबा कष्ट सहते रहे, प्रत्येक जन्म के लिये एक मिनट की दर से। इस प्रकार, बाबा ने डा० पिल्ले को ऋण मुक्त कर दिया। ज्योंही दस मिनट समाप्त हुए बाबा पूर्णतः साधारण दशा में हो गये।

प्रेम को दृढ़ एवं कठोर होने के लिये बहुगुम्फित रस्सी पर चढ़ना होगा। एक ही तार की रस्सी चढ़ने के लिये बहुत कमजोर होगी इसे बहुगुम्फित करो—एक माता के प्रति प्रेम, दूसरा पिता के प्रति प्रेम, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, मित्र इत्यादि के प्रति प्रेम। प्रेम, निश्चय रूपेण सर्वालिंगन करने वाला है। यह केवल एक वस्तु तक सीमित नहीं रह सकता है तथा दूसरे के प्रति अस्वीकृति नहीं देगा। यह ऐसा प्रवाह या धार है जो सबके प्रति प्रवाहित होती है। भगवान् का ध्यान एवं प्रेम इसे तुम्हारे हृदय की गहराई से प्रवाहित करने में तुम्हारी सहायता करेंगे।

१० सु-दर्शन

(प्रशान्ति निलयम, दिनांक २-९-६३)

विगत संध्या समय, तुम लोगों ने कृष्णावतार के विषय में श्रवण किया। तुम्हारे हृदय आनन्द से भर गये थे। वह आनन्द तुम्हारे नेत्रों से प्रवाहित हो रहा था और मैंने उसे देखा। उस अनुभूति से तुम्हारे मन भी विशुद्ध हुए। संसार की रक्षा करने के लिए वह अवतार आया था तथा उसकी रक्षा के साधन रूप में धर्म को दृढ़ करने के लिए आया था। जिन ग्रन्थों में भगवान् की वाणी है तथा जो महापुरुष उन्हें जानते हैं, वे घोषणा करते हैं कि इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिये भगवान् **मानव शरीर** धारण करते हैं। कुचेला की कथा यह बताती है कि उनका ध्यान, उनकी पूजा एवं उनका सम्मान कैसे करना चाहिये। कुचेला जानता था कि सही रूप में कौन सी वस्तु भगवान् को देनी चाहिए, क्योंकि भेंट के साथ जो भावना है, उसको ही भगवान् चाहते हैं तथा वह मनोवृत्ति जिससे वह भेंट भगवान् को अर्पण की जाती है। वे उसके परिमाण एवं उसके मूल्य से द्रवित नहीं होते हैं। भोजन पकाये हुए बर्तन में एक ओर चिपकी हुई पत्ती का एक टुकड़ा द्रौपदी ने कृष्ण को दिया था। भगवान् पूर्णतया खा चुके और उन्होंने कहा कि वह पूर्ण क्षुधा से मुक्त हो गये। रुक्मिणी ने तराजू के पलड़े पर एक ही तुलसीदल रखा था; किन्तु, इसका वजन स्वयं कृष्ण के बराबर हुआ; क्योंकि उसने वह अपनी भक्ति से अभिसिक्त की थी। कुचेला थोड़ा सा "चूड़ा" ले गया था। भगवान् इसे अति आनन्द से खा गये थे तथा अतिशय भक्ति-पूरित भेंट से अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।

उच्छक्त कागज का एक टुकड़ा उतना कीमती नहीं होता है जितना उसी के बराबर माप का टुकड़ा होता है जो धब्बेदार एवं गन्दा होने पर भी, रिजर्व

बैंक की मुहर के साथ सौ रुपये का नोट बन जाता है। भक्ति की मुहर ने 'चूड़े' को मूल्यवान बना दिया था।

अतएव, जीवन वृक्ष पर लगने वाले प्रेम रूपी फल को भगवान् को दो। प्रेम के प्रकाश को विकसित करो। तब, शोक, द्वेष एवं अहंकार के चमगादड़ सुदूर अन्धकार में उड़ जायेंगे।

तुम लोग सदैव, 'सायुज्य' के लक्ष्य को अपनी विचार दृष्टि में रखो। इसे कभी नहीं त्यागो या भूलो सरिता के सदृश बनो जो सदैव सागर की ओर मन्द-मन्द बहती है। मद्रास से कलकत्ता का टिकट खरीदने वाला एक व्यक्ति यात्रा में किसी अन्य स्थान पर नहीं रुकेगा; क्योंकि उसके विचार में उसका गन्तव्य ही सदैव रहता है। मार्ग के दृश्यों एवं चित्रों में वह अवश्य अभिरुचि रख सकता है; यहां-वहां वह नाश्ते-पानी के लिए ट्रेन से उतर सकता है; किन्तु, बीच में वह किसी स्थान पर एक घर नहीं ढूंढेगा। सालोक्य, सामीप्य एवं सारूप्य मध्य में आ सकती हैं और सचमुच वे आती ही हैं; किन्तु, उन स्थितियों से तुन्हें सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। स्मरण रखो, वे मध्यवर्ती स्टेशन हैं। तुम्हें हर एक पर पहुंचना है और उसके आगे यात्रा करनी है।

कुचेला के जीवन के इस प्रसंग में कुचेला की अपेक्षा उसकी पत्नी का व्यवहार अधिक महत्वपूर्ण है। उसमें अत्यधिक भक्ति है। **वस्तुतः स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अधिक भक्तिपूर्ण होती हैं। वे अपने मन पर अधिक अच्छा अधिकार कर सकती हैं।** उसकी स्त्री का यही भौतिक प्रेम था, जिसने उसे (कुचेला को) भगवान् के पास भेजने के लिए प्रेरित किया था ताकि उसकी सन्तान को भर-पेट भोजन मिल सके। उसे भगवान् में विश्वास था। कुचेला असमंजस में पड़ गया और उसने तर्क किया; "कृष्ण उसे नहीं पहचान सकते हैं, या उसे स्मरण नहीं कर सकते हैं, या उसे भीतर आमन्त्रित नहीं कर सकते हैं, या उसके सत्कार को स्वीकार नहीं कर सकते हैं।" भागवत् में वर्णन किया गया है कि वे निरन्तर परमेश्वर के ध्यान में लीन रहा करते थे। किन्तु, तब

उनके सन्देह की व्याख्या कैसे की जाए ? सब संशयों को परित्यक्त करने के लिये, तथा कम से कम कृष्ण के महल के फाटक तक पहुंचने के लिए, उसने उनसे अनुरोध किया । उसे यह विश्वास था कि यदि वे कम से कम इतना कष्ट उठावें, तो कृष्ण उनको अवश्य ही भीतर बुलायेंगे । **वस्तुतः अग्नि सबको उष्णता देती है, किन्तु उसके पास तो जाना ही पड़ेगा ।** क्या यह बात नहीं है ? दूर बैठ कर तुम यह शिकायत नहीं कर सकते हो कि अग्नि तुमको गर्मी नहीं पहुंचा रही है । कुचेला इतने कमज़ोर थे कि उन्हें केवल फाटक ही तक जाने के लिए विवश किया जा सकता था ।

एक बार, यह तय हो गया कि कुचेला जायेगा । एक अंजलीभर धान उसने एक स्थान पर छिपा के रखा था । उसने उसे वहां से निकाला एवं खौलते हुए जल में डाल दिया । पुनः, उसे निकाल कर उसने सुखाया । तब, उसे अग्नि से भून कर उसने 'चूड़ा' तैयार करने के लिए एक मूसल से पीटा; क्योंकि कुचेला ने उसे बताया था कि पाठशाला में कृष्ण का वह अतिप्रिय खाद्य था । देह पर धारण किये गये कपड़े के एक कोने में वह बांध दिया गया और कुचेला आगे बढ़े । उनका भय कदम-कदम पर बढ़ने लगा । **सच्चे भक्त में ऐसे भय का अभाव होना चाहिए । वह भगवान् के पास अधिकार रूप से अवश्य जाये तथा अपने प्राप्य अनुग्रह को भगवान् से अवश्य प्राप्त करे ।**

वस्तुतः **भगवान् आर्त एवं अर्थार्थी पर तथा जिज्ञासु एवं ज्ञानी पर भी अपनी कृपा-वृष्टि करता है । रुग्ण एवं दुखी व्यक्ति आर्त है तथा दरिद्रता का सताया व्यक्ति, जो समृद्धि एवं दौलत चाहता है, अर्थार्थी है ।** इसलिये कृष्ण ने उनको अपार हर्ष के साथ भीतर बुलाया तथा गुरु के चरणों में व्यतीत किये गये उन सुखमय दिनों का उन्हें स्मरण कराया । कुचेला अपने फटे वस्त्र के एक कोने में बंधी हुई उस सामान्य भेंट को छिपाने के लिए सिकुड़े जा रहे थे । तब, कृष्ण ने स्वयं उस खाद्य को खोज लिया और उसे बड़े चाव से खाने लगे । भक्ति ने इसे भगवान् के लिये बहुत स्वादिष्ट बना दिया था ।

यह वर्णन किया गया है कि तीसरी मुट्ठी भर जब भगवान् ने लिया तब रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़ लिया। भाष्यकारों द्वारा, प्रायशः, जो कारण बताया जाता है वह यह है कि रुक्मिणी को यह भय था कि कुछ और मुट्ठियों भर भगवान् द्वारा खाने के उपरान्त, सभी सम्पत्ति कुचेला के पास चली जायेगी। यह मूर्खता का विचार है! मानो, भगवान् की सम्पत्ति समाप्त होने वाली है। मानो भगवान् चिन्तित हो जायेंगे यदि भक्त सब धन ले जाते हैं! मानो **ब्रह्माण्ड की माता** अपने उपहारों में कृपण है!......यह कभी नहीं सत्य हो सकता है! कृष्ण के हाथ को उनके पकड़ने का असली कारण था—भक्ति-मय हृदय के उपहार में अपने अंश का उसने दावा किया था; उसका एक भाग वह स्वयं के लिए चाहती थी और हिस्सा लेना उसका अधिकार था।

कुचेला निराश हो कर द्वारका से चल पड़े; क्योंकि उन्हें कोई भी दान नहीं दिया गया या दान का वचन भी नहीं दिया गया। अपने परिवार एवं फाका करने वाली सन्तान का स्मरण करके वे दुःखी थे। वे दुःख में निमग्न थे। इसलिये वे अपने घर से आगे बढ़ गये और यह नहीं देख सके कि इसमें महान परिवर्तन हो गया है तथा रात भर में ही यह एक विशाल एवं बड़ा महल हो गया है। उनकी पत्नी ने उनको देखा, वापस बुलाया तथा यह बताया कि कृष्ण की कृपा ने उन पर कितना अकस्मात् सुख बरसाया है।

कुचेला की साधना उस दिन से प्रारम्भ हुई! उस दिन तक, वह एक कर्मकाण्डी मात्र था और शास्त्रों में निर्धारित आचारों के बाह्य रूपों का आचरण करता रहा। जब, उन्होंने यह अनुभव कर लिया कि अपनी महिमा के द्वारा भगवान् किस प्रकार निर्धनता को धनाढ्यता में रूपान्तरित कर सकते हैं; तब उन्होंने नित्यान्नद, अर्थात, 'सायुज्यता' को प्राप्त करने के लिये भगवान् के अनुग्रह को अर्जित करने का निश्चय किया। उसने सु-दर्शन, अर्थात् उसके लिए जो श्रेय है, प्राप्त किया। अपने भवन में भरे हुए भण्डारों के मध्य वह विना मोह के, संन्यासी के सदृश रहने लगे। वे समझ गये कि यह सब स्वप्न

मात्र है—अभी समृद्धि है, कल दरिद्रता है। एक सम्राट् ने स्वप्न देखा कि वे भिखारी हो गये तथा दरवाजे पर भिक्षा न मिलने पर वे रो पड़े एवं दूसरे दरवाजे पर पेट भर मिलने पर हर्षित हो उठे और देखा कि वे निर्धन नहीं थे; वे तो सम्राट् थे। वह भी एक स्वप्न है, एक भ्रम है।

ब्रह्म मात्र ही सत्य है, प्रकृति असत्य है। नित्य इस ज्ञान में रहो। यही सर्वश्रेष्ठ साधना है। **सुदर्शनम्—तुम्हारी उत्तम दृष्टि, मधुरम्—तुम्हारी मधुर वाणी, अर्पणम्—तुम्हारे उत्तम कर्म ! यह त्रिविध पथ है। बालक बनो, अपने अहंकार एवं अभिमान को गंवा दो।** जब तक, तुम गुणों के प्रदेश में हो और इच्छाओं से चालित होते हो, (चाहे अच्छे के लिये या भव्यता के लिये या हेय के लिये) तब तक तुम्हें स्वयं **मां** को ढूंढना पड़ेगा। जब तुम गुणों के बन्धनों से या कामनाओं के प्रलोभनों से मुक्त होगे, तब **मां** स्वयं तुम्हारी ओर दौड़ी आयेगी तथा तुम्हें अपनी गोद में लेकर आलिंगन करेगी।

अतएव, **अपनी दृष्टि को निर्मल करो, अपनी वाणी को मधुर बनाओ, तथा अपने कर्मों को पवित्र करो—इसी पथ में मोक्ष है।**

११ तमोगुणम्—तपोगुणम्

(प्रशान्ति निलयम, दिनाँक ७-६-६३)

ओरुगन्ती नरसिंह योगी गत तीन दिनों से तुमको कृष्ण-तत्व समझा रहे थे। पंडित या विद्वान् लोग वे साधन हैं जिनके द्वारा तुम लोग परमात्मा के रहस्य को समझने की कुंजी प्राप्त कर सकते हो। वे तुमको शास्त्रों का सारांश सरल शैली में देते हैं तथा जो भी अनुभव उन्होंने प्राप्त किया है, उसके अनुसार उनका अर्थ बताते हैं। नम्रतापूर्वक, श्रद्धा एवं भक्ति के साथ उनकी बातें तुम्हें ध्यान से सुननी चाहिएं।

अर्जुन ने कृष्ण से कहा, "इस समर भूमि में मैं एक **धीर** के रूप में आया, किन्तु, अब मैं एक **दीन** बन गया हूं; क्योंकि **आपके हाथों** में एक साधन मात्र हूं।" अर्जुन एक **चिन्मयमूर्ति** था, न कि अपनी कल्पना के अनुसार मृणमय-मूर्ति था। वह ईश्वरीय ज्ञान से भरा हुआ था; सांसारिक जड़ता से नहीं। केवल, उसको इसका ज्ञान नहीं था। मनुष्य की जैसी योग्यता होती है, वैसा संग उसे मिलता है। क्या यह बात नहीं है? उसकी संगत से तुम उसको समझ सकते हो। अच्छा; अर्जुन के साथ भगवान् स्वयं थे। अर्जुन में वह श्रद्धा थी जिससे वह गीता की शिक्षा पर अपने चित्र को समरभूमि में भी केन्द्रित कर सकता था और उस युद्ध के पूर्व, जो उसके परिवार के भाग्य का फैसला करने वाला था। उसमें वह भक्ति पर्याप्त थी, जो कृष्ण को उसे विश्वरूप —विराट्स्वरूप स्वयं—दिखाने के लिये विवश कर सकती थी। उसमें वह विनम्रता थी कि वह घोषित कर सकता था कि अपने सम्बन्धियों को मारने की अपेक्षा वह भिक्षा मांगेगा। और कृष्ण के चरणों पर गिरने की भी नम्रता थी, जब वह नहीं देख सकता था कि उसे किस प्रकार बढ़ना चाहिए।

उन गुणों का विकास करो और तुम भी भगवान् की संगति प्राप्त कर सकते हो। कृष्ण ने पुनः अर्जुन में कोंच-कोंचकर एवं उसकी कायरता एवं संन्यास की अक्षत्रिय मनोवृत्तियों के लिए उसकी हंसी उड़ाकर राजसिक गुणों को उभारा। इस प्रकार, तामसिक शिथिलता एवं अज्ञान दूर किये गये। कालान्तर में उन्होंने अर्जुन को सात्विक शूर में रूपान्तरित किया जो उस धर्म-युद्ध के लिये समर्थ हो जिसे वे छेड़ने वाले थे।

ईशावास्य उपनिषद् में अंकित है कि **अज्ञान सबसे बड़ा पाप है। गीता में वर्णित कार्पण्यदोष भी उसी अज्ञान का दूसरा नाम है। इस रोग के लिये गीता एक औषधि है और यह रोग अधिकांश मनुष्यों को कष्ट देता है। तुम सब लोग गीता प्रति दिन पढ़ो।** इस के कुछ श्लोकों को पढ़ो और उनके अर्थ पर स्वयं ध्यान करो, और यह तुम्हारे हृदय की निस्तब्धता में तुम्हारी समझ में आजायेगा। तुम्हें विस्तृत भाष्यों के पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। गीता का प्रत्येक शब्द एक रत्न है। अपने कान, नाक, एवं कण्ठ के लिये तुम्हें रत्नों की कोई आवश्यकता नहीं है। **गीता श्लोक रूपी रत्न को अपने हृदय में रखो और उन्हें अपनी बुद्धि एवं हाथों को सक्रिय करो।**

जब तक तुम एन्द्रीय जगत में उलझे हुए हो, तब तक तुम सत् को असत् से विलग नहीं कर सकते हो। किन्तु तुम्हें विवेक द्वारा सत्य का अन्वेषण करना है। तुम इस दायित्व को टाल नहीं सकते हो। तुम्हें यह करना ही पड़ेगा, अभी या बाद में। इस साहसिक कार्य में शक्ति, सम्मान, धन एवं अधिकार ये सब व्यर्थ हैं। पंजाब पर आक्रमण करने के समय में, सिकन्दर एक सुप्रसिद्ध ऋषि से मिलना चाहता था। वह ऋषि की गुफा के पास गया और आज्ञा की कि अत्यन्त कृतज्ञता एवं स्वागत-प्रदर्शन के साथ उसका अभिनन्दन किया जायेगा। किन्तु, साधु ने उससे एक ओर हटने एवं जाने के लिए आदेश मात्र दिया। संसार को कम्पित करने वाले उस प्रसिद्ध यूनानी विजेता में उनकी रुचि नहीं थी। सिकन्दर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने साधु को मार

डालने की धमकी दी। उसने म्यान से तलवार खींच ली। किन्तु, साधु ने हंसते हुए शान्तिपूर्वक कहा, "मैं मरता नहीं हूं। मैं मर नहीं सकता।" उस शब्द ने उसमें कुछ विचार पैदा किया और सिकन्दर ने अपनी तलवार को म्यान में रख लिया।

नरसिंह योगी ने उस के **लीला** विषय में कहा जिसमें ब्रह्मा वृन्दावन के समस्त निवासियों को पशुओं सहित ले जाते हैं। कृष्ण अपनी माया शक्ति से वैसे ही रूप के पुरुषों, स्त्रियों एवं बालकों, तथा पशुओं की रचना करते हैं और बिलकुल साधारण तौर से बिना जाने वे सब काम करते रहते हैं! किन्तु, ब्रह्मा अब विष्णु या कृष्ण से भिन्न नहीं हैं। वे एक दूसरे के विपरीत काम नहीं करते हैं। वे दोनों एक ही योजना को चलाते हैं। यह रूप वही रूप है। यह **उपाधि** एवं वह **उपाधि**—दोनों एक ही **महाशक्ति** के है। इन सब **लीलाओं** का अनिवार्य उद्देश्य आनन्द है। इसलिये, जब एक उपाधि में जो ब्रह्मा कही जाती है, वह ले जाता है तथा दूसरी उपाधि में जो कृष्ण कही जाती है, वह रचना करता है एवं स्थानापन्न करता है—यह सब **आनन्द** के लिये ही है जो इसमें सम्मिलित होने वालों, तमाशबीनों एवं बाद में इसे सुनने वालों को यह प्रदान करता है। अवतार की ईश्वरता को उद्घोषित करने का यह एक तरीका है और इसे करना ही पड़ता है ताकि लोग इसे ध्यान से सुनें एवं पालन करें। सामान्य व्यक्ति विस्मय में स्थित रहेगा तथा उसका भय, श्रद्धा में पक्का हो जायेगा। कालान्तर में, जब वह विवेचना करने लगेगा एवं पक्ष व विपक्ष का तर्क करेगा, तो भी यह अवतार प्रसन्न ही होगा; क्योंकि, इस प्रकार, विश्वास जम जायेगा।

मन निरन्तर चंचल है। इसे शिक्षित करना है। इसकी पारे की सी विशेषता को रोकना है। यह, वस्तुतः चैतन्य स्वरूप है और यह जब **चैतन्य** अर्थात्, परमात्मा में विलीन हो गया तभी स्थिर हो जायेगा। किसी झील पर बर्फ हो सकता है। यह हिम जड़ है। किन्तु इसे एक ओर घुमाओ तथा बगल में

दवाओ। जल का सहजस्वरूप—चैतन्य, स्वयं प्रकट हो जायेगा। चैतन्य को सुख-दुख नहीं है। यह सदैव एकरसता में रहता है। "मैं वह हूं।" मैं किसी एक से दुष्प्रभावित नहीं होता हूं। मेरी सम धी है—मेरी बुद्धि सम, दृढ़, अप्रभावित, अपरिवर्तित विवेक है।

मोतियाबिन्द को दूर कर दो तो दृष्टि साफ हो जाती है। उसी प्रकार हीनता की भावना को जो तुमको अभी छोटा बनाती है, दूर कर दो और यह सोचो कि तुम आत्मस्वरूप, नित्यस्वरूप एवं आनन्द स्वरूप हो। तब, तुम्हारा प्रत्येक कार्य एक यज्ञ, एक बलि, एवं एक पूजा हो जायेगा और तुम्हारे श्रवण, नेत्र, रसना, पांव—सभी तुम्हारी उन्नति के साधन बन जायेंगे, न कि तुम्हारे विनाश के फंदे बनेंगे। तमोगुण को तपोगुण में रूपान्तरित करो तथा अपनी स्वयं रक्षा करो।

तुम लोग सचमुच भाग्यशाली हो कि ऐसे विद्वान् एवं अनुभवी पण्डित अपनी विद्वत्ता एवं अपने हर्ष में तुम्हारे साथ शामिल होते हैं। जो तुम सुनते हो, उसके मनन का अभ्यास करो। अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने का वही सर्वोत्तम मार्ग है। तुम्हें एक और भी लाभ है। अपने अनुभव से तुम भागवत को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हो। स्वामी का स्वभाव विश्वप्रेम है। तुम इसे समझ गये हो और भागवतम् विश्वप्रेम की कथा है।

मैं घोषणा करता हूं कि मैं प्रत्येक व्यक्ति में, प्रत्येक प्राणी में हूं। इसलिये, किसी से घृणा न करो और न किसी के ऊपर सवार बनो। सदैव, सर्वत्र प्रेम का विस्तार करो। मेरे समादर का यह सर्वोत्तम पथ है। मुझे मापने या मूल्यांकन करने की चेष्टा न करो। मैं तुम्हारी समझ या बुद्धि के परे हूं। तुम अपने ही सन्तोष एवं तृप्ति के लिये प्रार्थना या पूजा करो। किन्तु, यह कहना गलत है कि केवल पुकारने पर ही मैं उत्तर दूंगा या मेरा विचार करने पर ही मैं रक्षा करूंगा। क्या तुमने यह घोषणा नहीं सुनी है—"सर्वथाः पाणि पादम् ?" तुम मेरी पदचाप सुन सकते हो; क्योंकि मैं तुम्हारे साथ, तुम्हारे

पीछे, तुम्हारे बगल चलता हूं। जब तुम कष्ट में चिल्लाते हो, "क्या तुम मेरे हृदय की धड़कन को नहीं सुनते हो ? क्या तुम इतने पाषाण हृदय हो गये हो ?" मेरे कान सुनने के लिये वहीं होंगे। कहो कि आंख की पुत्तली के समान मेरी रक्षा करो। मेरी आखें तुम्हारी रखवाली एवं रक्षा के लिये वहीं होंगी। पूजा के लिये धूपम् एवं अगरबत्ती रखो, मैं उन्हें सूंघता हूं। कोई भी नाम लो, मैं उत्तर देता हूं, जो भी प्रार्थना करो मैं पूरा करता हूं, किन्तु निर्मल हृदय एवं पवित्र उद्देश्य के सहित।

१२ तुम और मैं

(प्रशान्ति निलयम, दिनाँक ८-९-६३)

श्री सुब्बारैया के कथनानुसार देह को तीन गुणों की सीढ़ी पर चढ़ने के लिये काम में लाना चाहिये। तमोगुण से रजोगुण एवं रजोगुण से सतोगुण, ताकि अन्ततोगत्वा, तुम सीढ़ी के उपरान्त ऊपरी ऊँचाई में पहुंच सको। देह सभी शोकों एवं अशान्तियों की मूल है। आज मनुष्य के भाग्य में ये ही हैं। क्यों? **पूर्व जन्म में किये गये भले एवं बुरे साधनों द्वारा यह शरीर प्राप्त किया गया। उन्हें हम सामूहिक रूप से कर्म कहते है। मोह एवं घृणा, स्नेह एवं द्वेष से कर्म उत्पन्न होता है। वे पूर्ण अज्ञान की उपज हैं। वह समस्त सृष्टि की एकता, जिसमें वह स्वयं भी शामिल है, का अज्ञान है। यह अज्ञान सुज्ञान द्वारा ही दूर किया जा सकता है।** पेट का दर्द होने पर नमक अथवा गर्म पानी के थैले का पेट पर प्रयोग ही सर्वोत्तम उपचार है, आंखों के लिये तैयार किया गया सुरमा या अंजन नहीं!

परमात्मा की सर्वव्यापकता को स्वीकार करके एवं अपने व्यक्तित्व को उस सर्वव्यापी में विलीन करके ही अज्ञान का निवारण किया जा सकता है। सर्वप्रथम, "मैं तुम्हारा हूं" इस मनोवृत्ति का अभ्यास करो। तरंग को यह पता लगाने एवं स्वीकार करने दो कि वह सागर की है। यह प्रथम कदम उतना सरल नहीं है जितना सरल यह दिखाई देता है। लहर अपने नीचे विशाल सागर को, जो उसे उसका अस्तित्व प्रदान करता है, पहचानने में दीर्घ समय लगाती है। इसका अहं इतना शक्तिशाली है कि वह इसे समुद्र के सामने झुकने के लिए उतना विनम्र बनने की अनुमति नहीं देता है।

"नेनू नीवादू"—"मैं तुम्हारा हूं। तुम प्रभु हो तथा मैं एक दास हूं। तुम सत्ताधारी हो और मैं बन्धन में हूं।"—यह मानसिक वृत्ति अहं को पालतू बनायेगी तथा उसे बड़ी सक्रियता के साथ सुयोग्य बनायेगी। यह धार्मिक दृष्टिकोण है जिसे "मर्जर किशोर" कहते हैं—बिल्ली के बच्चे की अपनी मां के प्रति मनोवृत्ति है। अहं के सारे चिन्हों को दूर करके सहायता एवं पालन पोषण के लिये स्पष्टतया मिमियाना।

"नीवू नावाढ्"—"तुम मेरे हो"—यह दूसरा कदम है। यहां, तरङ्ग समुद्र से अधिकार के तौर पर सहायता की माँग करती है। यहां, भगवान् को व्यक्ति की देखरेख एवं पथप्रदर्शन का भार लेना ही पड़ता है। व्यक्ति महत्व रखता है, वह रक्षा का पात्र है। भक्त की आवश्यकता को पूरा करने के लिये भगवान् बाध्य हैं। सूरदास ने कहा था, "आप मेरे हैं। मैं आपको कभी नहीं छोड़ूंगा। आप को मैं अपने हृदय में बंदी बनाऊंगा और आप भाग नहीं सकेंगे।"

"नीवे नेनू"—"तुम ही मैं हो।" मैं तुम्हारी प्रतिमा मात्र हूं, तुम ही सत् या यथार्थ हो मेरा कोई पृथक् व्यक्तित्व नहीं है, कोई गुण नहीं है, सभी एक हैं। द्वैत भ्रम या अज्ञान मात्र है।

आध्यात्मिक जीवन का प्रथम लक्षण असंगता या वैराग्य है। यदि तुममें वैराग्य भाव नहीं है तो तुम आध्यात्मिक ज्ञान में निरक्षर हो। वैराग्य साधना का अ, ब, स है। वैराग्य भाव अवश्य इतना बलवान हो कि तुम इन्द्रियों के बन्धन को दूर कर सको। कुछ मिनटों का विचार मात्र ही किसी को भौतिक सम्पत्ति, प्रसिद्धि एवं सुख के खोखलेपन का विश्वास दिला सकता है। जब तुम सम्पन्न हो, तब प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारी प्रशंसा करता है, क्योंकि जब तालाब लबालब भरा रहता है तब चारों ओर सैकड़ों मेढक चिल्लाते हैं। एक कहावत है कि जब मुर्दे के शरीर पर अलंकार होते हैं, तब बहुतेरे उस

मृतक से रिश्ते का दावा करते हैं। यदि, उसके पास कोई कीमती वस्तु नहीं है तो कोई भी उसके लिये रोने नहीं आयेगा। विचार करो कि जब तुम अपने बैंक के खाते में अधिक-अधिक जमा करते जाते हो, तो क्या तुम स्ययं के लिए एवं अपनी सन्तानों के लिए दुःख नहीं संचित कर रहे हो और क्या अपनी सन्तान को स्वच्छ. सुखी एवं सम्मानपूर्ण जीवन बिताना कठिनतर नहीं बनाते जा रहे हो। दूषित उपायों से जब तुम तुच्छ ख्याति प्राप्त करने के लिये संघर्ष करते हो, तब स्मरण करो कि तुम्हारे करोड़ों देशवासियों में से आज कौन लोग सम्मानित हो रहे हैं और किसलिये? क्या तुम नहीं देखते हो कि जिन लोगों ने सर्वस्व त्याग दिया तथा परमात्मा के साक्षात्कार के कठोरतर पथ को, संसार के साक्षात्कार के सरलतर पथ के बदले चुना, वे सर्वत्र सम्मानित नहीं हो रहे हैं?

भाग्य के समी प्रहारों का, सभी विपत्तियों का एवं दुःखों का, उसी प्रकार स्वागत करो, जिस प्रकार, आभूषण का स्वरूप धारण करने के पूर्व सोना अग्नि, हथौड़ा, एवं निहाई का स्वागत करता है। अथवा, ईख जिस प्रकार गड़ासी, कोल्हू, भट्टी, कड़ाहा, विस्तारक एवं सुखावे का अभिनन्दन करती हैं, ताकि उसकी मधुरता आरक्षित रहे एवं सबके द्वारा चीनी के रूप में प्रयोग की जा सके। विध्वंस के भयानक आघात से भी पाण्डव कभी नहीं ढ़ीले पड़े। वे सुखी होते थे क्योंकि कृष्ण को स्मरण करने एवं उनसे भेंट करने में वे (विध्वंस) उनके सहायक हुए। मरणासन्न होने के समय बाण-शय्या पर भीष्म रो रहे थे। अर्जुन ने कारण पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया, "मैं आंसू बहा रहा हूं; क्योंकि पाण्डवों के द्वारा झेली गई आपत्तियाँ मेरे मन में प्रवेश कर रही हैं।" तघ अर्जुन ने कहा, "कलियुगी को शिक्षा देने के लिये यह किया गया है—**"अधिकार, पद, समृद्धि के लिये कभी संघर्ष न करो, अपितु, परमेश्वर की इच्छा के सम्मुख समर्पण कर दो, पूर्णतया त्यागपूर्वक, ताकि तुम निरन्तर सुखी एवं अविचलित रह सको।"**

भगवान् भक्त की ओर भक्त की अपेक्षा अधिक वेग से बढ़ता है। यदि

तुम उसकी ओर एक कदम उठाते हो, तो वह तुम्हारी ओर सैकड़ों कदम बढ़ता है। माता-पिता की अपेक्षा वह अधिक सिद्ध होगा। तुम्हारे भीतर से वह तुम्हारा पालन करेगा जैसे, उसने बहुतेरे सन्तों को, जो उनमें विश्वास करते थे, बचाया एवं पालन किया है।

१३ महारानियाँ बनो !

(महारानी महिला महाविद्यालय, दिनाँक १२-६-६३)

प्रधानाचार्या पार्वतम्मा इस दिवस की चिरकाल से कामना कर रही थीं कि मैं तुम्हारे विद्यालय में आ सकूं तथा तुमसे कुछ बातें कर सकूं। उन्होंने अभी बताया है कि यह विद्यालय पिच्चासी वर्षों से कायम है तथा इसने सहस्रों महिलाओं को शिक्षित किया है एवं जीवन के अनेक क्षेत्रों में भेजा है। भारत वह देश है, जहां 'भा' या ब्रह्मविद्या ने 'रति' या मनुष्यों के अनुराग को आकृष्ट किया है, जहां के लोगों में आध्यात्मिक साधना के लिये स्वाभाविक आकर्षण है और जहां पर **अनन्त की पुकार** उत्सुकता सहित सुनी जाती है। यह उत्सुकता आजकल अवनत हो गई है। यह एक महान् दुर्भाग्य है। तुम्हें यह अवश्य देखना है कि यह खो न जाये। तुम्हें निर्णय करना है कि यह, कम से कम, तुम लोगों के हृदयों में ही अवश्य पुनर्जीवित हो उठे।

उस आदर्श की पूर्ति के लिये दो पूर्व-अनिवार्यतायें हैं :— वह बुद्धि जो केवल सत्य से ही चालित होती है तथा वह चैतन्यता जो नीचता या दुष्टता की मलिनता को सहन नहीं करेगी। यह, वह 'अस्ति' या धन है जो किसी व्यक्ति को एक आस्तिक बनायेगा ! जहां तक हो सके, बुद्धि मूलभूत समस्या की अवश्य खोज करे—यह जन्म क्यों ? यह प्राण कहां हैं ? यह साहस कहाँ से आता है ?, मनुष्य के कर्मों का इस जीवन एवं भावी जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? चैतन्यता इसमें निहित ईश्वरत्व की गहराई में ग़ोता लगाये।

जो शिक्षा विनय एवं विवेक नहीं प्रदान करती है वह कीमती समय को नितान्त व्यर्थ गँवाना है। दूसरा कुछ तुम लोग सीखो या न सीखो; किन्तु

धार्मिक होने के लिये, एवं प्रत्यक्ष संसार के प्रलोभनों एवं आकर्षणों को रोकने के लिये आवश्यक शक्ति से स्वयं को अवश्य सुसज्जित करो। आजकल, अतिशय महत्व जिस चालाकी को दिया जाता है, वह विवेक नहीं है; किन्तु वह वस्तुओं को उनके उचित अनुपात में देखने की, क्षणिक एवं चिरस्थायी विशिष्ट एवं सार्वजनीन, छिछले एवं गहरे आदि को मूल्यांकन करने की क्षमता है। अतीत एवं पूर्वजों के प्रति सम्मान की भावना अवश्य रखो; क्योंकि वे सन्तों के उस आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुभव के भण्डार हैं; जिसको तुम्हें प्राप्त करना है। विश्वास भी रखो—अपनी अनिवार्य ईश्वरता में विश्वास रखो। उन उच्चतर मूल्यों में विश्वास रखो जो सच्चे अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। अस्वीकृति या निषेध की अल्प मात्रा से भी जीवन अधिक प्रिय एवं मधुर बन जाता है। यदि तुम जो चाहते हो वह प्राप्त कर लेते हो तो मन भर जाता है। जिन वस्तुओं की ओर तुम्हारा मन दौड़ता है उनमें से अनेक को अस्वीकार कर दो, तब तुम अच्छे एवं बुरे दोनों दिनों को सहन करने के लिए स्वयं को काफी मजबूत बना पाओगे।

अब, लोग वस्तु को वास्तविकता की अपेक्षा दिखावे को मानने के अभ्यस्त हैं। एक बार, एक आदमी था। वह गणेश का ऐसा हार्दिक भक्त था कि उसने उस देवता की, एवं उनकी सवारी के चूहे की प्रतिमा, छाता तथा अन्य सम्बन्धित वस्तुओं को स्वर्ण-निर्मित कराने में अपनी सारी सम्पत्ति समाप्त कर दी। कालान्तर में वह विपत्ति में पड़ गया। इसलिये, उसे इन प्रिय वस्तुओं को बेचना पड़ा। इन्हें खरीदने के लिए एक सौदागर तैयार हुआ। वह प्रत्येक को तोलने लगा तथा उनकी कीमत घोषित करने लगा। उसने जब यह कहा कि गणेश की उतनी ही कीमत होगी जितनी चूहे की; क्योंकि वजन में दोनों बराबर हैं। तब, वह आदमी क्रुद्ध हो गया तथा उसने शिकायत की कि उसको अपमानित किया जा रहा है। चूहे की अपेक्षा गणेश की कीमत अवश्य अधिक होनी चाहिये। इसका कारण यह था कि वह वास्तविकता को भूल गया और शकल-रूप एवं नाम को ही महत्व देने लगा था, द्रव्य-सार को

नहीं। मनुष्य के अधिकृत पद को ही महत्व दिया जाता है जो एक अस्थायी है। ज्योंही, वह अवकाश ग्रहण करता है और लाल बाग में एक बेंच पर बैठने लगता है, त्योंही, लोग उसको पहचानना एवं सलामी देना बंद कर देते हैं। जो शिक्षा केवल बाह्य चमक प्रदान करती है, वह अवसर को विनष्ट करना मात्र है।

शिक्षा, केवल जीविका के लिए नहीं है। यह जीवन के लिये, पूर्णतर जीवन के लिये, एक अधिक अर्थपूर्ण एवं अधिक सुयोग्य जीवन के लिये है। इसमें कोई हानि नहीं है यदि एक उपयोगितापूर्ण रोजगार के लिये भी है; किन्तु शिक्षित को यह ज्ञान रहे कि अस्तित्व ही सर्वस्व नहीं है, कि उपयोगितापूर्ण रोजगार ही सर्वस्व नहीं है। पुनः तर्क एवं आलोचना की शक्तियों के विकास के लिये, अथवा अपने विरोधी पर शास्त्रीय विजय पाने के लिये, अथवा भाषा या तर्कशास्त्र पर अपने अधिकार प्रदर्शन के लिये शिक्षा नहीं है। वह शिक्षा सर्वोत्तम है जो तुम्हें जन्म एवं मरण के इस चक्र पर विजय पाना सिखाती है, जो तुम्हें वह मानसिक सन्तुलन प्रदान करती है, जो मृत्यु के आगमन से दुष्प्रभावित नहीं होती है, तथा जो नियति के वरदानों या आघातों से विचलित नहीं होती है। वह स्वाध्याय वहां से प्रारम्भ होता है, जहां तुम्हारी यह शिक्षा समाप्त होती है।

इस भौतिक जगत का अध्ययन एवं विवेचन करने से तुम समझते हो कि यह शुभ एवं अशुभ का पुंजीकृत गोला मात्र है तथा तुम इस द्वैतता के परे की किसी वस्तु के लिये आकांक्षा करते हो। सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम को जब तुम उपार्जित कर लोगे, तभी तुम्हें प्रकाश प्राप्त होगा। मूल कारण यह है कि बुनियादी वस्तु ज्ञात या अनुभूत नहीं है। तब, चिर शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। डाक्टर ने बताया कि जहां सर्प ने तुम्हारे बेटे को काटा है, वहीं पर यह मलहम लगा दो। अज्ञानी पिता ने अपने पुत्र से पूछा "सर्प ने कहां काटा ?" बालक ने उत्तर दिया, "उस कोने में।" तब पिता ने फर्श के उस

स्थान पर मलहम लगा दिया ! दर्द किस प्रकार दूर हो सकता है ? **दीपक उस स्थान पर ले जाओ जहां अन्धकार है।** हर्ष एवं शोक दूसरों द्वारा उत्पन्न नहीं किये जाते हैं; वे तुम्हारे भीतर से ही उपजते हैं। इसलिये, स्वयं को ठीक करो; दूसरों पर दोष मत मढ़ो और न उन्हें ठीक करने की योजना बनाओ।

तुम लोग अपने कक्ष से पुस्तकों की ढेर विद्यालय ले जाती हो और वहां से फिर वापस लाती हो। तुम लोग उत्तर की अपेक्षा प्रश्नों को अधिक जानती हो। पुस्तकों के पृष्ठों को कंठाग्र करने की अपेक्षा, निरीक्षण एवं ध्यान (मनन) से अधिक सीख सकती हो। जो यथार्थतः मूल्यवान बातें हैं, वे तुम वेदों, उपनिषदों एवं धार्मिक ग्रन्थों से सीख सकती हो। एक व्यक्ति ने बढ़ी हुई गोदावरी को पार करने के लिये एक नौका ली। जब नदी की यात्रा प्रारम्भ हुई तब वे नाविक से एक सुन्दर वार्ता करने लगे। उससे उन्होंने पूछा कि वह कुछ पढ़ा-लिखा है। उसने उत्तर दिया कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा है। तब उन्होंने उदास होकर कहा, "तुम्हारे जीवन का एक चतुर्थांश व्यर्थ हो गया। मानो, तुमने उतने वर्षों को गोदावरी में डुबो दिया।" उन्होंने उससे पूछा, "क्या तुम अपनी घड़ी से मुझे समय बता सकते हो ?" नाविक ने स्वीकार किया कि उसके पास घड़ी नहीं है और न उसकी वह परवाह करता है। पंडित ने खेद प्रकट किया और कहा, "तुम्हारा आधा जीवन गोदावरी में चला गया है।" आगे उन्होंने नाविक से पूछा, "क्या तुम कोई समाचार पत्र पढ़ते हो ? कौनसा समाचार पत्र तुम्हें अधिक पसन्द है ?" नाविक ने उत्तर में कहा कि वह कोई समाचार पत्र नहीं पढ़ता है और बह कोई समाचार जानने की परवाह भी नहीं करता है। परवाह करने के लिये पहले से ही उसके पास बहुत कुछ है। पंडित ने तुरन्त घोषित किया कि उसके जीवन का तीन चौथाई नष्ट हो गया। तभी आँधी एवं बादलों से आकाश में अन्धकार छा गया तथा तत्काल वर्षा का भय हो गया। नाविक पंडित की ओर मुखातिब हुआ। अब प्रश्न पूछने की उसकी बारी थी। उसने पूछा, "क्या आप तैर सकते हैं ?" भयभीत यात्री ने स्वीकार किया कि वह नहीं तैर सकता। तब

नाविक ने कहा, "इस मामले में, आपका सम्पूर्ण जीवन गोदावरी में लीन होने जा रहा है।" आजकल, भारत में शिक्षितों की यह दशा है। मुसीबत में सहायता देने वाली, या नितांत आवश्यकता में अपने मानसिक सन्तुलन को पुनः प्राप्त करने की शिक्षा उनको नहीं प्राप्त है।

तुम लोग भौतिक सुखों एवं प्रलोभनों की बाढ़ के साथ बहे जा रहे हो। इस प्रकार, कितने समय तक बह सकते हो ? जब तुम कामनाओं के संसार में रहते हो, तब, **तुम्हें सुख एवं दुख दोनों के लिए कटिबद्ध रहना चाहिये। भोग रूपी मन्त्री को आमन्त्रित करो और तुम उनके साथ उनके व्यक्तिगत सचिव-रोग के आगमन के लिये भी अवश्य तैयार रहो। इसके विपरीत, त्याग या उसके सहकर्मी योग रूपी मन्त्री को आमन्त्रित करो और तुम उनके व्यक्तिगत सचिव-भोग का स्वागत करके सुखी होगे; क्योंकि वह अपने स्वामी की उपस्थिति में एक अल्प अभिनय दिखाता है।**

अनेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करना वास्तविक शिक्षा नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व घटित हुई एक घटना मुझे स्मरण है। एक शिक्षित सज्जन की पत्नी किसी लक्ष्मी नारायण से पत्र प्राप्त करती रहीं। उनके पति को संदेह हुआ कि वह उनकी पत्नी का सहपाठी मित्र है। एक दिन, एक तार आया कि उनकी पत्नी लक्ष्मी नारायण से रेलवे स्टेशन पर भेंट करें। उसके पति ने उस संदेश को छिपा दिया और वह आगे की घटना की प्रतीक्षा करने लगे। उस आगन्तुक एवं अपनी पत्नी पर भी वे क्रोध से भर गये थे। दुर्घटना टल गई, जबकि उसकी सहपाठिनी मित्र लक्ष्मी भीतर घुसी। वह उदास थी कि तार के अनुसार वह स्टेशन पर उससे मिलने नहीं गई। यह मालूम हुआ कि वह उसी नगर में आ चुकी थी: क्योंकि उसके पति, नारायण उस स्थान पर स्थानान्तरित कर दिए गये थे। ऐसे मूर्खतापूर्ण शंकाओं का स्रोत, केवल शिक्षा ही है।

यदि शिक्षित होने का दावा करने वालों में शीलम्-धार्मिक आचरण-नहीं

पाया जाय तो शिक्षा किस काम की है ? **निर्मल एवं दृढ़ चरित्र का विकास करो।** स्मरण रखो कि तुममें से अधिकांश का विवाह कर दिया जायेगा और तुम्हें कुटुम्बों के पालन करने का दायित्व लेना होगा—यह बहुत ही कीमती अवसर है। तुम अपनी प्रियता एवं अप्रियता तथा दूसरों की प्रियता एवं अप्रियता में सामञ्जस्य स्थापित करना सीखो तथा त्याग एवं सेवा की उत्तम कला को सीखो। अपनी स्मृति में रखो : जब तुम अपनी सास पर क्रोधपूर्वक प्रतिक्रिया करती हो, तो एक दिन वह आयेगा जब, तुम्हारी भी पतोहू आयेगी ! उनके (सास के) विचारों की प्रशंसा करने की चेष्टा करो, क्योंकि उनमें महत्तर पूर्वदर्शिता, महत्तर अनुभव, महत्तर दायित्व का भाव हो सकता हैं और लोगों के विषय में वे तुमसे अधिक जान सकती हैं। उनकी गृहस्थी में तुम लोगों ने तो अभी ताजे-ताजे प्रवेश किया है।

पाणिग्रहण के साथ अपने पति के जिस परिवार में तुम प्रवेश करती हो, वह एक उत्तम प्रशिक्षण स्थल है—एक साधना-क्षेत्र है। जब तुम पर कोई दोष आता है तब क्रोध से आगबबूला मत बनो। **अपने ही आचरण की जांच करो और स्वयं में दोष को ढूंढो क्योंकि आत्म-परीक्षा, आत्मोन्नति एवं शान्ति की प्रथम सीढ़ी है।** दूसरों के दोषों का बढ़ाचढ़ा के वर्णन न करो; किन्तु उन्हें एक विस्तीर्ण स्थान दो तथा उनको अल्प ही देखो। अपने दोषों को बढ़ा कर कहो, उन्हें बड़ा देखो तथा उन्हें शीघ्र दूर करने का प्रयत्न करो। **सभी छिद्रान्वेशकों को अपना मित्र एवं हितैषी समझो, क्योंकि वे समय से तुमको चेतावनी का संकेत देते हैं।**

मैं देखता हूं कि, आजकल, रूखी तर्कशीलता हर जगह फैली हुई है। यह एक खतरनाक लक्षण है। इसके कारण आदर-भाव अदृश्य हो गया है। शिक्षकों के लिए आदर-भाव भी समाप्त हो गया है। निश्चय ही, ऐसे अध्यापक भी हैं, जो अपने ही विद्यार्थियों से सिगरेट मांगकर अपनी मर्यादा को अवनत करते हैं। न्यायालय में एक हत्यारे को दण्ड दिया गया, किन्तु

अपने बचाव में तर्क करते समय उसने कहा, "गीता के कथनानुसार मैं आत्मा हूं। मैं कैसे हत्या कर सकता हूं, अथवा मृतक की हत्या कैसे हो सकती है?" न्यायाधीश ने उत्तर दिया, "चिन्ता मत करो। फांसी देने पर तुम नहीं मरोगे और न मैं तुमको फांसी दे सकता हूं। यह सब आत्मा है। वह न मरता है न मारता है, वह सर्वत्र एवं सब में है।"

ऐसे लोग तभी धर्म का उपयोग करते हैं, जब उनके अनुकूल होता है, अन्यथा, वे उसके आदेशों की परवाह भी नहीं करते हैं। **मधुर स्वभाव बनाओ और मधुर भाषण करो। मधुर भाषण उसका स्वाभाविक फल है। बिना क्रोध या घृणा के बात करो, बिना बनावट या पाबन्दी के बोलो तथा हृदय से सीधी वाणी निकालो। तब तुम सबमें आनन्द एवं प्रेम का प्रसारण करोगी।** जब तुम्हारे माता-पिता यह बताते हैं कि तुम्हारी इच्छा के अनुसार वे तुमको वस्त्र नहीं पहना सकते हैं, या वे सौंदर्य के अनेक प्रसाधनों को, जिनके लिए तुम लालायित होती हो, नहीं दे सकते हैं, तब, तुम क्रोध मत करो और न उनसे झगड़ा करो। **भीड़ व समूह के दबाव के सामने झुकने के लालच को रोकने के लिए पर्याप्त निर्भीक व साहसी बनो। स्मरण रखो —गुण-पोषण उतना ही महत्वपूर्ण है जितना देह-पोषण।**

आकर्षक वस्त्रों में सजी हुई एवं किताबों की ढेर लिए हुए तुम लोग मोटरगाड़ियों में इधर-उधर चलती हो। किन्तु मैं तुम्हें बताता हूँ कि **नारी की सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य-सामग्री उसकी पवित्रता या शीलम् है। निष्ठा, अनुशासन को महत्व प्रदान करो, नाश्ता-जलपान को नहीं। तुम नाश्ता गँवा सकती हो; किन्तु निष्ठा नहीं। तुम अभी से, नियमित एवं अनुशासित जिन्दगी व्यतीत करो। इसे अपनी आदत बना लो—यह तुम्हारा कवच है जो हानि से तुम्हारी रक्षा करेगा। प्रति दिन, किसी निश्चित समय पर भगवान् की स्तुति करो तथा उनका नाम भजो या उनकी महिमा का ध्यान करो!** तुम्हें पता चलेगा कि यह तुम्हें अत्यधिक पुरस्कृत कर रहा है। यह नहीं कहना, "मुझे

पुरस्कार को जांच करने दो और तब मैं साधना करूंगी।" अभ्यास प्रारम्भ करो; अनुभव अनुसरण करेगा और अवश्य अनुसरण करेगा।

यह कालेज महारानी महिला कालेज के नाम से प्रसिद्ध है। मैं चाहता हूं कि तुममें से **प्रत्येक एक महारानी, अपने गृहस्थी की रानी बने।** महारानियां संसार को राजमहल के आन्तरिक सदनों से, दीवाल झरोखों से अथवा घेरों से देखती हैं। वे दूसरों को देख सकती हैं, किन्तु दूसरों की दृष्टि से बची रहती हैं। यह उच्चतम स्त्री-धर्म है, जैसा शास्त्रों में अंकित है। **लोग न तुम्हें देख सकें और न तुम्हारे विषय में चर्चा कर सकें। इसलिए तुम जनसाधारण की दृष्टि से अवश्य दूर रहो। तुम मौन एवं अदृश्य रूप से जीवन में साझीदार, उत्प्रेरक एवं शिक्षक बनो।**

यदि, तुम चाहती हो कि दूसरे तुम्हारा सम्मान करें, तो तुम भी दूसरों का सम्मान करो; यदि दूसरे तुम्हारी सेवा करें, तो तुम पहले उनकी सेवा करो। प्रेम को प्रेम पैदा करता है; विश्वास को विश्वास जन्म देता है। अपनी बढ़ती एवं स्वार्थपरता अनेक विध्वंस करती हैं। सचमुच, दूसरों की सेवा करने के आनन्द की समता कोई दूसरा आनन्द नहीं कर सकता हैं। इस समय बताने वाली घड़ी के सदृश बनो। जो भी समय जानने के लिए आता हैं उसे यह ठीक समय बताती है। सूचना के लिए आने वाले किसी व्यक्ति में यह कोई भेद नहीं करती है। इसमें कोई प्रियता एवं अप्रियता—प्रेम एवं घृणा नहीं है।

लोग तुम्हें अबला—कमजोर कहते हैं। इसमें विश्वास मत करो। बुद्धि, अनुशासन या संयम, आध्यात्मिक क्षमता, दूसरों को श्रेष्ठता की चेतनता, किसी के दोषों का ज्ञान, आत्मोन्नति की उत्सुकता आदि ये सब मजबूत विषय तुम्हारे पक्ष में होते हुए तुम अबला कैसे कही जा सकती हो ?

तुम्हारी प्रधानाचार्या ने इस कालेज की वाटिका में एक चम्पक वृक्ष लगाने

के लिए मुझसे कहा । मैंने इस काम को सहर्ष किया । किन्तु, तुम्हारे हृदयों में प्रार्थना के पौधे को लगाकर मुझे महत्तर आनन्द मिलेगा । प्रार्थना पूर्ण जीवन विषयों के आक्रोष के सम्मुख नहीं हारेगा; अपितु यह शक्ति एवं सहयोग का एक स्रोत होगा । नाम-स्मरण के अनुशासन या नियम का पतन ही इस देश के पतन का कारण है । एक अकेले घर में, अब, दस दल एवं पार्टियां हैं तथा जो व्यक्ति अपने ही घरों का सुधार नहीं कर सकते हैं, वे ही देश का सुधार करने में लगे हैं तथा दूसरों को सहयोग एवं प्रेमपूर्वक रहने की सलाह देने लगे हैं । (यह एक विडम्बना मात्र हैं ।)

सभी प्राणियों का मूलाधार आत्मा है। उसके ज्ञान को हम अब भूल गये हैं और यही सभी, उपद्रवों उलझनों एवं आज कल के नैतिक संकटों का कारण है । सोतों को जगाने के लिए तथा उनको यह सन्देश देने के लिये ही मैं अवतीर्ण हुआ हूं । मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम सबका जीवन आनन्द एवं शान्ति से पूर्ण हो; मैं आशीर्वाद देता हूं कि इस विद्यालय का जीवन अनेक वर्षों तक उपयोगी जीवन बना रहे, ताकि वह इस देश की नारियों की आत्म-साक्षात्कार करने के लिये सहायता पहुंचाने में तथा ऐसा ही करने के लिये दूसरों की सहायता करने में उपयोगी हो सके ।

१४ अनाथ एवं सनाथ

(स्थान—मैसूर सिटी, वाणी विलासपुरम, दिनाँक १५-९-६३)

कन्नड़ एक मधुर एवं कोमल भाषा है; किन्तु इस समय मैं इस भाषा में बोलना नहीं चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि यदि मैं तेलुगू में बोलूं तो भी सब लोग मेरे अभिप्राय को समझ सकते हैं। कुंठित बालकों के लिये भवन एवं छात्रावास तथा 'महिला मक्कल कूट' के कारखाने का शिलान्यास करके मुझे हर्ष हो रहा है; क्योंकि सेवा ही सर्वोत्तम उपासना है। मैं जानता हूँ कि यह एक ऐसी संस्था है जो सच्ची सेवा करती है तथा यह निरी लौकिक विचारधारा के सागर में एक प्रकाशस्तम्भ है।

सेवा के सभी उच्चतर स्वरूपों के लिए भक्ति प्राण है। प्रेय एवं श्रेय—सांसारिक लाभ एवं आध्यात्मिक श्रेष्ठता, में से सुनन्दम्मा ने केवल श्रेय को ही चुना है। इसलिये, गाली देने पर भी वह काम करती रहती हैं और प्रशंसा करने पर भी उसे वह स्वीकार नहीं करती हैं। यदि अपने प्रयास में वह सफल होती है तो भगवान् में उनकी आस्था अवश्य दृढ़ होगी। इतना ही पर्याप्त है।

चुनाव के समय में तुम देखते हो कि लोग चारों ओर चक्कर काटते हैं, लोगों के पैरों पर गिरते हैं तथा वोट के लिए सबसे प्रार्थना करते हैं। वे भगवान् के चरणों पर गिर सकते थे तथा वे अपनी कृपा दिखाये होते। जो ईश्वर भक्त, विनम्रतापूर्ण एवं सेवा भावना से भरा होता है वह उतने वोट पाया होता जितनी उसे आवश्यकता होती और दरवाजे दरवाजे प्रार्थना करने का यह अपमान भी उसे नहीं सहना पड़ता। सज्जन बनो, सेवक बनो,

उपयोगी बनो, दयालु बनो, परमेश्वर से भय करो—लोगों का विश्वास तुम्हें प्राप्त होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि माननीय मंत्री श्री कंठी, जो यहां उपस्थित हैं, मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि ऐसे व्यक्ति को वोट मांगने की आवश्यकता नहीं हैं। लोग स्वयं आगे आयेंगे तथा उसके चरणों में अपना वोट अर्पित करेंगे। विश्वास, परमात्मा में विश्वास ही विजय का प्राण है। स्वयं में विश्वास, अपने हाथ में लिये सत् कर्म में विश्वास एवं सफलता में विश्वास होना चाहिए; असफलता के लक्षणों के होते हुए भी।

अनुराग एवं घृणा, ये समाज सेवा की किसी भी योजना की प्रगति के महान शत्रु हैं। क्यों, किसी भी कार्य की योजना के वे शत्रु हैं। यदि कोई व्यक्ति इस भ्रान्ति में पड़ा है कि वह दूसरों का उद्धार कर रहा है, तो उसे सन्ताप अवश्य होवे; क्योंकि वस्तुतः कोई दूसरा नहीं है। सभी एक हैं। हर व्यक्ति का शोक प्रत्येक व्यक्ति का शोक है। मुलभूत दोष है मनुष्य की अज्ञानता। यदि वह बुद्धिमान होता तो यह समझता कि सभी व्यक्ति एक ही आत्मा रूपी महासागर के तल पर तरङ्गें हैं।

हमारा आदर्श निष्काम कर्म होना चाहिए किन्तु, इस समय, प्रत्येक वस्तु का माप परिणाम या उससे उत्पन्न लाभ से किया जाता है। अध्ययन भी डिग्री के आधार पर प्राप्त वेतन के लिये है। यही इसका लक्ष्य है। जब तुम किसी व्यक्ति को प्रेम से पंखा झलते हो, तब तुम्हारे चले जाने पर वह तुमको दोष नहीं दे सकता है, किन्तु वेतनभोगी नौकर, पंखेवाला जब पंखा चलाना बन्द कर देता है, तब उसका स्वामी उसे दण्ड देता है। पूर्ववर्ती कार्य में काम निष्काम मार्ग से किया जाता है, लाभ प्राप्त करने का कोई भी लक्ष्य नहीं है। लाभ प्राप्ति की कामना सर्प के विषैले दांतों के समान है। उन्हें निकाल देने पर सभी कर्म हानिरहित हो जाता है।

निष्काम वृत्ति उपार्जित करने का सही साधन है समर्पण तथा समर्पण तभी सम्भव हो सकता है जब परमात्मा में तुम्हारा गहरा विश्वास हो। वह

विश्वास साधना से सुदृढ़ होता है। आजकल; आध्यात्मिक साधना नाश्ते के समान है जिसे कोई ग्रहण करता है। मुख्य भोजन साँसारिक है और संसार से है। आध्यात्मिकता भोजन का अधिकांश होना चाहिये।

ठीक समय पर गिरने के संकट का तुम्हें अवश्य ज्ञान रहे। उस घर के स्वामी के सदृश व्यवहार न करो, जिसने, अपनी स्त्री के यह कहने पर कि "मैं कुछ शोर सुन रही हूँ। कदाचित यह कोई चोर है।" उत्तर दिया, "मैं जानता हूँ। मेरी नींद में बाधा न डालो"। कुछ मिनट पश्चात वह बोली, "वह घर में घुस आया।" किन्तु, उसने उत्तर दिया, "मैं जानता हूँ।" कालान्तर में वह बोली, "वह सन्दूक खोल रहा है।" तिस पर भी उसने कहा, "मैं जानता हूँ।" और वह शान्त हो गया। कुछ समयोपरान्त वह बोली, "वह भाग रहा है।" स्वामी ने पूर्ववत् कहा, "मैं जानता हूँ।" उसने चोरी की चेतावनी पर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया। उसी प्रकार, तुम भी चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं देते हो; तुम खुली आखों विपत्ति की ओर बढ़ते हो।

एकबार यदि तुम यह समझ लो कि सभी एक आत्मा रूपी सागर के तल पर तरंङ्गें हैं, तो तुम अनाथ शब्द का कभी प्रयोग नहीं करोगे, जिसे मैंने पठित प्रतिवेदन में पाया। **एक विचार से, कोई अनाथ नहीं है। सभी सनाथ हैं, क्योंकि भगवान् सबकी देखभाल करते हैं वह पशुपति हैं—पशु का अर्थ है व्यक्तिशः जीव। सृष्टि में केवल एक पुरुष है: शेष सब स्त्री हैं। कोई मूर्ख भी नहीं है। वह ज्ञान स्वरूप परमात्मा विशिष्ट प्राकट्य द्वारा अभिनीत एक क्रीड़ा मात्र है।** त्यागराज के चलचित्र में नाजिया त्यागराज का अभिनय कर सकता है; किन्तु सभी समय उसका नाजिया होना है सत्यता या वास्तविकता। जीवन के नाटक में त्याग एक अस्थायी पात्र है।

इसे स्मरण रखो तथा परमात्मा की ओर अपनी यात्रा में नहीं रुको। आगे विस्तीर्ण पथ की यात्रा के लिये तुम पैट्रोल की टंकी को भरते हो। क्या

यह बात नहीं है । जब मोटरखाने में 'कार' को रखने का तुम विचार करते हो, तब तुम टंकी को नहीं भरते हो । हाँ शरीर को भी ईंधन दिया जाता है; ताकि यह परमात्मा की ओर यात्रा में चल सके । वह यात्रा कर्म, उत्तम कर्म, निष्काम कर्म के द्वारा होती है ऐसे कर्म को कायिक कर्म कहते हैं—देह में बन्दी आत्मा की मुक्ति के लिये शरीर का तप है ।

आकाश से गिरने वाली वर्षा के सभी बिन्दु सागर तक पहुंचने में समर्थ नहीं होते हैं । बहती हुई सरिता में प्रवाहित होने वाले ही कण सभी कणों के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं; क्योंकि वे सागर से (बादल रूप में) उगते हैं तथा वे अपने उद्गम स्थान को पहुंचने की आकांक्षा करते हैं ।

मैं देखता हूँ कि पंडाल के इस ओर धूप ने धावा बोल दिया है तथा तुम सबको छाया प्रदान करने के लिए यह पंडाल पर्याप्त बड़ा नहीं है । तुम्हें कष्ट पाते देखना मैं सहन नहीं कर सकता हूँ । मैंने देखा कि एक व्यक्ति वहां मूर्छित हो गया । यह विभूति उसके पास ले जाओ तथा एक गिलास जल में इसे मिला कर पिलादो । (उन्होंने एक बार दाहिने हाथ को घुमाया और अपनी कृपा के रूप में विभूति की मात्रा पैदा कर दी) जब मैं यहाँ से जाऊं तो एकत्र होकर भीड़ नहीं करना और मेरे पैरों को स्पर्श नहीं करना ।

अपने हृदय में नमस्कार करो । सबको कुचलने एवं आगे बढ़ने की अपेक्षा यह अधिक उत्तम है । यहां बहुत से वृद्ध पुरुष, बीमार व्यक्ति एवं बालक हैं । इस लिये शान्त एवं धीर बनो । ऐसा काम क्यों करते हो, जो तुम्हें पूर्ण सन्तोष नहीं प्रदान करता है और न तो मुझे ही सन्तोष प्रदान करता है । **साई को अपना हृदय-वासी बनाओ; यह तुम्हें हर्ष प्रदान करेगा एवं मुझे आनन्द ।**

१५ भवन एवं प्राणी

(स्थान—ट्रस्टी सभा, मैसूर सिटी, दिनाँक १५-६-६३)

मैंने स्वयं सुनन्दम्मा से आज शाम को आप लोगों को बुलाने के लिये कहा था, ताकि मैं आप लोगों से उस महान सामाजिक कार्य के विषय में बातें कर सकूँ, जिसमें आप लोग लीन हैं। आज प्रातःकाल, मैंने आपकी संस्था का शिलान्यास किया, क्योंकि आप लोग स्त्रियों एवं बालकों की सेवा कर रहे हैं, विशेषतः उन बालकों की, जिनकी बुद्धि में दोष है तथा जो शरीर से कमजोर हैं। मैं समझता हूँ कि आपको उन मनोविज्ञान-विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त है, जो अपूर्ण विकास वाले बालकों की समस्याओं को भली प्रकार समझ सकते हैं। जहां तक हो सके, उत्तम है।

दयालुता के इस उद्देश्य में सुनन्दम्मा की सहायता करने के लिये, ट्रस्टी की हैसियत से आप लोगों ने जो दायित्व लिया है, मैं आपको परामर्श देता हूँ कि आप बालकों एवं महिलाओं के रहने के लिए एवं अध्ययन कक्षों का निर्माण पहले करें। प्रार्थना भवन में विलम्ब किया जा सकता है; क्योंकि जहां ऐसा कार्य किया जाता है, वहां का वातावरण प्रार्थना पूर्ण होने के सिवाय दूसरा नहीं हो सकता है। जो कुछ आप लोग कर रहे हैं वह एक तपस्या है। जो बालक एवं वयस्क आप को एवं आपके प्रयत्नों को देख रहे हैं; उन्हें इससे अधिक उत्साहवर्धक और किसी बात की आवश्यकता नहीं है। अधिक उत्तम समय आने तक प्रार्थना भवन के लिए प्रतीक्षा की जा सकती है।

सुनन्दम्मा मुझसे बता रही थीं कि आप में से कुछ लोग भवन को प्राचीन

भारतीय भवन-कला का अवशेष चिह्न रूप में होना पसन्द करते हैं, वस्तुतः एक प्रकार का देवालय चाहते हैं। जबकि दूसरे लोग आधुनिकतम शैली को पसन्द करते हैं, जो स्पष्टतः उपयोगिता वादी एवं सस्ती हो तथा विस्तार पूर्ण सजावट के उद्देश्य से रहित हो। इस समय, बीसवीं शती में आप पर्णशाला का पुनरुत्थान नहीं कर सकते हैं। आप को सनातन एवं नूतन, प्राचीन एवं वर्तमान के मध्य का रास्ता खोजना होगा। और भी, मैं हृदय में सनातन भावना चाहता हूं, ईंट एवं गारे में नहीं। सभी बालक वर्तमान युग के हैं; उन पर इसके आकर्षण एवं मनोवृत्तियों का प्रभाव है। उस भवन की शैली, जिसमें ये निवास करते हैं; कैसे उनके दृष्टिकोण को परिवर्तित कर सकेगी ? तथा शिक्षकों की क्या बात है ? वे आधुनिक युग के रागों एवं द्वेषों से भरे हैं। **उनके हृदयों को पर्णशाला में बदल दो, इस देश के ऋषियों के आदर्शों एवं आकांक्षाओं से उनके हृदयों को भर दो, उनमें सादगी एवं सच्चाई भरी हो, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम का विस्तार करने की प्रेरणा से वे प्रेरित हों—तब, भवन की शैली का कोई महत्व नहीं है। मन के निर्माण की कला का ही महत्व है।**

यदि आधुनिक युग दी आवश्यकतायें परिवर्तन चाहती हैं, तो अनावश्यक वस्तुओं को बदल दो। सत्यता को इतना अधिक पतला न बना दो कि उसकी प्रामाणिकता, असलियत, समाप्त हो जाये। यदि कोई व्यक्ति लाल या नीले रंग का पेय पीना चाहता है, तो बोतल में लाल या नीला रंग न छोड़ो। पेय को लाल या नीले गिलास में उंडेल दो तथा उसे दे दो। इतना ही पर्याप्त है। यदि भवन की एक शैली अधिक प्रिय है, तो हर प्रकार से उसका निर्माण करें; किन्तु उस में जो कार्य करना है उसकी अनिवार्यता को, अथवा कार्य-कर्ताओं की मनोवृत्ति को परिवर्तित करें।

हित एवं मित—सुखद एवं स्वल्प—ये निदेश हैं। इसे अत्यधिक भड़कीला, अत्यधिक कमजोर, अत्यधिक कीमती एवं अत्यधिक मुलायम

नहीं बनाओ। मध्यम मार्ग ग्रहण करो। इससे अधिकतम उपयोगिता होगी। ऐन्द्रिक वस्तुओं की तृष्णाओं को पूर्णतया नहीं त्यक्त कर सकते हैं। अतः इन्हें आराधना के साधनों में रूपान्तरित करो। अपने सभी उद्योगों को भगवान् को समर्पित कर दो। सभी सफलताओं एवं असफलताओं को परमेश्वर की अनुकम्पा के प्रमाण रूप स्वीकार करो। उनके संकल्प का आदेश है कि वे उसी प्रकार घटित हों। छः रागों को आध्यात्मिक अभ्युत्थान के साधनों में रूपान्तरित कर दो।

मैं यह भी जानता हूं कि आप लोग अपनी योजनाओं की पूर्णता के लिए धनराशि के प्रति चिन्तित हैं। सुनन्दम्मा ने मुझे उपाय बताने के लिए भी कहीं। हां, जिसने अभी तक पथ-प्रदर्शन किया, वही इसके पश्चात् भी वैसा ही करेगा। यह अवश्य पूर्ण होगा; अन्यथा मैं शिलान्यास नहीं किया होता। धनाभाव से उत्तम कार्य कभी नहीं रुकते; भगवान् उनके उद्धार के लिए आयेंगे। केवल इसमें कुछ समय लगेगा; हतोत्साह नहीं होना। कच्ची नारंगी नितान्त कटु होती है, समय उसे स्वादिष्ट फल के रूप में मधुर बना देता है। धैर्य एवं कठिन उद्योग पुरस्कृत होंगे।

कुछ भी हो, मैं तुम्हें अवश्य बताऊं कि **ऐसे उत्तम कार्यों के लिए कुटिल उपायों से धन संग्रह नहीं करना चाहिये**। पवित्र हृदय वालों से, उत्तम रीति से उपार्जित धन में से तथा ऐसे व्यक्तियों से, जो दान के उद्देश्य को जानते हैं तथा उसकी श्लाघा करते हैं, धन लेना चाहिये। यही कारण है कि मैं सभी प्रकार के उन लाभकारी प्रदर्शनों का विरोध करता हूं, जिनमें आप लोग नृत्य या नाटक या चलचित्र दिखाने की चेष्टा करते हैं तथा अपनी प्रिय योजना के लिए धन संग्रह करते हैं। मैं लाटरी के भी विरुद्ध हूं जिसमें एक भारी पुरस्कार पाने का लोभ रहता है, जिसके लिए वह कुछ भी नहीं करता है तथा जो दूसरे लोगों के अर्जित धन में से एकत्र की जाती है एवं कोष-संग्रह के लिए काम में लाई जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय की परिपूर्णता से, अपने ही पहल से दान दे, जो कुछ भी दे सहर्ष दे तथा प्रस्तुत कार्य एवं इस संस्था की भावी सम्भावनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् दे। आपका कर्त्तव्य केवल उनको सूचित कर देना है। उन्हें विवश करने की भी चेष्टा न करें; **क्योंकि जो कार्य जन्मतः उत्तम है, उसके लिये याचना करना मानव प्रकृति का अपमान करना है। मांगने वाला एवं जिससे मांग की जाती है, दोनों ही अपमानित होते हैं।**

मैं आप लोगों को यही साहस एवं भरोसा देना चाहता हूं। विनम्रता एवं धीरता की भावना से कार्य करते रहें। आप अवश्य सफल होंगे।

१६. मानवकर्म-माधवकर्म

(स्थान—प्रशान्ति निलयम, श्री सत्य साई औषधालय-वार्षिकोत्सव, दिनाँक १८-१०-६३)

अनेक लोग पूजा के सब कर्मों को '**उसका**' समझते हैं तथा कमाने-खर्चने के सब कर्मों को '**अपना**' समझते हैं। किन्तु यह एक त्रुटि है। सभी कार्य 'उसके' हैं। मानवकर्म एवं माधवकर्म, ऐसा कोई भेद कार्यों में नहीं है। सभी कर्म तुम्हें माधव की ओर ले जाते हैं या उससे दूर ले जाते हैं। उदाहरणार्थ, तुम कहते हो कि तुम बीमार पड़ते हो या तुम स्वस्थ हो, इत्यादि। इसका कारण यह है कि तुम देह को ही 'तुम' समझते हो; किन्तु तुम केवल आत्मा हो, जिस पर तुमने पांच म्यानों को चढ़ा रखा है। आजकल प्रचलित शिक्षा प्रणाली का यह फल है। यह सिखाती है कि इन्द्रियों से जो आनन्द प्राप्त होता है, वही आनन्द कोई प्राप्त कर सकता है और वही आनन्द किसी को प्राप्त करने की आवश्यकता है। यह आनन्द के उस चिरन्तन स्रोत को, जो किसी व्यक्ति के भीतर स्वयं छिपा हुआ है, व्यक्ति से व्यक्त नहीं करता है। मानसिक शान्ति प्राप्त करने की कला की कोई शिक्षा नहीं दी जाती है। आधुनिक सभ्यता के कोलाहल में मानसिक शान्ति की स्थिति प्राप्त करने के रहस्य को नहीं बताया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को उस प्रवाह के साथ बहने के लिए विवश किया जाता है जो मानवता को भय, चिन्ता एवं निराशा की ओर घसीटती है।

आज कल का जीवन उस परिस्थिति के सदृश है जब गृह-स्वामी को आनन्द-रहित कड़े नियन्त्रणों में जकड़ दिया जाता है तथा परिवार के अन्य सदस्य शाही दावतें उड़ाते हैं। इन्द्रियां सीमाविहीन विचरण करती हैं तथा आत्मा

की उपेक्षा की जाती है। आधुनिक शिक्षा "विद्वान मूर्खों" को पैदा करती है यह ऐसे बुद्धिमान व्यक्तियों को उत्पन्न नहीं करती है जो जीवन का सामना शान्तिपूर्वक एवं वीरतापूर्वक कर सकें। इससे उत्पन्न व्यक्ति अपने को सूचनाओं से भरना, ऐसे अस्त्रों को निकालना या अपने साथियों के विनाश हेतु उनका प्रयोग करना, अथवा इन्द्रियों की क्षणिक तरङ्गों को तृप्त करना जानते हैं; किन्तु मृत्यु के संकट, जो संकट अपरिहार्य है, का सामना करने में असहाय हैं।

इस सभा के सभापति श्री हनुमान राव, आई० ए० एस०, ने कहा कि विगत चौदह वर्षों में वे इस स्थान पर नहीं आये और उस अवधि में इस स्थान पर इस औषधालय सहित अनेक महान विकास की चीजें घटित हुयीं।

तुममें से कोई-कोई यह पूछ सकते हैं कि यहां औषधालय क्यों होना चाहिये? प्रश्न यह है कि बाबा अपने संकल्प के द्वारा ही क्यों न सब रोगों को अच्छा करें। हाँ, एक बात है। **यह औषधालय मेरा एकमात्र औषधालय नहीं है। मद्रास में हनुमन्तराव का एक औषधालय है जहां विकलांग बालकों की दवा होती है तथा उन्हें उपयोगी एवं आत्म-गौरवपूर्ण व्यक्ति बनने की शिक्षा दी जाती है। वह भी मेरा औषधालय है। वस्तुतः हर स्थान पर स्थित सभी औषधालय मेरे हैं। मैं उन सब में जाता हूं। यही क्यों? वे सभी, जो किसी भी भाषा में, किसी भी देश से, औषधालय से अथवा घर से सहायतार्थ मुझे अपने हृदय से पुकारते हैं, मेरे हैं।** मुझे प्रशान्ति-निलयम के चहुँ ओर कुछ एकड़ धरती में सीमित नहीं करो। **प्रशान्ति की तृष्णा सहित कोई व्यक्ति कहीं भी रहता या प्रार्थना करता है, वहीं प्रशान्ति निलयम स्थित है।**

तुम्हें दूसरे मुद्दे को भी स्मरण रखना चाहिये। यह औषधालय आस्था को बढ़ाने में, ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति में, तथा संशय के निवारण में सहायता

करता है । वह भी आवश्यक है । और भी, गाये जाने वाले गीत के साथ-साथ तुम्हें समय का भी ध्यान रखना पड़ता है। अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो औषधि के उपचार के भूखे हैं तथा वे दवा पिलाने एवं सूई लगाने पर ही संतुष्ट होते हैं । अनुकम्पा में उनकी आस्था अभी तक दृढ़ नहीं है । इसलिए ऐसे व्यक्तियों के हेतु औषधालय की आवश्यकता है ।

अनुग्रह उपार्जन करो । यही प्रामाणिक लाभ है । यदि अनुग्रह-प्राप्ति हेतु आध्यात्मिक साधना, सरल जीवन, संतोष एवं अबाध शान्ति में फलित होती है, तो औषधालयों को बन्द किया जा सकता है ।

मनुष्यों को अपने निवासस्थल में घसीटने के लिए जब यमराज आते हैं तब कोई फँसरी नहीं लाते हैं । ग्रसित व्यक्ति स्वयं फंदे को रचता है तथा अपनी गर्दन के चारों ओर डाल लेता है तथा जीवनान्त के आगमन की प्रतीक्षा करता है । हर व्यक्ति इस कर्म-पाश को बनाता है तथा स्वयं को उसमें बांधता है और वही अंत में उसको घसीट ले जाता है । तुम अपनी वास्तविकता को जानो, तब तुम शरीर से एकरूपता के विचार को खो सकोगे । वह तुमको रोग-मुक्त कर देगा । तुम पूर्ण विश्रान्ति पाओगे । यह नितान्त सरल है यदि तुम यह समझ लो कि तुम शरीर नहीं हो; क्योंकि तुम, जन्म से सदैव इस सत्य का छः घन्टा प्रति दिन अभ्यास कर रहे हो । यदि तुम्हें यह नहीं सिखा सकता है तो मुझे आश्चर्य है कि कौन तुम्हें सिखा सकेगा ।

प्रति दिन सोते समय तुम कहां रहते हो ? तुम कौन हो ? तुम्हारी इन्द्रियां निष्क्रिय होती हैं, तुम्हारी बुद्धि स्थिर रहती है, तुम्हारा मन अपना एक निजी संसार रचता है तथा इसमें नियत काल क्रीड़ा करने के उपरान्त, वह निष्क्रियता में लीन हो जाता है । यही नींद है, समाधि की अपनी यात्रा में तुम निकटतम स्थान पर पहुंच जाते हो । **आत्मतत्व में निवास करो । यह शान्ति को सुनिश्चित करेगा । तुम्हारे भीतर राग-द्वेष का विष रहता है । फिर**

तुम अपने को स्वस्थ कैसे कह सकते हो ? आत्मत्व का अनुभव करने पर तुम स्वयं भगवान् बन जाओगे । यही कारण है कि मैं तुम्हें भक्तिलारा नहीं सम्बोधित करता हूं । तुम भक्त नहीं हो । तुम उससे भी अधिक हो । तुम्हें भगवान् होना चाहिए था । तुममें प्रत्येक, अपने पृथक् वैयक्तिक जीव को विश्व-जनीन आत्मा के महासागर में विलीन करके, भगवान् बन सकता है ।

मृत्यु उसी प्रकार झपटती आती है जैसे धरती पर चुगते हुए मुर्गी के बच्चों पर बाज टूटता है । मरने वाला व्यक्ति मुझे स्वागत करने के लिए प्रार्थना करता है । उसके निधन पर रोने वाले व्यक्ति उसे जीवित रखने के लिए मुझसे प्रार्थना करते हैं । मैं चित्र के दोनों पक्षों, अतीत एवं वर्तमान, अपराध एवं दण्ड, उपलब्धि एवं पुरस्कार—को जानता हूं । इसलिए, अनुग्रह द्वारा संशोधित करके भी मैं न्याय का ही पालन करता हूं । मैं इस प्रकार या उस प्रकार से प्रभावित नहीं होता हूं—संसार में किसी के आगमन से अथवा दूसरों के यहां से कूच करने से । मेरी प्रकृति नित्य-आनन्द है । तुम उस आनन्द में साझा कर सकते हो, मेरी शिक्षाओं का अनुसरण करके तथा मेरे कथन का अभ्यास करके ।

१७ प्रकाश-प्राप्ति-दिवस

(पुत्तापर्ती, दिनाँक १९-१० ६३)

मुझे आश्चर्य होता है कि तुमने मेरे लिये एक स्वागत-भाषण पढ़ा तथा ज्ञानस्वरूप, प्रेमस्वरूप आदि के रूप में मेरी प्रशंसा की। मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं आगन्तुक नहीं हूँ। इसलिये, मेरे स्वागत की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं कहीं भी आगन्तुक नहीं हूं और सभी स्थानों की अपेक्षा इस स्थान में, जहाँ मैंने जन्म लिया था, तो बिलकुल नहीं। मैं तुम्हारा हूं तथा मैं तुम्हारे अति निकट हूं। इसके अतिरिक्त; मैं इस प्रशंसा को नहीं पसन्द करता हूँ; क्योंकि प्रशंसा तुमको मुझसे कुछ दूर कर देती है; किन्तु मैं तुम्हारे संग में, तुम्हारी बगल में एवं तुम्हारे चारों ओर रहने में प्रसन्न रहता हूं। कोई पिता नहीं चाहता है कि उसका बेटा उसकी प्रशंसा करे; कोई पुत्र ऐसे स्वागत भाषण के सहित पिता के पास नहीं जाता है, जिसमें पाण्डित्य, सम्पत्ति, शक्ति, एवं सद्गुणों के उल्लेख सहित प्रशंसा की गई हो। बान्धवता सौहार्द्र को जगाती है। इसलिये, यहां पर औपचारिकता तथा व्यवहार की कोई आवश्यकता या अवसर नहीं है।

अब, सड़क की बत्तियों को जलाने के लिये मुझे आप ने कहा है और आपने उल्लेख किया है कि यह सर्वोच्च समय है, क्योंकि यह ग्राम अन्धकार से मुक्त प्रकाश-पूर्ण होने वाला है! मुझे यह कहने दो कि यह ग्राम आज प्रकाश नहीं पा रहा है; किन्तु इसने उस दिन प्रकाश पाया जिस दिन इस शक्ति ने इस स्थान में जन्म लिया! क्योंकि, यह अत्यल्प प्रकाश, जो खम्भे के चारों ओर थोड़े गजों तक ही प्रकाश करता है, उस प्रकाश की तुलना में कुछ नहीं है, जो हृदय को प्रकाशित करता है तथा आनन्द एवं शान्ति का प्रसारण करता है।

उस दिन से, तुम लोग देख रहे हो किस प्रकार सारे देश में वह **प्रकाश** फैल रहा है तथा समस्त संसार का ध्यान इस छोटे से ग्राम की ओर आकृष्ट कर रहा है, जो इन पहाड़ियों में स्थित है तथा सभ्यता की कलुषित धाराओं के प्रवाह से अति दूर है। अब, नव-निर्मित सड़कों पर मोटर गाड़ियां एवं 'लारियां' आती हैं। (आज ही गांव के चारों ओर इन सड़कों को पक्की सड़कों के स्तर तक सुधारने का निर्णय किया गया है); प्रशान्ति निलयम में एक आधुनिक औषधालय है, तुम्हारे बालकों के लिये एक सुन्दर पाठशाला की इमारत है तथा यह एवं पड़ोसी ग्राम इस अतिशय उपयोगी विद्युत तरङ्ग से लाभान्वित होंगे। तुम लोग घरेलू एवं खेती के अनेक कामों में इसका उपयोग कर सकते हो।

मेरे आने पर तुमने मुझे यह पुष्पहार प्रदान किया; किन्तु मैं अधिक प्रसन्न हुआ होता यदि तुममें से प्रत्येक व्यक्ति बुराई एवं दुष्टता के कीड़ों से मुक्त सुगन्धित फूल बना होता और परमात्मा की भक्ति रूपी धागे में गुंथा होता। इसका अर्थ यह है कि तुम अवश्य संगठित बनो; घृणा एवं द्वेष, दलबंदी एवं लोभ से मुक्त एक विचार के बने रहो। दलबन्दी को बढ़ाने वाले तत्वों से ही हर जगह ग्रामीण विनष्ट हो रहे हैं; क्योंकि वे उन खेतों में घृणा के कांटेदार बीज बोते हैं, जहां उपयोगी अन्न उगाने हैं।

आज, मद्रास एक बड़ा शहर है; किन्तु, बहुत पहले यह इस तरह का एक छोटा सा ग्राम था। यह अपने निवासियों के संयुक्त प्रयास के कारण बड़ा हुआ। उन लोगों ने हर एक सुविधाओं को प्रदान करने के लिये प्रयत्न किया और अपनी योजना की सफलता के लिये उन्होंने दूसरों के साथ मिलकर काम किया। इस ग्राम का नाम, आज सबकी जीभ पर है और वे करबद्ध इसका नाम उच्चारण करते हैं तथा किसी दिन यहां पर आने की कामना करते हैं। किन्तु इस सम्मान के प्रति तुम लोगों की कैसी प्रतिक्रिया हो रही है? बिना मेरे कहे, तुम इसका उत्तर स्वयं ढूंढ सकते हो। भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य से तथा भारत के बाहर के देशों से लोग यहाँ आते हैं और इस ग्राम से होकर

जाते हैं या तुम लोगों से मिलते हैं। कैसा प्रभाव उन पर पड़ता है ? तुम इसका उत्तर जानते हो।

यहां आने वाले लाखों मनुष्यों या इसके विषय में पढ़ने वालों के मन में इस ग्राम का नाम जो आशायें उत्पन्न करता है, यदि तुम उसके अनुरूप रहो, तो भी, तुमको प्राप्त होने वाले सुख की कोई सीमा नहीं रहे। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि तुम्हारा जीवन स्मरण से सिक्त है तथा प्रत्येक पल भगवान् को अपने मन में रखते हो, यद्यपि यहां आने वाले भक्त गण यह सोच सकते हैं कि तुम लोग भजन में नहीं आते हो या उनकी तरह तुम प्रशान्ति निलयम में बार-बार नहीं आते हो। वे आपस में कहते हैं कि पुट्टापर्ति, जहां सत्य साई बाबा ने जन्म लिया है, के निवासियों में भक्ति नहीं है। किन्तु, मैं जानता हूँ कि तुम प्रति क्षण मेरे विषय में विचार करते हो, मुझे देखते रहते हो, मेरे विषय में बातें करते हो, यात्रियों को मेरी ओर संकेत करते हो, इस ग्राम से बाहर जाने पर मेरे शीघ्र वापस आने की प्रतीक्षा करते हो; इत्यादि। यदि यह स्मरण नहीं है, तो यह क्या है ?

तुम सबने औरतों को अपने सिर पर एक के ऊपर दूसरे जल के घड़े रख कर ले जाते अवश्य देखा है; वे अपने कूल्हे पर बच्चे को लिये रहती हैं तथा साथ में लड़कों को भी चलाती हैं; किन्तु हर समय उनका विचार रसोई के चूल्हे पर और भोजन पर रहता है जो वहाँ पकाया जा रहा है; क्योंकि वे चिन्तित रहती हैं कि ध्यानाभाव से वह खराब न हो जाय। उसी प्रकार, तुम्हारा जीवन प्रशान्ति निलयम के लिये है एवं प्रशान्ति निलयम से है। इसलिये, यह कहना गलत है कि तुममें अत्यल्प भक्ति है। कदाचित्, तुममें भक्ति का वह रीति-स्वरूप नहीं है। बस यही बात है। तुम्हारे सदृश किसानों को भोर वेला से लेकर गोधूली तक सहस्रों छोटे-छोटे काम करने पड़ते हैं तथा इस प्रकार के प्रदर्शनों के लिये तुम्हारे पास अत्यल्प समय है। किन्तु, मैं जानता हूँ कि तुम्हारा जीवन एक अविराम वन्दना है, भगवान् के प्रति कृतज्ञता का है तथा सर्वशक्तिमान् के अनुग्रह की आकाँक्षा का है।

मैं तुमसे केवल इतना कहता हूँ कि तुम लोग मुझसे अधिक काम लो, दृढ़ता पूर्वक मेरी वाणी का अनुसरण करो तथा इस ग्राम के कल्याणार्थ जो भी योजनायें संयुक्त होकर बनाओ, उसे पूरा कराने के लिये मेरे पास आओ। भगवान्, शरीर में जीवन-रक्त के सदृश है। वह प्रत्येक भाग में, प्रत्येक अंग, मांसपेशी एवं धमनी में है। वह सब जीवों की शक्ति एवं ताकत है। केवल, तुम्हारी अज्ञानता समाप्त होनी चाहिए। तुम्हारा आनन्द मेरा आनन्द है। तुम्हारे शोक को मैं कम करूंगा एवं सान्त्वना दूंगा, तुम भगवान् से स्वयं को लगावो और सँसार की वस्तुओं से लगाव कम करो। सुख-प्राप्ति का पथ यही है। तुम्हारा काम बहुत सरल है; क्योंकि भगवान् के सहवास के आनन्द की अनुभूति करने वाले सहस्रों मनुष्य तुम्हारे सामने हैं।

इस ग्राम के शानदार लक्ष्य को स्मरण रखो। महान योगदान के लिये स्वयं को तैयार करो। यहां इतने अधिक परिमाण में उपलब्ध सत्संग में स्वयं को निमग्न कर दो। एक दल बनाओ और प्रत्येक सप्ताह किसी स्थान में भजन करते रहो। अपने अधरों पर भगवान् का नाम निरन्तर रखो और तुम देखोगे कि तुम्हारे हृदयों से ईर्ष्या एवं घृणा के सभी विचार अदृश्य हो गये। यदि तुम वास्तविक आत्मोत्थान में कुछ सच्ची अभिरुचि दिखाओ, तो मैं तुम्हारी सहायता करने एवं तुम्हारे प्रयत्नों को सफल बनाने के लिये तैयार हूँ।

१८ विद्वान महासभा

(स्थान—प्रशान्ति निलयम, २०-१०-६३)

मन्त्री चेन्ना रेड्डी ने भारतवर्ष के सभी प्रान्तों से आये हुए सहस्रों व्यक्तियों से तथा तीन सौ से अधिक सख्या में उपस्थित विद्वानों की मण्डली से, जो प्रशान्ति विद्वान महासभा के उद्घाटन समारोह में भाग लेने के लिए पधारे हैं, कहा है। हा, वे सभी इस कर्मक्षेत्र में मुक्ति के परमेश्वर की ओर यात्रा करने वाले तीर्थ यात्री हैं। अपनी क्षमता के अनुसार प्रत्येक गतिमान है। सांसारिक नैराश्य से उत्पन्न उदासीनता लक्ष्य की विभूति में आस्तिक्य के अभाव से जन्य निरुत्साह अथवा वहां तक पहुंचने की अपनी क्षमता में ही विश्वास का अभाव—ये सब गति पर प्रभाव डालते हैं; किन्तु इस लक्ष्य की ओर चलना प्रत्येक व्यक्ति की अपरिहार्य नियति है।

शक्ति-प्रदायिका एवं शान्ति-जनक भारतीय संस्कृति, विदेशी शासन के सैकड़ों वर्षों में पश्चिम द्वारा लाये गये चमकदार एवं भड़कीले आदर्शों में निमग्न हो गई है। इस देश के निवासियों का ध्यान उच्च शिखरों से इन्द्रियों एवं पेट की तुच्छ आवश्यकताओं पर आकृष्ट हो गया है। अपने भविष्य को निरुपित करने का अधिकार प्राप्त करने पर भी भारतीयों ने अपनी परिस्थिति को उन्नत नहीं बनाया, क्योंकि वे ही हानिकारक मनोवृत्तियां निरन्तर चलाई जा रही हैं। अतीत युगों का विश्वासों एवं आचरणों के अन्धविश्वासों के रूप में, गौरवमयी संस्कृति के उत्तराधिकारियों द्वारा ही उस (साँस्कृतिक) वसीयत की निन्दा की जा रही है। अन्धविश्वास के रूप में उनको त्यागने वाले लोगों से मैं सहमत नहीं हूं; क्योंकि विश्वास करने वालों तथा विश्वास के अनुरूप कार्य करने वालों को उसने आनन्द एवं शान्ति का अत्यन्त मूल्यवान

भण्डार प्रदान किया । कर्म के विषैले दाँतों को निकालने में उसने सहायता की ; ये दांत ही लोभ, अहंकार एवं घृणा आदि की सूई लगाते हैं ।

उन्होंने कर्म को पवित्र कर्तव्य के रूप में करने की मनुष्य को शिक्षा दी तथा फल को परमेश्वर पर छोड़ने के लिये कहा । इस प्रकार उन्होंने दो बुराइयों से दूर रखा—मिथ्या अहंकार की बुराई एवं निराशा की बुराई से बचाया । कर्म की सफलता पर अहंकार एवं असफल होने पर निराशा होती थी । इसने कुछ ठोस भलाई भी की—कभी भली प्रकार किया गया । उतने ही अच्छी प्रकार जितना एक व्यक्ति कर सकता है; क्योंकि सभी कर्म सर्वोच्च सत्ता की पूजा में रूपान्तरित होते थे । निष्काम कर्म पर बल देने से मनुष्य की अन्तहीन कामना एवं अवर्णनीय शोक से रक्षा हुई । इस समय, जल के सदृश मनुष्य निरन्तर नीचे की ओर बह रहा है तथा तुच्छतम निराशा पर विलपने लगता है ।

पुन: एक बार, वह मनोवृत्ति मनुष्य में आरोपित होनी चाहिये । उसने एक विदूषक; चाकर या एक अतिरिक्त व्यक्ति के खेल का अभिनय बहुत समय तक किया है । यही समय है जब उसे एक शूरवीर नायक के अभिनय को स्वीकार करना चाहिये, जिसके लिये वह जन्म लिया है तथा सुसज्जित किया गया है । इसलिये, माली की भाँति, जो रङ्ग-बिरङ्गे फूलों को, भिन्न भिन्न आकारों एवं सौरभ से युक्त फूलों को चुनता है तथा एक पुष्पमाला बनाता है । प्रशान्ति विद्वान सभा ने भी इन पण्डितों को चुना है तथा एक हार बनाया है ।

इस सभा का उद्देश्य है सबको यह स्मरण कराना कि उसे एक वीर नायक का अभिनय करना है । सचमुच, मैं तो फूलों का प्राणदाता हूं ! हार बनाने वाला माली नहीं हूँ ! विद्वानों की शूरता इस देश से विदा हो चुकी है तथा अज्ञानियों की दुर्बलता ने लोगों को पराभूत कर लिया है । इसे सुधारना है । आलस्य ने प्रयत्नशीलता का स्थान ग्रहण कर लिया है तथा हिचक या

संशय ने साहस को अवरुद्ध कर दिया है। दूसरे देशों में भी मूल्यों के विचार को तथा मनुष्य की ईश्वरता या दिव्यता में आस्था को पुनः संचित करना है। यही कर्म है जिसके लिये मैं अवतरित हुआ हूं।

अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण पण्डित भी सुखी नहीं हैं। जिन धर्मग्रन्थों पर उन्होंने अधिकार प्राप्त किया है वे मन को शान्ति देने वाले, सन्तोष एवं अडिग आनन्द देने वाले बनाये गये हैं; किन्तु उस पाण्डित्य के भण्डारी आजकल अत्यन्त असन्तुष्ट समाज हैं। उनके हाथ में छाता अवश्य है, किन्तु वह वर्षा या धूप से उनकी रक्षा नहीं करता है। इसलिये, जिस ज्ञान का वे वहन करते हैं, उसके वैशिष्ट्य का तथा उसकी निदान शक्ति का उन्हें भी ज्ञान कराना है।

स्वयं को जानो—सूर्य एवं चन्द्रमा को नहीं—मनुष्य की बुराइयों की यह अचूक या अमोघ औषधि है। अपने को उसी प्रकार ध्यान से देखते रहो जैसे तुम उस तार को देखते हो, जिसमें से तरङ्ग प्रवाहित होती है। मन से सम्पर्क न स्थापित करो; क्योंकि यह उतना बुरा है जितना तार का पकड़ना। थोड़े दूर से इसे देखो। तभी तुम आनन्द प्राप्त कर सकते हो। जहाँ अज्ञान रहता है, ठीक वहीं पर उसके कारण को ढूंढो। तब, तुमको ज्ञात होगा विषय के साथ मन के संयोग में ही कारण है। इसे विषय की दृष्टि से काट दो और ज्ञान का सुप्रभात होगा।

एक व्यक्ति था जिसने अपने को स्थितप्रज्ञ एवं योगदक्ष घोषित किया था। एक पल में उसने समाधि लगाई तथा अपनी कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्मरन्ध्र में प्रेषित किया! तब उसने स्वयं को नदी की घाटी में गड़वा दिया; किन्तु कुछ दिनों के उपरान्त वह उठा तथा तमाशा देखने वालों से पैसे मांगने लगा! यह उदात्त भाव से निन्दनीय स्तर पर अधोगमन था। एकरूप या दृढ़ रहो तथा अपने घोषित कथनों के अनुरूप कार्य करो।

प्रशान्ति विद्वान सभा के सदस्यों को अपनी विद्वत्ता, अपने अनुभव एवं

अपने हर्ष में देशवासियों के साथ सम्मिलित होना है। यह उनका प्रारम्भिक कर्त्तव्य है! इसके लिये, उन्हें कोई धन सम्बन्धी लाभ नहीं लेना है; क्योंकि वे केवल अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं, वे अपने ही हर्ष का संवर्धन कर रहे हैं तथा अपने उत्साह में सम्मिलित हो रहे हैं।

मुझे निश्चय है कि यह सभा विजय पर विजय प्राप्त करेगी; क्योंकि यह मेरे कार्य में योग देने वाला है। क्या आप को बिश्वास होगा कि यह विशाल श्रुतिभवन पन्द्रह दिनों में निर्मित किया गया था ? यह पूर्णतया भक्तों द्वारा ही किया गया। एक भी मजदूर नहीं लगाया गया। चित्रावदी ने वहुत सहायता की; क्योंकि उसने वह रेत प्रदान की जिससे यह स्थान भरा गया। कोई सरकार या कोई सत्ताधारी शक्ति इतनी शीघ्र सफल नहीं हो सकती थी। केवल भक्ति ही इस एकरूप श्रद्धा को प्रेरणा प्रदान कर सकती है। यह सब केवल संकल्प का प्रभाव है। इस लिये, महासभा अपने महान कार्य का अबाध पालन करेगी।

१६ लोक कल्याण

(प्रशान्ति निलयम, दिनाँक २१-१०-६३)

कर्म का अर्थ जो लोक-मान्य है वह है किसी की नियति, भाग्य, भाल का अपरिहार्य "लेख" जो स्वयं कार्यान्वित होता है। किन्तु लोग भूल जाते हैं कि यह किसी दूसरे हाथ से नहीं लिखा जाता है। यह अपने ही हाथों से लिखा जाता है। जो हाथ से लिखता है, वह इसको मिटा भी सकता है। धान के साथ की भूसी प्रयत्न करके हटाई जा सकती है। उसी प्रकार उस नियति के लिखने के लिये तुम्हें विवश करने वाली **माया** एक क्षण में जीती जा सकती है और तब पूरा पृष्ठ मिटाया जा सकता है।

मनुष्य स्वयं के लिये रेशम के धागे कातते हैं और वे उससे कष्ट भोगते हैं; क्योंकि वे उससे बाहर प्रकाश के जगत् में आने में असमर्थ हैं। वे घुमक्कड़ भिखारी के द्वारा पकड़े गये बन्दरों के समान हैं; जो रस्सी के एक छोर पर नाचता रहता है तथा वृत्त के चारों ओर बैठे हुए लोगों से पैसे मांगता है। शंकराचार्य ने कहा था कि वे शिव को स्वेच्छापूर्वक बन्दर (मन) को अर्पण कर देंगे ताकि **वे** इस प्रकार के खेल को, जो **उनको** प्रिय हैं, सिखा सकें तथा अपने लिये भिक्षा प्राप्त करने के लिये उसे काम से ला सकें। अर्थात, शंकराचार्य ने अपने मन को परमेश्वर के विचार से भरने का प्रस्ताव किया, ताकि मन रूपी बन्दर पालतू हो जाये तथा परमेश्वर के उद्देश्य को पूरा करने के लिये बाध्य किया जा सके। **तुम लोग मन को परमेश्वर का दास अवश्य बनाओ, इन्द्रियों का दास नहीं।**

तुम लोगों ने हवा में हिलने वाली डाली पर बैठी एक चिड़िया अवश्य देखी होगी। यह निर्भय है; क्योंकि शाखा की अपेक्षा उसे अपने पंखों पर अधिक

भरोसा है और वह जानती है कि वह किसी क्षण उड़ सकती है एवं उस डाली को, अनिश्चित डाली को त्याग सकती है। शाखा प्रकृति (माया) है तथा पंखें परमेश्वर की कृपा है। पंखों की शक्ति का विकास करो और किसी भी वृक्ष पर बैठ जाओ। तुम्हें कोई हानि नहीं होगी। किन्तु, यदि तुम लोग प्रकृति पर विश्वास करते हो तथा इसके द्वारा प्रदत्त सुरक्षा पर ही भरोसा करते हो तो तुम अवश्य गिरोगे।

मण्डलपुरी नारायण शास्त्री एवं वाजपेयम् वेंकटेश्वर अवधानी, दोनों ने अभी बताया है कि धर्म ठीक-ठीक क्या है तथा प्रत्येक व्यक्ति के धर्म को निर्धारित करने के लिये क्या मापक है। यह एक सरल एवं बोधगम्य परीक्षा है। यदि तुम सोचते एवं अनुभव करते हो कि तुम ब्राह्मण हो तो तुम्हें शास्त्रों में अंकित ब्राह्मण धर्म का पालन करना चाहिये; यदि तुम सोचते हो एवं विश्वास करते हो कि तुम आत्मा हो तो तुम्हारा धर्म आत्मधर्म है। यदि तुम सोचते हो तथा यदि तुम्हें निश्चय है कि तुम देह हो, तब तुम्हारा धर्म देहधर्म है।

किन्तु, प्रत्येक व्यक्ति को उच्चतर मूल्यों को अंगीकार करना चाहिये तथा स्वयं को आत्मा समझना चाहिये एवं आत्म-धर्म का अनुसरण करना चाहिये। यह लक्ष्य है जिसके लिये मैं आया हूं। विद्वान महासभा का यही कार्य है। चींटियां जहां कहीं होती हैं, उनके उपनिवेशों के पास ले जाने वाले द्वार के पास ही चीनी रखी जाती हैं। सभी मनुष्य मेरे हैं। इसलिये, अज्ञान या सीमित ज्ञान के परिणामों से समस्त संसार की रक्षा करनी है। मैं अपने सभी आदमियों को अपने निकट लाऊंगा; क्योंकि वे मेरे हैं एवं मैं उनका हूं। तदनन्तर, मैं उनको शिक्षा देना एवं ट्रेनिङ्ग देना प्रारम्भ करूंगा, जब तक वे अहंकार-मुक्त नहीं हो जायेंगे।

विगत पच्चीस वर्षों तक मधुरता, दयालुता एवं कोमल आकर्षण का ही प्रयोग किया गया है; किन्तु इसके पश्चात् यह काम भिन्न होगा। मैं उनको

घसीट लाऊंगा, उनको टेबुल पर सुलाऊंगा एवं चीरफाड़ करूंगा । अर्थात्, मुझमें क्रोध या घृणा नहीं है। मुझमें प्रेम मात्र है। यह प्रेम ही है जो उनकी रक्षा के लिये, तथा दलदल में गहरे तक धंसने के पूर्व उनकी आँखों को खोलने के लिये मुझे उद्यत करता है।

कल एक संगठन का उद्घाटन किया गया। वेद एवं वेदान्त की शिक्षा से अभी तक अपरिचित व्यक्तियों; इसकी प्रणालियों को ठीक से ग्रहण न करने तथा पूर्णतया पचाने की पर्याप्त क्षमता न रखने वाले व्यक्तियों के पास यह संगठन (विद्वान महासभा) पहुंचेगा। उन्हें यह शिक्षा अल्प मात्रा में एवं ग्राह्य रूप में प्रेमपूर्वक एवं सहानुभूतिपूर्वक प्रदान की जायेगी। इनमें से प्रत्येक पंडित अज्ञान के निवारण में कुछ अंश योगदान करेगा। प्राचीन वैदिक प्रार्थना— "तमसो मा ज्योतिर्गमय" इसका आदर्श होगा। इन विशाल दीपकों से छोटे दीपकों को जलाते हुए, यह एक ग्राम से दूसरे ग्राम में दीपक जलाती रहेगी।

यह कार्य करना अनिवार्य है; किन्तु शासक इसे नहीं करेंगे और न तो शासित यह कहते हैं कि इसे पूरा किया जाय। जब तक शिशु नहीं रोता है, तब तक मां उसे नहीं खिलाती है। किन्तु यह 'मां' भिन्न है। यह जानती है कि शिशु को अवश्य खिलाना है और कब खिलाना है। यह आगमन स्वयं मेरे संकल्प के अनुसार है। इस अवतार में प्रत्येक कदम मेरे ही संकल्प के कारण है; भक्तों के अनुरोध एवं अनुनय के कारण नहीं है। भक्त बिरले ही जानते हैं कि उनके लिये क्या उत्तम है।

चूंकि, ब्राह्मण वेदों एवं शास्त्रों के संरक्षक हैं, इसलिये ब्राह्मणों के पालन-पोषण से वेदों एवं शास्त्रों का पालन-पोषण होगा तथा लोक-कल्याण की सुरक्षा होगी। कुछ लोग कहते हैं कि ब्राह्मणों ने वेद-शास्त्र पर एकाधिकार कर लिया है और वे अपने लाभ के लिये उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। यह भी कहा जाता है कि ब्राह्मणों की सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये वेद, उनके एक गुट द्वारा रचित महान् षडयन्त्र हैं। यह सत्य से अति दूर है। ब्राह्मणों को जिन

सारे शासनों एवं नियमों, निषेधों एव अस्वीकृतियों का पालन करना पड़ता है, उन्हें देखो। इन सबकी रचना ब्राह्मणों के लिये, ब्राह्मणों द्वारा स्वयं की गई थी। खाना-पीना, चलना-फिरना, सोना-उठना, बात-चीत करना, काम करना, देना-लेना, कमाना एवं खर्चना—जिन्दगी की ये सब क्रियायें सैकड़ों नियन्त्रणों द्वारा नियन्त्रित हैं। ये बातें यह असर नहीं पैदा करती हैं कि उनका यह एक सामूहिक निश्चय है कि समाज के शेष लोगों की कीमत पर वे सुख-भोग करें। और भी, एक ब्राह्मण का संयमित जीवन एवं रीतियां, संकल्प, उपवास एवं जप आदि, जिनका वह पालन करता है, का उद्देश्य समस्त संसार को लाभ पहुंचाना एवं लोककल्याण को सुरक्षित रखना है। वस्तुतः, तुम लोग अधिक से अधिक ब्राह्मणों को संयमित जीवन की परम्परागत प्रणाली को कायम रखने के लिये अवश्य प्रोत्साहित करो। विद्वान् महासभा के उद्देश्यों में से यह भी एक है।

भवानी ने शिवाजी को एक तलवार दी तथा धर्म की पुनर्स्थापना के स्वकर्म के लिये उनको भेजा था। यह शिव-शक्ति इन पण्डितों के हाथ में धैर्यम् की तलवार दे रही है और लोगों को पुनः शिक्षा देने के लिये एवं उनके अज्ञान को दूर करने के लिये आगे बढ़ने का आदेश दे रही है। शिवाजी की तलवार सदैव धर्म मात्र के पक्ष में प्रयोग की गई थी।

एक बार, शिवाजी अपनी सेना सहित समर्थ गुरु रामदास के आश्रम पर पहुंचे। उनके सिपाहियों ने सामने के खेत पर धावा कर दिया तथा ईख तोड़-तोड़ कर सबकी सब चूस गये। इसके अतिरिक्त स्वामी के विरोध करने पर, उसे स्वयं ईख से पीटा गया। शिवाजी के कानों में यह बात पहुंची। उन्होंने सैनिकों को इस चोरी के लिये दण्डित मात्र ही नहीं किया; अपितु, अपने गुरु की संस्तुति से उन्होंने उस किसान के खेत को सदैव के लिये कर-मुक्त कर दिया।

ये पण्डित भवरोग की औषधि जानते हैं। उनसे यह सीखो एवं इसे ग्रहण करना शुरू कर दो। तुम्हारी जिला समितियाँ जहां भी सभा की व्यवस्था

करेंगी, वहां ये गांवों में जाकर भाषण करेंगे । तुम लोग उनमें उपस्थित रहो। जो भी अच्छी बातें वे कहते हैं, उन्हें स्वीकार करो। अपने हृदयों से चीनियों को खदेड़ने के लिये तुम प्रशान्ति के सैनिक बनो; क्योंकि वे तुम्हारी आत्मा की चेतना की अवमानना कर रहे हैं। उनका (पण्डितों का) सम्मान करना मेरा सम्मान करना है; उनकी उपेक्षा करना, वेद-शास्त्रों की उपेक्षा करना है तथा यह मेरी उपेक्षा करने के समान ही मूर्खतापूर्ण है।

२० पुरुष एवं पुरुषोत्तम

(प्रशान्ति निलयम, दिनाँक २२-१०-६३)

मनुष्य ने, मृत्यु के सिवाय, अन्य हर वस्तु के विषय में जान लिया है। किसी व्यक्ति को क्यों मरना चाहिये ? मरने से क्या लाभ है ? वह क्यों मरता है ? उनका उत्तर यह है : ताकि वह पुनः नहीं मर सके। वह जन्म लेता है ताकि पुनः जन्म न लेना पड़े। जन्म लेने के पश्चात् मनुष्य धन कमाता है तथा जमीन, सम्पत्ति, धातुयें, अन्न, आराम एवं विलास की वस्तुयें एकत्र करता है। वह विचार करता है कि ये वस्तुयें उसे सुख देंगी। इसलिये, उनकी प्राप्ति के उद्देश्य से वह संघर्ष करता है। किन्तु, परमेश्वर के साक्षात्कार के उद्देश्य को भूल जाता है। तुम पूछ सकते हो कि किसी को उत्तम पुरुषों की संगति क्यों ढूंढ़नी चाहिए, उत्तम कर्म क्यों करना चाहिये, एवं उत्तम विचारों के प्रति अपने मन को क्यों निर्देशित करना चाहिये ? तुम मेरी बातें सुन रहे हो। इस प्रकार सुनने से तुम्हें क्या प्राप्ति होती है ? तुम इस बात से सहमत होते हो कि मैं तुम्हें 'आनन्दम्' प्रदान कर रहा हूं ? क्या यह नहीं है ? अच्छा, इसके बदले में तुम लोग मुझे क्या देते हो ? **जो मैं तुमसे कह रहा हूं, उसका आचरण मुझे प्रदान करो; जो मैं उपदेश देता हूं उसका अभ्यास करो—यही पर्याप्त है। यही सब कुछ है जो मैं तुमसे मांगता हूं।**

मनुष्य को कुत्ते-बिल्ली की मौत नहीं मरना चाहिये। इस संसार में जन्म लेने के समय, जैसा यह था, उससे अधिक सुन्दर एवं सुखी बनकर मनुष्य को जाना चाहिये। मनुष्य ने जो कुछ देखा, सुना, स्पर्श किया, सूंघा एवं स्वाद लिया, उन वस्तुओं में परमात्मा को देखने का अवसर प्राप्त करने के लिये

कृतज्ञता की भावना से पूर्ण होकर इस संसार से उसे कूच करना चाहिये। **वह अपनी अन्तिम सांस के साथ परमेश्वर का स्मरण अवश्य करता रहे।**

उस स्मृति को प्राप्त करने के लिये, पूरे एक जीवन के अभ्यास की आवश्यकता है। मोटर के घूमते पहिए के ऊपर जब तुम बैठे हो, तो 'कार' के भीतर चलती हुई वार्ता को सुन सकते हो तथा उसमें शामिल भी हो सकते हो। अन्य अनेक कार्य भी कर सकते हो; किन्तु तुम्हारा ध्यान सदैव आगे की सड़क पर रहेगा। जब मां अपने सिर पर एक पर एक तीन घड़े रखकर कूएं से वापस आती है, तब वह अपनी सहेलियों से बातें भी करती है; किन्तु उसका मन पलने में पड़े हुए शिशु पर केन्द्रित रहता है, जिसको वह घर में छोड़कर आयी थी। उसी प्रकार, जब तुम **संसार के अनेक कर्मों एवं अनिवार्यताओं में लीन हो, तब अपने ध्यान को परमात्मा, आदर्श से कभी दूर न भटकने दो। उसकी महिमा, उसकी करुणा एवं उसकी सर्वव्यापकता के चिह्नों पर सदैव ध्यान रखो**

अनेक वर्षों के कठोर प्रशिक्षण के फलस्वरूप एक सैनिक तैयार होता है— **मोर्चे पर उसका साहस एवं धीरता अनेक वर्षों के निर्धारित अभ्यास एवं अनुशासन के फल हैं।** जैसा, नरसिंह शास्त्री ने बताया है, केवल अनेक वर्षों के गहन अध्ययन के पश्चात् कोई छात्र परीक्षा में बैठ सकता है और परीक्षाफल भी तुरन्त नहीं घोषित होता है। उसके लिए उसे कुछ अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इसलिए, **हर सांस के साथ भगवान् को स्मरण करने की आदत डालो, तभी तुम अन्तिम सांस के साथ उसका स्मरण कर सकते हो।**

एक बृद्ध अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था। मेरे विचार में वह कन्नड़ प्रदेश का था। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में, वह कतिपय शब्द बड़बड़ा सका; किन्तु सन्तानें उसे नहीं समझ सकीं। उन लोगों ने एक डाक्टर बुलाया तथा ऑक्सीजन या अन्य कुछ देने के लिये कहा ताकि उसके शब्द स्पष्ट हो जायें। उन्होंने कल्पना की कि वह अपने कमाये हुये धन को जिस ठीक स्थान

पर रखा है, उसकी ही घोषणा कर रहा है। इसलिए उसके शब्दों को ठीक-ठीक सुनने के लिए उन लोगों ने हर काम किया। वे एक ही ध्वनि—'क' को पृथक् कर सके थे। इसलिये, उन लोगों ने उससे पूछा कि क्या अभिप्राय कनक (स्वर्ण), करू (बछड़ा), कनाज (खत्ती), कसाबारिके (झाड़ू) से है। जब उसे झाड़ू दिखाया गया, उसने अपना सिर झुकाया एवं परलोक सिधार गया। इसलिये, उसे झाड़ू के रूप में जन्म लेना पड़ा।

उस मनुष्य के सदृश तुमको नहीं मरना चाहिये। **तुम भीष्म की भांति मरो। बाण-शय्या पर पड़े हुए भीष्म ने पाण्डवों को शान्तिपर्व का उपदेश दिया तथा अपने सामने एवं अपने हृदय में कृष्ण के दर्शन के साथ संसार का त्याग किया।**

मृत्यु एक खौफनाक वस्तु समझी जाती है तथा एक ऐसी वस्तु जिसकी चर्चा सुख की परिस्थितियों में नहीं करनी चाहिये ! किन्तु, **मौत न तो अच्छी है, न बुरी है। इसमें तुम्हें कोई चुनाव नहीं करना है।** यदि तुम इसका अभिनन्दन करो तो भी, यह तुम्हें शीघ्रतर नहीं मिलेगी। यदि तुम इसे बुरा कहकर निन्दा करो, तो भी तुम इससे बच नहीं सकते हो। **यह जीवन का विनाश, अन्त है, जो अपरिहार्य है। जन्म के क्षण से ही अन्त्येष्ठि स्थल—श्मशान की यात्रा प्रारम्भ हो जाती है।** दूसरों की अपेक्षा कुछ लोग शीघ्रतर पहुंचते हैं तथा कुछ लोग घुमावदार पथ से जाते हैं और वे विलम्ब से पहुंचते हैं। मनुष्य-मनुष्य में एक मात्र यह अन्तर है। किन्तु, तिसपर भी मानव, इस प्रकार घूमता-फिरता है, मानो, मृत्यु एक सुदूरवर्ती विपत्ति है। जब किसी पड़ोसी का लड़का गुजर जाता है, तब तुम उसे यह कहकर सान्त्वना प्रदान करते हो कि यह सब स्वप्न है तथा लड़के पैदा होते हैं और मर जाते हैं; क्योंकि वे महाजन (उधार देने वाले) हैं जो पुराने जन्मों के ऋणों को वसूल करने के लिए आए हैं।......आदि, आदि। किन्तु, जब तुम अपना ही पुत्र खो देते हो, तब तुम उन्हीं तर्कों द्वारा स्वयं को सान्त्वना नहीं देते हो। वे दूसरों के जीवनान्त के लिए ही हैं।

अर्जुन श्री कृष्ण को पुरुषोत्तम कहते हैं; क्योंकि, पुरुषों में केवल वही सर्वोच्च हैं। इस प्रकार या किलेबन्दी वाले नगर, यानी शरीर में जो निवास करता है उसे पुरुष कहते हैं। प्रत्येक शरीर में पुरुष है तथा समस्त ब्रह्माण्ड में सर्वव्याप्त पुरुषोत्तम है। इसलिए अन्ततः जो मरता है, वह शरीर है, शरीर में रहने वाला, पुरुष नहीं। यह विश्वास कि तुममें पुरुष है, मन को सभी बुराईयों से तथा इन्द्रियों को सर्व दूषित आदतों से स्वच्छ कर देगा। केवल पेय ही नहीं; अपितु, प्याला भी अवश्य स्वच्छ हो। इसके अभाव में, चाहे जितनी दीर्घ अवधि तक तुम स्मरण या ध्यान करो, उनसे कोई फल नहीं निकलेगा। यही कारण है कि संयम के कठोर आदेशों के साथ-साथ वेद ब्राह्मणों को सौंपे गये। उस संयम के द्वारा मन को निर्मल किये बिना, वेदों का अध्ययन एक निष्फल अभ्यास मात्र है।

जब एक व्यक्ति मरणासन्न था, तब पत्नी ने पूछा, "मेरे लिये क्या घटित होने वाला है?" मां-बाप ने वही प्रश्न पूछा तथा सन्तान ने वही प्रश्न किया, "हमारे लिए क्या घटित होने वाला है?", यहां तक कि नौकरों ने भी यह करुणस्वर से पूछा "हमारे लिये क्या घटित होने वाला है?" मरणासन्न व्यक्ति ने चारों ओर विवशतापूर्वक देखा और उन सबसे पूछा, "मेरे लिये क्या घटित होने वाला है?" यदि वह बुद्धिमान होता, तो उस घटना को पहले ही देखना चाहिए था तथा उस प्रश्न के उत्तर सहित स्वयं को तैयार कर लेना चाहिए था। तब वह शान्ति से मरा होता तथा उसको शान्तिपूर्वक मरते देखकर, उसकी सन्तानें भी लाभान्वित हुई होतीं।

आजकल, बातचीत में एक 'फैशन' फैल रहा है: "यह सब भगवान् की कृपा है", जब तुम लोग अपने प्रति घटित किसी बात को उत्तम समझते हो। यदि यह तुम्हें नापसन्द किसी व्यक्ति के प्रति घटित होती है, तब इसे प्रत्यक्षतः भगवान् की कृपा नहीं मानते हो; क्योंकि भगवान् को तुम विशिष्ट रूप से अपना ही समझते हो और दूसरे साथियों का नहीं। जब तुम्हारे प्रति कोई अप्रिय घटना होती है, तब तुम उसे भी भगवान् की कृपा क्यों नहीं मानते

हो ? स्वयं को परमेश्वर के हाथों में समर्पण कर दो; चाहे वह सफलता दे या असफलता, इसकी कोई चिन्ता नहीं करो। वह तुमको कठोर बनाना चाहता हो, या यह अन्त में तुम्हारी भलाई के लिए हो। तुम कैसे निर्णय कर सकते हो ? निर्णय करने वाले तुम कौन हो ? निर्णय क्यों ? अपना सर्वोत्तम करो तथा मौन रहो। अपने मन को इस मनोवृत्ति पर स्थिर करो। तुम नहीं जानते हो कि कैमरे वाला कब काटने वाला है। निलयम में चित्र खींचने वाला मैथ्यू तुम्हारे सामने इस या उस स्थान पर निशान लगाये कैमरा सहित कम से कम इधर-उधर कूदता रहता है। किन्तु मौत कोई पूर्व सूचना नहीं देती है या कहती है, "तैयार रहो" और न तुम्हारे तैयार होने तक वह प्रतीक्षा ही करेगी।

अतएव, सदैव (मौत के लिये) उद्यत रहो, ताकि अपने अधरों पर उसके नाम एवं अपने निर्मल हृदय में उसके स्वरूप के सहित तुम एक उत्तम प्रभाव उत्पन्न कर सको।

पथप्रदर्शक के रूप में मुझको पाने में तुम लोग अभी अपने सौभाग्य का अनुभव नहीं कर सकते हो। जब तक मैं तुम सबको सुधार नहीं लेता हूं, तब तक मैं विश्राम नहीं करूंगा। मेरे कार्य का आधार पूर्ण हो गया है। अब उस पर इमारत खड़ी होगी। मैं एकाकी सारे विश्व के चहुं ओर जाता हूं, बिना किसी कार्यक्रम के एवं बिना सूचना-प्रकाशन के; क्योंकि मैं अपनी ही महिमा में, अपनी ही सत्यता में स्थित हूं। सबसे मेरा आत्मिक सम्बन्ध है। इसलिये, मैं सदैव सफल हो रहा हूं।

फसल की रक्षा के लिए खरपतवार को निवारण करना है तथा खाद अवश्य देनी है। विद्वान् महासभा के पण्डितों का यही कार्य है। इन साधनों को चिरकाल से काम में नहीं लाया गया था और इनकी उपेक्षा की गई थी। इस महान् कार्य में सम्मिलित हो। तुम्हारे लिए यह पूरे जीवन का मौका है।

२१ गीता रूपी तराजू

(स्थान—प्रशान्ति निलयम, दिनाँक २४-१०-६३)

कई दिनों से विद्वानों ने तथा पण्डितों ने तुम लोगों को अनेक प्रकार से गीता को समझाया है। यदि तुम मुझसे कहते हो, तो मैं कहूँगा कि गीता एक तराजू के समान है—पलरा, सूई एवं सब कुछ। बायाँ पलरा, द्वितीय अध्याय का सातवाँ श्लोक है जो 'कार्पण्यदोष' की चर्चा करता है। नवें अध्याय का २२वाँ श्लोक जो "अनन्यश्चिन्तयन्तो: माम्" से प्रारम्भ होता है, चोटी है तथा दाहिना पलरा है १८वें अध्याय का "सर्वधर्मान परित्यज्य" से प्रारम्भ होने वाला श्लोक। देखिये, चोटी का श्लोक कितना उचित है। यह एकाग्रचित्त ध्यान, दृढ़तापूर्वक जमे हुए ध्यान की बात बताता है, जो पूर्णतया सन्तुलित तराजू की सूई के समान है! वस्तुत:, गीता का प्रारम्भ दो पलरों एवं चोटी से, धर्म एवं अधर्म की दो सेनाओं से होता है, जिसके मध्य में कृष्ण शिक्षक हैं! लौकिकता एवं अलौकिकता के दो पलरे हैं, सांसारिक एवं दूसरे संसार के हैं जो ध्यान एवं सम्मान के लिए कोलाहल मचा रहे हैं। अर्जुन के अज्ञान को केवल ज्ञान ही समाप्त कर सकता है। यही भगवान् का संकल्प है।

ज्ञान का हमें अभ्यास करना है। अन्यथा, यह व्यर्थ है। जंगल के मृग एक बार भारी सभा में एकत्रित हुए तथा पीछा करने वाले शिकारी कुत्तों के सम्मुख अपनी कायरता पर विचार-विमर्ष करने लगे। वे तर्क करते थे, "उड़ाकू पैरों एवं तीखी सींगों से सजे होने पर भी इन तुच्छ कुत्तों से हम लोगों को क्यों डरना चाहिए?" अन्ततः, एक प्रस्ताव पेश हुआ तथा पारित हुआ कि शिकारी कुत्तों के सामने कोई भी मृग आज से नहीं भागेगा। किन्तु जब खुशियाँ मनाई जा रही थीं, तभी शिकारी कुत्तों के भूंकने की आवाज उन्हें दूर से सुनाई पड़ी।

उनमें से एक भी वहाँ नहीं रुका। सभी इतना तेजी से भागे जितना उनके पैर उन्हें ले जा सकते थे। प्रस्ताव अभ्यास में नहीं लाया गया।

अब, ये पंडित पवित्र धर्मग्रन्थों की शिक्षा देने एवं उनको समझाने की कला में भली प्रकार निपुण हैं। कमी है उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनने की तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए उनके निर्देशों के अनुसरण करने की कला में लोगों को प्रशिक्षित करने की। **कर्म में लिप्त हुए बिना कर्म में निरत रहने की कला सीखनी है।** कर्म करना है; क्योंकि यह हर व्यक्ति के स्वभाव का एक अंश है, न कि किसी बाह्य दबाव से करना है।

सूर्य सहज कर्मचारी है। वह जलीय वाष्प को ऊपर खींचकर बादल बनाता है जो वर्षा के रूप में पुनः गिर जाते हैं। उसे यह करने के लिए किसी ने नहीं सिखाया। **जब तुम सहज कर्म करते हो, तो यह भार नहीं होता है।** जब तुम इसके विपरीत चलते हो तथा जब तुम नियम का उल्लंघन करके कुछ करते हो तभी तुम दुख का अनुभव करते हो। पुलिस के सिपाही का जीवन सहज नहीं है। इस लिए वह अपने घर आने पर सुखी होता है तथा अपने पहनावे को उतार देता है और साधारण वस्त्र पहनता है। जब शिशु रोता है, तब सब पालने की ओर दौड़ते हैं; क्योंकि इसका सहजकर्म मुस्कराना है तथा सन्तुष्ट होकर सुखी रहना है। उसी प्रकार, लाभ के लिए किया गया कर्म ऐसे परिणामों को एकत्र करता है जो मनुष्य को बाँधते हैं। यह हिमगेंद की भाँति आकार में बढ़ता है, किन्तु जो कर्म उससे उत्पन्न होने वाले फल की आशा के बिना किया जाता है, वह घटता रहता है तथा सभी बन्धनों से तुमको मुक्त कर देता है।

धर्म के कर्मों को तो करना ही है। उनसे छुटकारा नहीं है। जंगल में भागना कोई समाधान नहीं है, क्योंकि यह परिस्थिति को केवल एक नया मोड़ देता है। तुम्हारी देह जंगल में हो सकती है; किन्तु तुम्हारा मन बाजार में घूमता रहेगा! एक साधक को किसी योगी ने मन्त्र-दीक्षा दी, वह अबाध रूप से उसका ध्यान करना चाहता था और उसने अपने घर को खींचातानी से भरा हुआ

देखा जिससे ध्यान नहीं हो सकता था। वह जंगल में चला गया तथा उसने एक सुखद वृक्ष को पाया जिसके तले वह ध्यान कर सकता था। शीघ्र ही डालियों पर विश्राम करती हुई चिड़ियों ने शोर मचाना प्रारम्भ किया तथा उस के सिर पर अपने कुतरन बरसाने लगीं। वह अत्यन्त आवेश में आ गया। "क्या मेरे लिए कोई स्थान नहीं है जहाँ मैं परमात्मा से बातें कर सकूं?", वह चिल्लाया। "घर पर लड़के, जंगल में चिड़ियाँ एवं चमगादड़! मैं जलकर आत्महत्या कर लूंगा तथा उत्तमतर जन्म लूंगा। तब नये सिरे से साधना प्रारम्भ करूंगा", उसने निश्चय किया। इसलिए उसने कुछ लकड़ियाँ एकत्र कीं तथा एक चिता सजायी। उसे जलाया तथा उसपर चढ़ने ही वाला था। उसी समय एक बूढ़े व्यक्ति ने हस्तक्षेप किया और कहने लगा, "तुम पूर्णतः अपने निर्णय का पालन करो; किन्तु इस समय हवा उन झोंपड़ियों की ओर बह रही है जहाँ हम लोग रहते हैं। इसलिए हवा जब दिशा बदलेगी, तब तक प्रतीक्षा करने की कृपा करें, क्योंकि हम लोग मनुष्य के मांस की जलने की दुर्गन्ध को सहन नहीं कर सकते हैं। अथवा, यदि तुम अत्यधिक आतुर हो, तो तुम इसे अन्यत्र हटा सकते हो तथा हम गरीबों के लिए हानि बनने से दूर रह सकते हो।"

इस पर, साधक ने सोचा कि उसे मरने की भी स्वतन्त्रता नहीं है। इसलिए वह घर वापस गया तथा इन सबका स्वयं बहादुरी से सामना करने का संकल्प किया। वह समझ गया कि इस दृश्यमान जगत में कर्म का पूर्णतः पालन करना है तथा आतुरता में इसे टालने से कोई लाभ नहीं है। संसार की अशान्ति, गड़बड़ी एवं परेशानी से मनुष्य को मित्रता एवं शान्ति छीन लेना है। विष्णु को "भुजङ्ग-शयनम्", सर्प पर सोने वाला कहा गया है और "शान्त-आकारं" भी कहा गया है। भुजङ्ग या सर्प, जिसमें विष भरा है, संसार या विषय का प्रतिनिधि है तथा जब तुम उस पर विश्राम करते हो, इसे स्वयं को आच्छादित करने नहीं देते हो तब तुम 'शान्तम्' को प्राप्त कर सकते हो। **अपनी नौका को जल पर जाने दो; किन्तु उसमें पानी मत जाने दो। संसार में**

रहो; किन्तु इसके न बनो। (इसको अपने भीतर न घुसने दो।) सफल जीवन का यही रहस्य है।

वासना चरम विनाश की ओर ले जाती है। इसे पूरा करके हम इसका विनाश कभी नहीं कर सकते हैं। हर एक की तृप्ति पर ही यह विकसित होती है तथा राक्षस बन जाती है जो पीड़ित व्यक्ति को स्वयं खा डालती है। एक तीर्थयात्री था जो अकस्मात कल्पतरु—मनोर्थ पूरा करने वाले वृक्ष—के नीचे पहुंच गया। वह अतिशय प्यासा था तथा उसने मन ही मन कहा, "यदि कोई मुझे एक प्याला मधुर एवं शीतल जल देता!" तथा तुरन्त ही, उसके सामने एक प्याला मधुर एवं शीतल जल रखा था। वह आश्चर्य में पड़ गया; किन्तु तिस पर उसे पी गया। तब उसने स्वादिष्ट भोजन की कामना की तथा एक पल में ही उसे पा गया। इससे एक पलङ्ग एवं बिछौने की कामना उसके मन में जागी और उसने चाहा कि इस विस्मय को देखने के लिए उसकी स्त्री होती। एक क्षण में ही उसकी पत्नी दिखाई पड़ी। उस बेचारे तीर्थयात्री ने उसको प्रेत की छाया समझ लिया तथा विस्मयपूर्वक चिल्लाया, "अरे! यह एक डाइन है।" वह डाइन बन गई। वह पति भय से कांपने लगा तथा चिल्ला पड़ा, "वह, अब, मुझे खा जायेगी।" उसको वह तुरन्त खा गई।

कामनाओं की श्रृंखला उसे बांध कर दम घोंट देती है। इसके या उसके लिये चाहने की मनोवृत्ति को रोको एवं दमन करो। भगवान् से कहो, "मेरे लिये आप ही पर्याप्त हैं। मैं अन्य कुछ भी नहीं चाहता हूं।" सुनहले आभूषणों की कामना क्यों करते हो? स्वर्ण की कामना करो। गीता 'शरणागति' के पाठ की शिक्षा देती है—कामना करो कि उसका संकल्प विजयी हो, न कि अपनी इच्छा सफल होने की। कृष्ण के कहने का यही तात्पर्य था, जब उसने कहा था, "सर्वारम्भापरित्यागी बनो।"

मृत्यु, एक जीवन से दूसरे जीवन का एक पथ है, यह पुराने कपड़े से नूतन वस्त्र का परिवर्तन हैं, जैसा गीता कहती है। किन्तु कतिपय कुटिल व्यक्ति इस

तुलना पर हँसते हैं तथा पूछते हैं, "शिशुओं, बालकों, युवकों एवं प्रौढ़ों की मृत्यु के सम्बन्ध में क्या है ? किसी भी अर्थ विस्तार से उनके शरीर को 'जीर्ण', घिसे हुए की श्रेणी में नहीं रख सकते हैं।" ठीक, वस्त्र पुराने नहीं हो सकते हैं; किन्तु वे बहुत पुराने थान के बने हो सकते हैं। इसलिए उस कपड़े से तैयार किये वस्त्र नूतन हो सकते हैं, इसलिये उनका परित्याग शीघ्र करना पड़ता है। पुनः, कतिपय ऐसे कुटिल मनुष्य हैं जो पूर्व जीवन में विश्वास नहीं करते हैं; क्योंकि वे उन घटनाओं का स्मरण नहीं कर सकते हैं ! ये लोग पाँच या दस वर्ष पूर्व की माघ शुदी दशमी की घटनाओं को स्मरण नहीं कर सकते हैं; यद्यपि उन्हें निश्चय है कि वे उस दशमी को जीवित थे। उस दिन की घटनाओं का विस्मरण होने का अर्थ यह नहीं है कि वे उस समय बिल्कुल जीवित नहीं थे। इसका अर्थ केवल इतना है कि उन्होंने उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनके पास कोई लक्ष्य या कोई कारण नहीं था कि वे उसे अपनी स्मृति में रखते।

शरणागति अथवा शर्तहीन समर्पण ही मुक्ति के महल में प्रवेश करने के लिये मुख्य द्वार है। इसके चार फर्श हैं—ध्यान, कर्म, भक्ति एवं ज्ञान। प्रत्येक फर्श नीचे वाले फर्श के ऊपर आश्रित है तथा प्रथम तीनों पर चढ़े बिना उच्चतम फर्श पर कोई नहीं पहुँच सकता है। इसे स्मरण रखो, जब तुम लोगों को योगों की सापेक्षिक श्रेष्ठता के विषय में तर्क करते हुए या स्वयं को आध्यात्मिक क्षेत्र में 'यह या 'वह' घोषित करते हुये सुनते हो।

गीता पारिवारिक या सामाजिक जीवन की किसी समस्या का उल्लेख नहीं करती है। आध्यात्मिक जिज्ञासु को यह उस पथ की शिक्षा देती है, जो स्वयं में जन्मजात निहित ईश्वरता के साथ परिपूर्ण मेल कराती है। यही कारण है कि श्री बुलुशु अप्पन्ना शास्त्री ने मनुष्य जीवन की प्रशंसा करते हुए उसे केवल हिंस्र जन्तुओं से ही नहीं; अपितु देवताओं के जीवन से भी श्रेष्ठतर बताया, क्योंकि इस दृश्यमान विश्व के स्वानुभव को निचोड़ कर केवल मनुष्य

ही अपनी निजी उत्पत्ति, गरिमा एव लक्ष्य के प्रश्नों का उत्तर देता है। श्री रामचन्द्र शास्त्री ने भरी हुई वस्तुओं को मन से दूर करने के साधनों की ओर संकेत किया, ताकि उसमें उत्तर स्पष्ट झलक सकें। आज भाषण करने वाले तीसरे पंडित श्री मृद्दुलापल्ली सत्यनारायण शास्त्री ने शास्त्रों से यह स्पष्ट कर दिया कि विश्व का मूलभूत आधार 'शान्तं, आनदं एवं ज्ञानं' है। आवश्यकता उस छाया के निवारण करने की है जो ज्योति को छिपाती है, जो पर्दा सत्य को दृष्टि से ओझल करता, उसे हटाना है। प्रशान्ति विद्वान महासभा की रचना मैंने इसी उद्देश्य हेतु की है।

२२ तत्-त्वम्

(प्रशान्ति निलयम, दिनांक, २५-१०-६३)

श्री पेरी वेंकटेश्वर शास्त्री तथा दूसरों ने अपने भाषणों द्वारा तुम लोगों को क्षुधा से मुक्त किया। अब, तुम्हारी आकांक्षा को तीव्र करने की मेरी बारी है। तुम्हारी वह आकाँक्षा उच्चतर आनन्द के लिए मन की क्षुधा है। जब धर्म की अवनति होती है, अथवा, धर्म के अनुरूप अपने जीवन को नियमित करना जिनका कर्त्तव्य है, वे ही उसमें आस्था खो देते हैं, तब सबके द्वारा धर्म की पुनर्स्थापना नहीं की जा सकती है। किसी राजपथ पर टूटे हुए पुल को शौकिया हुनर द्वारा तथा चतुर्दिक् ग्रामीणों के क्षणिक उत्साह द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है। उस सड़क को बनाने वाले तथा उस पुल की योजना करने वाले अधिकारी ही उसकी मरम्मत कराने की पहल कर सकते हैं। इस उद्देश्य से भगवान् पुनः पधारे हैं। उसने अभियन्ताओं वंए ठेकेदारों को तथा श्रमिकों को इस उद्देश्य के निमित्त एकत्र किया है। अब वे इस कार्य में जुट गये हैं।

कृष्ण को यह ज्ञात हो गया कि ब्रह्मा गायों, बछड़ों, गोपालकों, एव बालकों को चुरा ले गये हैं तथा छिपा दिया। अपने घरों से चरागाह में जाने वाले सम्पूर्ण झुण्ड को ही छिपा दिया। तब उन्होंने उसी संख्या एवं उसी आकार के उन्हीं व्यक्तियों, जानवरों एवं सबकी नवीन रचना की तथा किसी भी व्यक्ति ने एक वर्ष तक यह सन्देह नहीं किया कि वास्तविक छिपा हुआ था तथा यह उनकी नकल या दूसरा रूप गांवों में सर्वत्र था। इस प्रकार जो सब रचना हुई थी, वह कृष्णतत्व था, यथा, जो कुछ ब्रह्मा द्वारा छिपाया गया था, वह भी कृष्णतत्व था। **तुम लोग भी कृष्णतत्व हो। वस्तुतः, यहां और**

कोई तत्व नहीं है। इस समय भी मेरे साथ, मेरी मायासृष्टि, शून्य से सृष्टि किसी निश्चित उद्देश्य के लिए है; यथा उस समय थी। उस समय यह गोपियों को प्रक्षालित करने एवं पावन बनाने के लिये थी। अब भी, प्रक्षालित एवं पावन करना ही उद्देश्य है। नर सीमा एवं प्रेम में है। जब उस सीमा का अतिक्रमण हो जाता है तथा जब वह भ्रम चला जाता है, तब वह नर से नारायण हो जाता है, तब वह अपने तत्व में चमकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को इस तत्व, जो उसकी वास्तविकता है, को अवश्य जानना चाहिए। धर्मस्थापना के निमित्त अवतरित होने वाले का लक्ष्य है हर एक व्यक्ति को इससे अवगत करा देना। महाभारत में सबसे उल्लेखनीय विषय है यह धर्मस्थापना। जब पाण्डवों को वन में निर्वासित किया गया, तब मानो, धर्म के पंचप्राणों, धर्म की जीवनशक्तियों, को निर्वासित कर दिया गया था। धर्मराज सदाचरण के प्राण हैं, भीम धर्म की रक्षा करने वाली शक्ति के प्राण हैं, अर्जुन विश्वास एवं भक्ति के प्राण हैं, जिनकी इसके नींव के लिए आवश्यकता है। नकुल एवं सहदेव धर्म के अभ्यास के लिये अनिवार्य श्रद्धा के प्राण हैं। पाण्डवों के वन में चले जाने के उपरान्त, हस्तिनापुर अस्थिनापुर रह गया, मांस एवं रक्त विहीन हड्डियों का ही एक नगर बन गया।

तुम लोग मुझको धर्ममूर्ति कहते हो। नहीं, तुममें से प्रत्येक धर्ममूर्ति है। किन्तु, तुम दूर भटक गये हो। जिस स्तर को तुमने खो दिया है, उसी स्तर पर तुमको वापस लाना मेरा उद्देश्य है। इस नवरात्रि में जिस प्रशान्ति विद्वान महासभा की स्थापना की गई है, वह यही काम करेगी। आज, इसके उद्देश्य एवं लक्ष्य तथा कार्य प्रणाली पर विचार-विमर्श हुआ तथा उन्हें निश्चित किया गया। यह तुम्हारी सभा है। अपनी भक्ति एवं श्रद्धा के अनुरूप तुम लोग इसको काम में ला सकते हो। इन पंडितों ने ज्ञान एवं तप में जो धन जमा किया है, वह तुम्हारा है। तुम चेक काटो और वे बिना पूछे तुमको सम्पत्ति देंगे।

समाज की लापरवाही के कारण वेद एवं शास्त्र के पंडितों एवं विद्वानों को बहुत कष्ट भोगना पड़ रहा है। किन्तु, उनके वेदाध्ययन का यह फल नहीं है। इसका कारण यह है कि उन्होंने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसे कार्य में रूपान्तरित नहीं किया। हर व्यक्ति को फल के पकने तक अवश्य प्रतीक्षा करनी चाहिये। वृक्ष के बढ़ने में समय लगेगा। पुष्पित होने, फल लगने, पकने एवं मधुर रस से भरने में समय अवश्य लगेगा। समय के पूर्व तुम इसे तोड़ोगे, तो तुमको इसे फेंकना ही पड़ेगा। क्यों? एक स्नातक होने एवं उपाधि प्राप्त करने के लिए हर एक को पहले अक्षरों से संघर्ष करना पड़ता है, तब अक्षरों से बने शब्दों को पढ़ना पड़ता है, तब वाक्यों को पढ़ना होता है तथा अन्त में पूरी पाठ्य पुस्तकें पढ़नी होती हैं। इतने वर्षों के उपरान्त उनके अध्ययन का फल, अब आया है, जब पंडितों ने अपने ज्ञान एवं आनन्द को अपने भाइयों एवं भगिनियों के साथ बटाने के लिये यह माध्यम प्राप्त किया। पंडितों को कुछ जिले निर्धारित किये गये हैं तथा कुछ चुने हुये लोग प्रत्येक जिले में कार्यक्रम का निरीक्षण करेंगे। जिला समितियाँ सभाओं की व्यवस्था करेंगी तथा पंडितों को सभा के तृदिवस कार्य के लिये आमन्त्रित करेंगी। यह कार्य का बोना है—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, वेदान्त, धर्मशास्त्र एवं रामायण, महाभारत तथा भागवत में वर्णित ईश्वर की महिमा या ऐश्वर्य का बीजारोपण है। तुम्हें खेतों की रखवाली करनी होगी, छोटी फसल का पालन करना होगा। मनन की खाद देनी होगी तथा कीटाणुओं से इसे मुक्त रखना होगा। तब, पोषक अन्न के खाने से प्राप्त सुख की फसल काटनी होगी। तुम्हारे लिये, यही सच्ची कृषि है। इस कृषि में हाथ बटाने का अवसर केवल कुछ लोगों को ही प्राप्त होगा, वे ही कुछ लोग जो अनेक जन्मों की विशेषताओं से विभूषित हैं।

सर्वप्रथम, सभा आन्ध्र प्रदेश पर ध्यान देगी तथा कालान्तर में, यह कन्नड़ प्रान्त एवं केरल राज्य में पहुँचेगी। तत्पश्चात् भारत के सभी प्रान्तों में तथा अल्प काल में भारत वर्ष के बाहर भी पहुँचेगी। भारतवर्ष के बाहर

पहले से ही, कुछ सत्य साई संघ है और वे अपने स्थानों पर इस स्वरूप में स्वामी के अनुग्रह के प्रसारण हेतु दबाव डाल रहे हैं।

ऐसी सभा से प्रथम लाभ यह है कि तुम लोग कुछ ऐसे विचारों का, जो विशेषतः भारतीय हैं, पोषण एवं विकास करने में समर्थ हो सकोगे। मैं यह कहता हूँ, क्योंकि तुम लोग लाभ की भाषा को ही समझते हो। जो कुछ भी करने के लिये तुमसे कहा जाता है, तुम पहला प्रश्न करते हो, "इससे कितना अधिक लाभ होगा।" लाभ के इस लालच ने तुमको लोभ (के सागर) में डुबो दिया है। उच्चतम लाभ यह है कि तुम जिस स्थान से आये थे उस पुर—स्वस्थान पर पुनः इस पथ द्वारा वापस पहुँच जाओगे।

विष्णु की नाभि से निकले हुए कमल से, जो ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे, उन्हें आश्चर्य हुआ कि वहाँ पर वे कैसे पहुंच गये तथा यह प्रतीत होता है कि उन्होंने उस स्थान को बारम्बार खोजा जहाँ से वे आये थे। वे उसका पता बिल्कुल नहीं लगा सके। किन्तु, थोड़ा विचार करने से तुम जान सकते हो कि तुम कहाँ से आये, अथवा, तुम्हारा वास्तविक स्वभाव क्या है। तब उसे प्राप्त करने का प्रयत्न मात्र ही शेष रह जाता है। मोक्ष या मुक्ति का अर्थ यही है।

प्रज्ञ की वाणी में सरल विश्वास वर्षों के अध्ययन एवं विवाद की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। "तद्-त्वम्-असि" ऐसे महावाक्यों का ध्यान करो तथा अपने मन में जब तुम इसे फिराते रहोगे, इसके अर्थ तुम्हें प्रकट हो जायेंगे, और तुम्हें किसी भाष्य की सहायता आवश्यक नहीं होगी। भाष्य या व्याख्यायें केवल तुमको भ्रम में डाल देती हैं। 'तत्' का विचार करो, 'त्वम' का विश्लेषण करो तब तुम्हें विश्वास हो जायेगा कि 'असि' एक मात्र समाधान है। **तुम प्रकाश में हो; प्रकाश तुममें है; तुम प्रकाश हो—ये श्रेणियां हैं।**

२३ यह सदैव नहीं रहेगा

(स्थान—प्रशान्ति निलयम्, दिनांक २६-१०-६३)

आश्चर्यों में सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि कोई स्वयं को नहीं जानता है, स्वयं के विषय में जानने के लिए कोई संघर्ष नहीं जो दूसता हैएवकररों के विषय में जानने के लिए अपनी पूर्ण आयु व्यतीत कर देते हैं उनमें भी कोई नहीं है। तुम्हारी आत्मा जल, वायु एवं आकाश से भी अधिक सुक्ष्मतर है। यह नेत्रों में अवश्य चले, ताकि तुम देख सको, यह हाथों में अवश्य घूमता रहे ताकि तुम पकड़ सको; यह पैरों में अवश्य चलता रहे, ताकि तुम टहल सको। इन्द्रियाँ जड़ पदार्थ हैं तथा "मैं" अवश्य चलावे ताकि वे काम कर सकें।

वह 'मैं' ब्रह्मन है। त्रुटि से हम उसे पृथक मानते हैं। त्रेता युग में, वानरों से मनुष्यों की भाँति काम एवं बात कराया गया, द्वापर युग में नारायण के अनुग्रह से नर का नारायण रूप में रूपान्तरित किया गया। कलियुग में यह घोषणा की गई है कि नर स्वयं नारायण है। 'घटाकाश' एवं मठाकाश महा आकाश के अनुरूप है। घट एवं मठ की उपाधियाँ मात्र ही पृथकता के भ्रम को कायम रखती है। इन्द्रियाँ बहुत शरारती हैं। वे ही यह भ्रान्ति पैदा करती हैं कि तुम उपाधि हो। उनका दमन वैसे ही करो जैसे नाथ के द्वारा बैल का दमन किया जाता है, घोड़े का दमन उसके मुंह में लगाम लगाकर एवं हाथी का दमन अंकुश द्वारा किया जाता है।

जब पाण्डव अपने जीवन के अन्तिम चरण में हिमालय की यात्रा कर रहे थे, तब भी धर्मराज मानसिक चिन्ताओं से दुष्प्रभावि थे। इसलिए उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि वे कुछ समय उनके साथ व्यतीत करें। उनके निवास

स्थल से प्रस्थान करने पर, कृष्ण ने धर्मराज को एक 'लेख' दिया, जिसको, हर्ष या शोक से कभी प्रभावित होने पर, वे पढ़ा करते थे अपने मन में। यह था "यह सदैव नहीं रहेगा।" **यह एक उपाय है जिसके द्वारा मानसिक उद्वेगों को शान्त किया जा सकता है।**

संसार में जिन्दगी को अपने ऊपर लादे गये अनिवार्य कर्त्तव्य के रूप में ग्रहण करो। पूर्व जन्म में किये गये अपराधों के दण्ड स्वरूप तुम इस समय कारागार में हो। अधीक्षक भोजन पकाने, पानी खींचने, लकड़ी चीरने आदि के अनेक कार्यों को निर्धारित करता है। तुम्हें निर्धारित कार्यों को अपनी योग्यता के अनुसार सर्वोत्तम करना पड़ता है, बिना किसी पुरस्कार की आशा करते हुए। यदि तुम सदव्यवहार करते हो, कोई गड़बड़ी नहीं करते हो, तथा बिना हिचक के अपने निर्धारित कर्त्तव्य को पूरा करते हो, तो तुम्हारे दण्ड में से कुछ दिन घटा दिये जायेंगे तथा एक प्रमाण पत्र के साथ कि तुम विश्वसनीय एवं उत्तम व्यक्ति हो, तुम शीघ्रतर मुक्त कर दिए जाओगे। यही मनोवृत्ति तुममें निष्काकर्म की आदत डालेगी, जो इन्द्रियों के दमन हेतु बहुत ही महत्वपूर्ण है।

जब तुम कुछ लोगों से परमेश्वर की चर्चा करते हो, तो वे कहते हैं "यदि हम उसे केवल देख सकें, तो हम विश्वास करेंगे।" विद्वान महासभा के पंडित जब गांवों में वेदों के सत्यों के प्रसारणार्थ, अपने उद्देश्य पर जायेंगे तब यह प्रश्न पैदा होगा। तब उनसे तुम पूछोगे, **"मैं यह विश्वास नहीं कर सकता हूं कि तुमको पीड़ा है, जब तक मैं पीड़ा या दर्द को नहीं देख सकता।" परमेश्वर आनन्द है। आनन्द कैसे दिखाया एवं देखा जा सकता है?** चाहे दूसरे यह विश्वास करें या न करें कि २+२=४ होता है। तुम सहमत हो या न हो; किन्तु यह सत्य है, जो सहमत होने वाले सभी लोगों के अनुभव से सिद्ध है। उसी प्रकार, परमेश्वर की सत्यता भी है।

तुमको परमेश्वर के विचार में निरन्त्रर रहना चाहिए तथा एक दूसरे सत्य मृत्यु के विचार में भी शरीर एक मोटर कार है जिसमें तुम चढ़कर मृत्यु के

पास जा रहे हो। तुम किसी भी समय मृत्यु प्राप्त कर सकते हो। कोई वृक्ष, मोटर गाड़ी, नाला या दलदल उसे लायेगा।

मृत्यु का स्मरण करो। स्मरण रखो काल हर क्षण बीत रहा है। तब, तुम प्रमाद की बातों समय व्यर्थ नहीं व्यतीत करोगे, अथवा व्यर्थ के प्रयत्न नहीं करोगे; अथवा हानिकारक दुष्टता नहीं करोगे, अथवा असम्य मनोरंजन में समय नहीं खोओगे। कार में सावधानी से यात्रा करो, धीरे-धीरे एवं सड़क पर दूसरों की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखते हुए चलो। लोभवश दूसरों को पछाड़ने की या गति में प्रतियोगिता करने की चेष्टा न करो। गाड़ी की एवं सड़क की मर्यादाओं को जानते रहो। तुमसे तब कोई दर्घटना नहीं होगी। तुम्हारी यात्रा तुम्हारे लिए एवं शेष मनुष्यों के लिए एक सुखद अनुभव होगी। श्री सत्यनारायण परममूर्ति तुमको अपने भाषण में शिक्षा देने, सुधार करने पुर्ननिर्माण करने तथा अन्य अनेकशः बातों के लिए सलाह दे रहे थे। किन्तु, ऐसे कार्य सभी लोग नहीं कर सकते हैं।

पहले स्व, तब सहायता। स्वयं को सुधारो, स्वयं को शिक्षा दो, स्वयं का पुर्ननिर्माण करो, तब दूसरों की समस्याओं को सुलझाने के लिए कदम बढ़ाओ। यदि तुम अपने निजी व्यक्तित्व को ही शान्तिपूर्वक टटोलो, तब पुर्ननिर्माण नितान्त्र सरल बन जायेगा।—"क्या मैं शरीर हूँ अथवा इन्द्रियाँ हूँ, अथवा मन हूँ, अथवा बुद्धि हूँ इत्यादि ?" तुमने महाकथा में सुना कि भवानी ने किस प्रकार शिवाजी को तलवार दी। शिव-भक्ति तुमको वह तलवार देगी जो अज्ञान की शक्तियों का विनाश कर देगी—ज्ञानखड्ग, सुबोधखड्ग देगी। इसे ग्रहण करो तथा ज्ञानी एवं सुखी बनो।

२४ संकल्प

(स्थान प्रशान्ति निलयम, दिनांक २८-१०-६३)

श्री वीरभद्र शास्त्री ने अभी घोषणा की कि दिनाङ्क २० अक्तूबर को जो स्वाध्याय ज्ञान यज्ञ प्रारम्भ हुआ था, वह समाप्त हो गया; किन्तु यज्ञ की समाप्ति कभी नहीं होती है। सम्पूर्ण जीवन यज्ञ है। यज्ञ की समाप्ति कब होती है ? मैं तुम्हें बताऊंगा। सम का अर्थ है ब्रह्म; आप्ति का अर्थ है प्राप्ति। जिस दिन ब्रह्म की प्राप्ति होती है, उस दिन, उस क्षण जीवन रूपी यज्ञ की समाप्ति कही जा सकती है। जब तक ब्रह्म प्राप्ति नहीं होती, तब तक यज्ञ का अन्त नहीं होता। यह समाप्ति केवल इन कर्मकाण्डों का अन्त सूचित करती है। जहाँ कहीं भी रहो यज्ञ करते रहो, श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन के द्वारा।

आज, शास्त्री ने रुक्मिणी-कल्याण की कथा का वर्णन किया। यह पाणिग्रहण मात्र की साधारण कथा ही नहीं है। यह पुरुष एवं प्रकृति के स्वयं सम्मिलन की कथा है। मध्यस्थ ब्राह्मण वैदिक प्रमाण का प्रतीक है जिसके द्वारा ही दोनों की विलीनता जानी जाती है। रुक्मिणी जीव है तथा कृष्ण परमात्मा हैं। प्रकृति द्वारा थोपे गये नियमों एवं नियन्त्रणों से वह पीड़ित हो रही है। अहंकार उसका भाई है, सांसारिकता उसका पिता है, इत्यादि। किन्तु, उसके सदाचरण के कारण उसका मन परमात्मा पर आश्रित था। उसकी स्तुतियां, पश्चात्ताप, आकाँक्षा एवं दृढ़ता पुरस्कृत की गईं। सदाचार के युग-प्राचीन नियमों का उसने पालन किया तथा अन्त में, उसने उसका उद्धार किया; क्योंकि पाणिग्रहण के पूर्व वह गौरी-पूजन के निमित्त गई थी। उस देवालय में वह परमेश्वर की आराधना में निमग्न हो गई थी। इसलिये,

प्रतीक्षा में रुके हुए भगवान् ने उसको बन्धनों से मुक्त कर दिया। माता-पिता, भाई-बन्धु तथा सभी सम्बन्धियों ने विरोध किया; किन्तु, प्रत्येक व्यक्ति अपनी नियति को पूरा करने के लिये पैदा होता है, न कि किसी अन्य के नाटक में अभिनय करने के लिये। हर व्यक्ति अपने दण्ड को भोगने के लिये पैदा होता है तथा जब दण्ड की अवधि समाप्त हो जाती है तब वह स्वतन्त्र हो जाता है। एक प्रिय साथी के कारावास में होने के बहाने से तुम कारावास में नहीं रह सकोगे। तनिक इस बात पर विचार करो। रुक्मिणी इसके पूर्व कृष्ण से नहीं मिली थीं। प्रारम्भिक प्रेम-प्रार्थना नहीं थी। **आत्मा ने आकांक्षा की और उसको विजय प्राप्त हुई। वे आत्मा के राज्य में मिले थे।** यह कोई सामान्य विवाह नहीं है, यद्यपि, इसके लेखक एवं हरिकथाओं में इसका वर्णन करने वाले एक स्वेच्छाचारिणी बालिका एवं एक चिन्तामुक्त युवा साहसी के स्वच्छन्द साहस के रूप में वर्णन करते हैं। **यह 'तत्' के साथ 'त्वम्' की उसके साथ इसकी विलीनता या लय है।** एक ही वस्तु, यदि वह निकट होती है तो उसे 'यह' कहते हैं, तथा यदि वह दूर होती है, तो उसे 'वह' कहते हैं। यह वहां है (अर्थात् यह यहां नहीं है, किन्तु वहां है)। 'तत्' 'त्वम्' के रूप में एक ही है। केवल यह सुदूर है। यह क्यों सुदूर है ? क्योंकि यह बुद्धि, इन्द्रियां एवं शब्दों की पहुंच के परे है।

अपनी ईश्वरानुभूति बताने के लिये वाणी अनुपयुक्त है। वस्तुतः, प्रयत्न भी भाग्यशाली ऋषियों के परे है। दो तीर्थयात्री एक जंगल से जा रहे थे तथा एक पेड़ के नीचे बैठ कर अनेक "माताओं" के प्रति मनुष्य के ऋण के विषय में वे चर्चा कर रहे थे। वह मां, जिसने जन्म दिया, गौ-माता, भू-माता एवं वेद-माता—उनमें से एक ने एसी माता सूची बताई। उनकी चर्चा गौ-पूजन की ओर चल पड़ी तथा वे यह विचार करने लगे कि 'गो' शब्द का ठीक-ठीक अर्थ क्या है। जिसका अर्थ गाय होता है। इसकी विशिष्टताओं पर एक विवाद प्रारम्भ हो गया :—एक पूंछ, दो सींग, चार पैर, एक थन, इत्यादि। वे खड़े हुए तथा उन वस्तुओं सहित एक पशु को खोजने के लिये दूर तक

भ्रमण करते रहे तथा अन्त में एक भैंस दूर से दिखाई पड़ी, जिसकी उन्होंने जी भर कर पूजा की। उसी प्रकार, ब्रह्म की धारणा भी हर व्यक्ति के साधन एवं अनुभव पर आश्रित होगी; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता है कि अनेक भिन्न-भिन्न ब्रह्म हैं। एक मनुष्य को पिता, पुत्र, चाचा, बाबा, चचेरा भाई, भतीजा एवं पति कहा जाता है; किन्तु इससे वह एक व्यक्ति से अधिक नहीं बन जाता है।

हमारी विद्वान महा सभा सबके मन में इस सत्य को स्थापित करेगी। किसी धार्मिक विश्वास की निन्दा करने के लिये, अथवा किसी एक धर्म में सबको आकृष्ट करने के लिये यह प्रयत्न नहीं करेगी। आध्यात्मिक उद्योग में यह स्वीकारात्मक दृष्टिकोण का पोषण करने में व्यस्त रहेगी तथा सबको परमात्मा की ओर अपने स्थान से आगे बढ़ने के लिये उत्साहित करती रहेगी, जैसे सनातन धर्म ने सदैव किया है। वे सब लोग उसको अपने हृदय में अपनी रुचि के अनुसार किसी भी रूप में चित्रित करने के लिये स्वतन्त्र होंगे। किसी दूसरे के धर्म का उल्लेख करते समय एक भी कटु शब्द का प्रयोग नहीं किया जायेगा; क्योंकि धर्म एक मूल्यवान पौधा है तथा कटुता इसे नष्ट कर सकती है। सत्य को जानो; आनन्द का अनुभव करो—यही वह संदेश है जिसे ये विद्वान वहन करेंगे।

जो आनन्द को मनुष्य का अनिवार्य स्वभाव बताते हैं, उन्हें स्वयं आनन्दपूर्ण होने का दायित्व लेना है। किसी के उदासीन या मलिन होने का कारण तुम पूछते हो; किन्तु जब वह सुखी रहता है तब तुम्हें चिन्ता नहीं होती है। क्यों? क्योंकि मलिनता अस्वाभाविक है तथा यह मनुष्य के अनिवार्य स्वभाव के विरुद्ध है। जल शीतल है। उसकी वही प्रकृति है। इसलिये, अलखनन्दा के हिम-शीतल चश्मे के निकट बद्रीनाथ के मन्दिर के सामने गर्म फौवारे को लोग विस्मय से देखते हैं। **दूसरों को जो बनने के लिये तुम कहते हो, वही तुम स्वयं बनो। लोग उसी की बात मानेंगे जो अपने व्यक्तिगत अनुभव से कहता है।**

कुछ लोग इस नदी के तट पर थे। वे आगन्तुक या अपरिचित थे। इसलिये, वे यह जानना चाहते थे कि क्या वह नदी उस स्थान पर पार की जा सकती है और किस प्रकार। एक लंगड़े ने कहा, "इस स्थान से पार करना खतरनाक है; और नीचे की ओर जाओ।" उस पर वे विश्वास नहीं किये; क्योंकि वह पार नहीं गया था। एक अन्धे ने कहा, "तुम लोग पार जा सकते हो, केवल कुछ दूरी तक बायें चलते रहो और तब दाहिनी ओर मुड़ो।" उसकी सलाह को भी वे नहीं माने; क्योंकि वह स्वयं नहीं जान सकता था और वह किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा लाया गया होगा। अन्त में, एक आदमी आया तथा वह स्वयं उनको पार ले जाने के लिये तैयार हुआ। उसने कहा, "मैंने प्रायः इसे पार किया है। मैं दूसरे तट पर रहता हूं तथा इस ओर मेरे खेत हैं।" इसलिये, निश्चय के साथ लोगों ने उसकी बात मान ली एवं वे दूसरे तट पर सुरक्षित पहुंच सके।

बड़ों के द्वारा बालक को नाम एवं वस्तु का ज्ञान कराया जाता है। वह एक को कुत्ता, दूसरे को पेड़, एवं तृतीय को चट्टान कहता है। पूछने पर यह बताता है कि वह एक आदमी है। वह कैसे जानता है? क्योंकि उसको ऐसा बताया गया था। बड़ों ने उसे पशुओं, पौधों, पेड़ों, चिड़ियों एवं मनुष्यों की विशिष्टताओं को सिखाया था। वह उन पर विश्वास करता है तथा विश्वास पूर्वक उन्हें ग्रहण करता है। तब, तुम परमात्मा में भी क्यों नहीं विश्वास करते हो? तुमसे यह भी कहा जाता है। सहस्रों वर्षों से तुमसे कहा जाता है कि परमेश्वर है और उसकी अनेक विशिष्टतायें हैं, जिनसे तुम उसको देख सकते हो। शास्त्र घोषणा करते हैं कि उसकी यह विशिष्टतायें हैं। साधनों के अनुभव पर शास्त्र आश्रित हैं तथा उतने ही प्रामाणिक है जितनी कोई अन्य वस्तु। बहुत सी बातें विश्वास पर मान ली जाती हैं; जो विश्वसनीयता, निष्पक्षता, तथा उनके वक्ताओं की उपलब्धियों पर निर्भर करता है। ऋषिगण निष्पक्ष हैं। धोखा देने या पथभ्रष्ट करने का उनका कोई मन्तव्य नहीं है।

यदि तुम यह समझते हो कि तुमको भी अनुभव अवश्य होना चाहिये,

अन्यथा तुम विश्वास नहीं करोगे, तो तुम आओ एवं अनुभव करो । एक दिन केवल आने एवं दूसरे दिन यह कहते हुए वापस जाने से कोई लाभ नहीं है, "मैंने सत्य साई बाबा को देखा है । वह एक सुन्दर लम्बा कुर्ता पहनते हैं तथ उनके केश बहुत ही आश्चर्य जनक हैं ।" यदि तुम होटलों में पड़े विश्राम कर रहे हो अथवा ताश खेल रहे हो, अथवा कहानियाँ सुन रहे हो, तब तुम कैसे समझ सकोगे ? पता लगाने का संकल्प करो, सीखने का निर्णय करो, गहराई में गोता लगाओ, तब तुम जानोगे ।

सहस्रों व्यक्ति इस समय एवं गत वर्षों में आये हैं । उनमें बहुतों को जानने की इच्छा नहीं है तथा जानने की इच्छा रखने वालों से अनेक इस सत्य से अपरिचित हैं कि मन के वास्तविक अनुभव के प्रति अधिक ध्यान देना चाहिये, न कि इन्द्रियों के प्रभाव पर । तुम किसी वस्तु को देखते हो किन्तु यदि तुम्हारा मन उस पर केन्द्रित नहीं है, तो तुम उसे नहीं पहचान सकोगे । यदि तुम्हारा शरीर इस श्रुतभवन में है तथा तुम्हारे कान होटल में हैं एवं आंखें कम्पाउन्ड के चारों ओर घूम रही हैं, तब कैसे कोई बात सीखी जा सकती है ? **प्रेम को केवल प्रेम ही समझ सकता है ।**

प्रेम बात करने की प्रणाली है; सत्य सारांश है; धर्म भाषा है; शान्ति फल है जिस पर हमारा लक्ष्य है । यह सत्य है कि मैं प्रेम स्वरूप हूं । तुम्हें आनन्द प्रदान करने के अपने उद्योगों में मुझे विश्राम की कोई आवश्यकता नहीं है । यह सब यज्ञ, पंडितों की मण्डली, यह विद्वानमहासभा तुम्हारे आनन्द के निमित्त हैं । यदि ये सब व्यवस्थायें कहीं अन्यत्र की गई होतीं, तो कितना अधिक शोर मचता । लोग सम्भावित दान-दाताओं की सूचियों सहित धरती रौंद डाले होते तथा इनको-उनको परेशान कर डालते तथा अन्त में अपनी सफलताओं पर घमंड करते । किन्तु, यहाँ केवल इने-गिने लोग जानते हैं । यह सब केवल संकल्प का मामला था जो अपनी उत्तमता की शक्ति से स्वयं काम कर रहा था । तुम मेरे लिये क्या लाते हो ? केवल, आंसू ! आते समय शोक के आंसू तथा जाते समय आनन्दाश्रु !

मैं किसी भी घटना या योजना से अनासक्त हूं । असफलता के भय से मैं बिल्कुल भयभीत नहीं होता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरी योजना अवश्य सफल होगी । यह प्रशान्ति विद्वान महासभा भी कोई नवीन नहीं है; यह तो सनातन है । केवल, अब यह युग-प्राचीन उद्देश्य पर एक बार पुनः तत्पर है । धर्म-स्थापना का यह कार्य बार-बार किया जा रहा है । इस समय, तुमको भी इसमें हाथ बटाने का अवसर प्राप्त है । इसलिये इस महान् कार्य में सम्मिलित होकर अपने जीवन को जीने योग्य बनाओ ।

पंडित की यह सायंकालीन वार्तायें एवं मेरा निजी सम्भाषण कल से बन्द रहेगा; क्योंकि मुझे उन लोगों से मिलना प्रारम्भ कर देना चाहिये, जो दुःख, असन्तोष, कठिनाईयों एवं मेरे ध्यान देने के लिए समस्याओं का भारी बोझ लेकर आये हैं । वह भी मेरा कार्य है तथा मैं हर्ष पूर्वक उसे पूरा करूंगा ।

२५ ज्ञान-वृक्ष

(स्थान—श्रीशैलम् दिनाँक ५-१२-६३)

श्रीशैलम की इस पावन स्थली में भी अनेक वर्षों तक ऐसा उल्लास-वर्धक एवं मगलदायक उत्सव नहीं हुआ था। इस प्रदेश में तपस्या को ही महत्वपूर्ण माना जाता है। अशान्ति फैलने का इस कर्मभूमि में कोई कारण नहीं है। इसका कारण है इच्छाओं का बहुगुणित होना तथा आध्यात्मिक तुष्टि के बदले ऐन्द्रिक सुखों की कामना का बढ़ना। अखिल भारतीय आर्य वैश्य संघ द्वारा आज से नित्य अन्नपूर्णा अन्नदान सत्र का प्रारम्भ करना भी विश्वास एवं शक्ति के अध:पतन का द्योतक है। भोजन कराने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए; क्योंकि अन्नपूर्णा, समृद्धि एवं आधिक्य के इस प्रदेश में 'देहि', 'देहि' की पुकार नहीं सुनाई देनी चाहिए। परमात्मा के स्थान पर विनय एवं स्तुति की सच्ची भावना में आना चाहिए। मनोरंजन दलों एवं यात्रियों के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

श्रीशैलम के देवालय के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ हैं। मल्लिकार्जुन श्वेत, सौरभमय, निर्मल परमात्मा, कृपा वृष्टि करते हुए शिव हैं, जो भक्त की रंचमात्र इच्छा पर झुक जाते हैं। सहचरी भ्रमराम्बा, मधुमक्खी है, जो पुष्प-पराग से आकर्षित होकर सौरभमयी मल्लिका पर मँडराती है। वह भक्त की सच्ची प्रतिनिधि है।

अपने पूर्वजों द्वारा संचित एवं भण्डार में रखी गई इन जनश्रुतियों का उपहास मत करो। उनसे वे स्थल पवित्र बने हैं तथा अनेक पीढ़ियों तक मनुष्यों की कल्पनाओं एवं विचारों को वे ऊँचे उठाये हुई हैं। प्रति वर्ष, इस देवालय में सहस्रों पवित्रात्माओं को सान्त्वना एवं विश्रान्ति प्रदान की है।

श्री शंकराचार्य यहां थे तथा इस स्थल की पावनता की तथा यहां पर जो शान्ति उन्हें प्राप्त हुई, उसकी उन्होंने गरिमा गायी। उन्होंने एक चक्र स्थापित किया है, जिसको मैं तुमसे बताऊँ कि वह पाताल गंगा के बगल में एक छोटी सी गुफा में है।

निर्धनों एवं भूखों की सेवा करने की कामना उत्तम है; किन्तु, यह संस्थाओं के निर्माण एवं कोष संचय एवं दान मांगने की ओर मोड़ ले रहा है। यह सब करते हुए अहंकार बढ़ता है, ईर्ष्या फैलती है, श्रेष्ठता एवं हीनता की मनोग्रन्थि पैदा होती है तथा इस मामले के जाल में फँसते ही व्यक्ति की मानसिक शान्ति समाप्त हो जाती है। यद्यपि एक समिति होती है, तिस पर भी सारा भार एक आदमी पर गिरता है। संस्था के निर्मित हो जाने पर, उस पर अधिकार प्राप्त करने का विचार बढ़ता है। यद्यपि सभी विद्यालय भगवान् के हैं तथा उसके बिना कोई न तो पैदा हो सकता है और न स्थित रह सकता है, तथापि लोग इसे भूल जाते हैं तथा सभी बड़प्पन का दावा करते हैं।

ये निश्चित प्रमुख सम्भावनायें हैं, जिनसे मैं सभी समाजसेवियों को सतर्क कर देना चाहता हूं। सर्वप्रथम, अपने निजी, मस्तिष्क को स्वच्छ करो, तब दूसरों को सलाह देना प्रारम्भ करो। स्वयं के लिए मानसिक शान्ति एवं शक्ति अर्जित करो, तदुपरान्त दूसरों के लिए उन्हें प्राप्त करो। स्वयं के लिए शाश्वत सुख के रहस्य को सीखो, तत्पश्चात् दूसरों को सुखी बनाने का प्रयत्न करो। सच्चे अंग को ढूंढ़ो, कृत्रिम अंग को नहीं। उस डाक्टर को लाओ जो यह आश्वासन देवे, "इसके पश्चात् तुम बीमार नहीं पड़ोगे।" और, उस डाक्टर को न लाओ जो वर्तमान आक्रमण (ज्वर के) से थोड़ा छुटकारा देता है।

पवित्र तीर्थों के वातावरण को सुधारना चाहिए तथा संन्यासियों के स्वभाव में कठोर संशोधन की आवश्यकता है। वे बहुतेरे गृहस्थों के कर्म में फंसे हुए हैं। उनमें से अनेक लौलिक ख्याति एवं सम्पत्ति के पीछे पड़े हैं।

धर्मस्थापना के अंश रूप में यह सब मैं करूँगा। वीरभद्र शास्त्री ने जिस प्रशान्ति विद्वान महासभा के विषय में बताया, वह धर्म के पुनरुत्थान के साधनों में से एक है।

पेट के लिए भोजन की अपेक्षा मनुष्य को आत्मा के लिए खूराक की अधिक आवश्यकता होती है। अन्नपूर्णा देवी जो 'अन्न' प्रदान करती है वह 'भोजन' है, न कि भात एवं कढ़ी है। उनसे जो भिक्षा माँगी जाती है, वह 'ज्ञानभिक्षा' है, न कि मुट्ठी भर भात, जो तुम इसका अर्थ सोचते हो। वह है ज्ञानभिक्षा, प्रेमभिक्षा, भक्तिभिक्षा, एवं अनुग्रह भिक्षा। अधिक ज्ञान, अधिक प्रेम, अधिक भक्ति एव अधिक अनुग्रह के लिए उनकी कृपा प्राप्त करो। इस पवित्र स्थली में तीर्थयात्रियों की सेवा करते हुए सेवा के मानदण्ड को अवनत न करो। यहां पर भक्ति, वैराग्य एवं ज्ञान पर वल प्रदान करो। अन्य स्थलों की सजावट एवं गैरईमानदारी को यहां प्रोत्साहित मत करो। यदि सच्ची भक्ति से कोई एक नया पैसा भी देता है, तो उसको एक करोड़ समझकर स्वीकार कर लो तथा सम्पत्ति के प्रदर्शन एवं अनासक्ति के विज्ञापन के उद्देश्य सहित यदि एक करोड़ भी कोई प्रदान करे, तो उसे स्वीकार नहीं करो।

मैं इस सत्रम के नूतन खण्ड का शिलान्यास कर रहा हूं, तथा मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम इस प्रकार काम कर सको कि अन्नपूर्णा के नाम की गरिमा की उपेक्षा न हो सके। पूर्ण मात्रा में मेरा आशीर्वाद तुम लोगों को प्राप्त है। तुम सब लोग इस कर्म में हाथ बटाओ तथा इसे शीघ्र सफल बनाओ। अविवेक पूर्वक नहीं खिलाओ, तथा इसको आलसियों की एक सराय नहीं बनाओ। इस पावन वायुमण्डल में कुछ दिन व्यतीत करने की आकांक्षा से जो आते हैं, केवल उन्हीं को भोजन कराइये; तभी लोग कृतज्ञ रहेंगे। साधना करने के लिये जो यहां आते हैं; जो परमेश्वर के सन्निध्य में अपना जीवन-यापन करना चाहते हैं, उनको भोजन दीजिए तथा आध्यात्मिक प्रयत्न से उत्पन्न आनन्द के जो सजीव उदाहरण हैं, उनको भोजन प्रदान करें।

२६ सहज एवं असहज

(श्रीशैलम, दिनांक ६-१२-६३)

सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम सनातन धर्म के चार स्तम्भ हैं, प्राचीन शिक्षा के चार चेहरे हैं। निश्चय ही, ये शब्द हर व्यक्ति के अधरों पर हैं, परन्तु वे इसका जो तात्पर्य समझते हैं, वह नितान्त उथला एवं अप्रभावकारी है। किसी घटना का वैसा वर्णन करना, जैसा तुमने इसको देखा, 'सत्य' है तथा प्यासे को पानी देना एवं भूखे को भोजन देना, धर्म है; विपत्ति को चुपचाप सहन करना, 'शान्ति' है तथा पत्नी एवं सन्तति का पोषण करना, 'प्रेम' है यही सामान्य अर्थ है। किन्तु, यह सब त्रुटिपूर्ण है। **'सत्य' वह है जो काल, स्थान एवं गुण द्वारा संशोधित नहीं होता है। यह सर्वदा एक रूप ही रहता है, यह अप्रभावित एवं अपरिवर्तित रहता है। केवल, तभी वह सत्य है।** किसी आगामी घटना या ज्ञान द्वारा यह मिथ्या सिद्ध नहीं होना चाहिए।

धर्म उन सिद्धान्तों का समूह है, जो सामाजिक स्थिरता एवं व्यक्ति के अभ्युत्थान के मूलाधार हैं। धर्म की अनेक शाखायें हैं—कर्त्तव्य धर्म, वर्णधर्म आश्रम धर्म, इत्यादि। किन्तु इन सबका उद्देश्य शोक से तथा जन्म एवं मृत्यु की शृङ्खला से मनुष्य को क्रमशः मुक्त होने में सहायता पहुँचाना है। देखो, प्रत्येक की कल्पना कितनी भव्य है। इसकी समता अब तक दिये गये सामान्य अर्थ से करो।

अब, शान्ति की विशेषताओं को लीजिये। यह सफलता एव असफलता, हर्ष एवं विषाद, जय एवं पराजय को पूर्ण मानसिक समरसता के साथ सहने की क्षमता का द्योतक है। और प्रेम सर्वसमानता का एवं केवल अहिंसा का

ही नहीं; अपितु प्रेम के कर्त्तव्य की सचेत स्वीकृति का सद्गुण है ; क्योंकि प्रत्येक प्राणी ईश्वरत्व की एक चिनगारी है, एक वैसी ही चिनगारी है जैसे तुम स्वयं हो ।

आध्यात्मिक ट्रेनिङ्ग में प्रथम श्रेणी है इच्छाशक्ति का दमन करना, जो इन्द्रियों को दृश्यों का पीछा करने के लिए उकसाती है । यदि इच्छा परमेश्वर के लिए है तो यह उत्तम है; किन्तु, यदि दृश्यमान या वस्तुगत सुखों के लिये है तो यह व्यक्ति के लिये हानिकर है । यदि किसी मकान में आग लगायी जाय, तो यह आगजनी है; किन्तु, यदि हनुमान लङ्का में आग लगाते हैं, तो यह न्यायोचित प्रतिशोध एवं एक उत्तम शिक्षा है । यदि कोई डाकू तुम्हारे हाथ को काटता है, तो यह हिंसा है; किन्तु, यदि डाक्टर इसे अलग करता है, तो वह तुम्हारे प्राण की रक्षा करता है । इसलिये, यह अहिंसा है ।

विषय-वासना किसी कर्म को तुच्छ बना देती है; किन्तु भगवत-वासना कर्म को पवित्र बना देती है । दक्षयज्ञ एक युद्ध में परिवर्तित हो गई थी; क्योंकि वहाँ परमेश्वर नहीं थे तथा कुरुक्षेत्र का युद्ध एक यज्ञ बन गया; क्योंकि वहाँ परमेश्वर उपस्थित थे । अर्जुन ने स्वयं को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया था; किन्तु दक्ष ने परमेश्वर का निरादर किया था । यही अन्तर था एवं यही स्पष्टीकरण है । यह सब भाव में ही निहित है— किसी कार्य या शब्द के पीछे जो भाव, उद्देश्य या प्रेरणा रहती है ।

भक्ति नींबू के अचार सदृश नहीं है, जिसका प्रयोग केवल ज्वर आने पर तुम करते हो । यह मनुष्य का दैनिक आहार है, वह विटामिन है जिसकी मनुष्य को मानसिक एवं शारीरिक स्वस्थता के लिये आवश्यकता होती है । भगवान् का ध्यान करना मुख्य भात की थाली है, शेष गौण है जो पाचक एवं पूरक हैं । नामस्मरण की गोलियों को ग्रहण करो । वह तुम्हारे दैनिक जीवन के अच्छे एवं बुरे सभी अनुभवों को भली प्रकार पचा देगा । तुम धान नहीं खाते हो । क्या तुम खाते हो ? भूसी को निकालने की बुद्धि तुममें है और

तभी, तुम चावल को खाने के पहले पकाते हो। उसी प्रकार, तुम प्रकृति को भी ज्यों का त्यों क्यों अपनाते हो? इसके उन आकर्षणों को दूर हटा दो, जो इन्द्रियों के लिए इनमें है, तथा इसे ईश्वरेच्छा की अभिव्यक्ति मात्र बना दो और तब इसे आत्मसात कर लो।

कृत्रिमता की संयुक्त गुत्थियों में तुम अपनी प्रकृति-स्वभाव को भूल जाते हो। 'असहज' के जाल में फंसने पर तुम अपने 'सहज' को खो देते हो। 'सहज' प्रेम, शान्ति, सत्य एवं आनन्द है। कृत्रिम या असहज घृणा, मिथ्यापन, युद्ध, शोक एवं लोभ है। तुम अपने निजी सत्य के फौव्वारे का अवश्य अनुसन्धान करो। तुम अधिक काल तक काहिलपना नहीं कर सकते हो; क्योंकि अनेक जन्मों के उपरान्त, यहाँ तक कि सैकड़ों जन्म होने पर भी, तुम्हें उसी स्रोत या उद्‌गम पर पहुँचना है, जहाँ से तुम विचलित हो गये थे।

तुम्हारा मन अन्य कर्मों में व्यस्त रहने पर दृढ़ या स्थिर रहता है; किन्तु जब इसको ईश्वर पर केन्द्रित किया जाता है, तब यह विचलित होने लगता है। यह अपनी कल्पनाओं को रोकना नहीं चाहता है; किन्तु इसे यह एक बार करना ही पड़ेगा जब परमेश्वर तुम्हारे हृदय में प्रवेश करेंगे। नाम स्मरण द्वारा इसे पालतू बनाओ। यही संदेश है, जिसे मैं सुनाने आया हूं। अपनी रसना पर नाम को रखो, नेत्रों में रूप को रखो एवं हृदय में ईश्वर के ऐश्वर्य महिमा को रखो—तब वज्र भी तुम्हारे निकट से शान्तिपूर्वक चला जायेगा।

किसी व्यवस्थित ढंग में, पूर्ण विश्वास एवं निर्मल हृदय से नामस्मरण करो। जब देश संकटग्रस्त है, यह उतना ही बुरा है, जितना शरीर का संकटग्रस्त होना। माँ की रक्षा के लिये नाम तुमको साहस प्रदान करेगा। यदि तुम सब अपने नैतिक सद्‌गुणों को शक्तिशाली बनाओं तथा परमात्मा में एवं सनातन धर्म में विश्वास बढ़ाओ, तो इस देश में विपत्ति कभी नहीं आ सकती है। सभी आस्तिक व्यक्ति परमात्मा के ध्यान के महत्व की घोषणा करें। मैं उस उद्योग को वरदान दूँगा; क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह तुम्हारी एवं इस देश की रक्षा करेगा। यही कारण है कि मैं आनन्द के इस लक्षण पर तुमको वरदान दे रहा हूँ।

२७ योजना स्थल–पूजा स्थल

(स्थान—श्री शैलम योजना स्थल, दिनांक ६-१२-६३)

मैं उस आनन्द पर निर्भर करता हूँ, जिसे तुम भगवान् के नाम एव स्वरूप की महिमा गाकर प्राप्त करते हो। वही मेरा भोजन एवं दैनिक आजीविका है। इसलिये, तुमसे बात करने की मुझे आवश्यकता नहीं है। यहां पर मेरा बैठना एवं भजन करते हुए तुम जो आनन्द प्राप्त करते हो, उसे (अपने पास) खींच लेना ही मेरे लिये पर्याप्त है।

अपने देश के सुदूर कोने-कोने से, प्रत्येक प्रान्त से एवं प्रत्येक भाषा की इकाई से तुम लोग इस विशाल कार्य के सफलतापूर्ण समापन के लिये अपने पृथक्-पृथक् हस्त कौशल एवं बौद्धिक दक्षता को एकत्रित करने के लिये यहां पर इकट्ठे हुए हो। यह कार्य देश के कोटि-कोटि भाइयों एवं बहनों को सदियों तक भोजन एवं सुख प्रदान करेगा। चाहे कितने भी कुशल हों, कतिपय लोगों को प्राप्त होने वाला यह अवसर तुम सबको प्राप्त हुआ है। किसी भी देश में अल्प लोगों को प्राप्त होने वाला यह बहुमूल्य अवसर है। कृष्णा नदी पर तुम लोग बाँध बनाओगे, तब यह घाटी कृष्णा के जल से भर कर एक झील बन जायेगी। तुम्हारा यह निष्काम कर्म होगा, एक समुद्र या तुम्हारे कठिन प्रयत्नों का महासागर होगा। तुम सब इसे देखोगे तथा इसकी शीतलता का, गहराई का एवं शक्ति का सुख अनुभव करोगे। यह तुम्हें हर्षित करेगा, उत्प्रेरित करेगा एवं तुममें यह भावना उत्पन्न करेगा कि तुम्हारा जीवन श्रेष्ठ है।

इस पवित्र कार्य को आतुरतापूर्ण ढंग से तथा श्रद्धा एवं भक्ति के बिना न करो। उस श्रद्धा एवं भक्ति के द्वारा तुम्हें इस शक्तिशाली नदी का दमन

करना है, जिसने इन कड़ी चट्टानों में से युगारम्भ से ही अपना पथ बना लिया था। तुम्हें इसकी गति एवं इसके आवेश को मनुष्यों एवं पशुओं के कल्याणार्थ अवरुद्ध करना है। मनुष्य ने अपनी कुशलता एवं साहस के द्वारा प्रकृति की इस घुमक्कड़ बाला को कुछ समय के लिये रुकने एवं पुनः आगे बढ़ने के लिये विवश कर दिया है। यह कर्म अधिक हल्का हो जायेगा, यदि मनुष्य अपने निजी घुमक्कड़पने को एवं अहंकार, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ एवं अपने रागों के गर्जती हुई बाढ़ का दमन करने लगे। उन्हें अपने हृदयों में रोको तथा उन्हें उपयोगी क्षेत्रों में नहरों से निकाल दो। अपने प्रयत्नों एवं साधना में से उत्तमतर परिणामों को प्राप्त करने के लिये उन गुणों की शक्ति को काम में लाओ। उन क्षेत्रों में शान्ति एवं प्रेम के फलों को उगाओ। यही कृषि है जिसे साधक जानते हैं तथा जिसे तुम भी सरलता से सीख सकते हो, क्योंकि यह एक प्राचीन विज्ञान है, जिसका अभ्यास तुम्हारे पूर्वजों ने अनेक युगों तक किया है। इसे स्मरण कराने के लिये तथा तुम सबको यह बताने आया हूँ कि उस पथ का अनुसरण करने की एक बार पुनः आवश्यकता है।

रक्त, कफ एवं पित्त अपने अनुपात एवं प्रभुत्व द्वारा मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य का निर्णय करते हैं। उसी प्रकार, ये तीन गुण हैं जो अपने समानुपात एवं प्रभुत्व के द्वारा मनुष्य की मानसिक स्वस्थता का भी निर्णय करते हैं। जिस प्रकार, बीमार पड़ने के भय से तुम लोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हो, उसी प्रकार, तुम्हें कतिपय मानसिक नियन्त्रणों एवं संयमों का पालन करना चाहिये, ताकि तुम शान्ति, संतुष्टि, हर्ष उत्साह एवं विश्वास प्राप्त कर सको। तुम्हें अपने घुमक्कड़ मन पर ब्रेक या रोक लगानी होगी, ताकि यह तुमको विध्वंस (के गर्त) में नहीं घसीट सके। तुम्हे सर्वदा दो भयों की शीतल छाया में काम करना है—पाप का भय एवं परमात्मा का भय।

तुमको स्मरण नहीं है कि तुम वस्तुतः एवं सत्यतः शान्ति एवं आनन्द हो,

कि तुम मूलतः (इसलिये, मानसिक रूप से भी) सत्य, नित्य एवं निर्मल हो। तुम्हें सताने वाली चिन्ता एवं भय स्मृति के खोने से उत्पन्न होते हैं। भगवान् का यह मन्तव्य है कि तुम्हें अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होना चाहिये; किन्तु तुम अपने भीतर उमड़ने वाले उन फौव्वारों को भूल जाते हो, जो तुम्हारे हृदयों में प्रतिष्ठित ईश्वरता के स्रोत से निकलते हैं तथा तुम उन वस्तुओं की कामना करते हो, जिसे तुम सोचते हो कि तुम्हारे पास नहीं हैं।

यहाँ पर उपस्थित तुम सब (भगवान् का) एक ही नाम एवं स्वरूप नहीं रख सकते हो, क्योंकि जिस भी परमेश्वर की तुम आराधना करते हो, उनमें से प्रत्येक, युगों के ज्ञान द्वारा निरूपित किया गया है, तुमको सुरक्षा एवं शान्ति प्रदान करने के लिये। तुम्हारी आदतों, रीति-रस्मों, आचरण, भोजन एवं वेष-भूषा की शैली में भेद हो सकता है; किन्तु उनसे तुम जो आनन्द प्राप्त करते हो वह एक समान होता है। पद (उपाधि, नाम) में परिवर्तन होने पर भी, पदार्थ वही रहता है। (उसमें कोई अन्तर नहीं आता है)। जैसे, जल अपने पद से उत्तर प्रदेश में 'पानी', मद्रास में 'थानी', मैसूर में 'नीरू' जाना जाता है, किन्तु उसका सार एक ही है। इसलिये, तुम लोग भिन्न-भिन्न भाषायें बोल सकते हो, विभिन्न ध्वनि प्रतीकों का प्रयोग कर सकते हो भोजन एवं वेष की विभिन्न आदतों का अनुसरण कर सकते हो, तथा पूजा एवं प्रार्थना में भी (विभिन्नता हो सकती है); किन्तु, तुम मेरा विश्वास करो कि वे सभी तुम्हारे अभ्युत्थान एवं उन्नयन क निमित्त हैं।

मैं तुमको एक नुस्खा दूंगा जो तुम्हें वह शान्ति एवं सन्तुष्टि प्रदान करेगा, जिसे तुम खोजते हो। **यह नाम स्मरण है**। विश्व के किसी अंचल में भक्तों के किसी समाज या समूह में प्रचलित भगवान् के सहस्रों नामों में से कोई एक नाम तुम अपनी रसना पर प्रतिष्ठित करो तथा प्रति दिन कुछ समय तक तुम उस नाम को दुहराते रहो, अपने प्रति अपने कर्त्तव्य के अंश

रूप में—यह संयम है जो उत्तम फल प्रदान करेगा तथा यह आदत तुम्हें डालनी चाहिये, जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक तुम अपने शरीर से कठोर परिश्रम करते हो, उससे खोई शक्ति की पुनः प्राप्ति के रूप में।

भा-रत वह प्रदेश है, जहां प्रत्येक व्यक्ति 'भा'—भगवान् में 'रति', प्रेम रखता है; किन्तु, आज लोग, वस्तुतः उस अभिरुचि एवं अनुराग को खोते जा रहे हैं। तुम मुझसे कह सकते हो, "हम लोग इतने व्यस्त हैं कि हमारे पास समय नहीं बचता है।" अच्छा, मैं तो यह विश्वास नहीं कर सकता हूँ कि यह सत्य है। मैं जानता हूँ कि दिन भर कठिन कार्य करने के बावजूद भी सिनेमा देखने के लिये, रास्ते पर बातचीत करने के लिये, लड़ाई एवं कलह को बढ़ाने के लिये एवं उसमें हाथ बटाने के लिये तथा अन्य अनेकशः विकर्षणों के लिये, जिनसे तुम्हारी चिन्ताओं की संख्या बढ़ती है, तुमको समय मिलता है। **सर्वोत्तम तो यह है कि तुम उन सब साथियों से दूर रहो जो तुम्हें दुर्बल बनाने एवं चिन्तित करने वाले विकर्षणों की ओर घसीटते हैं तथा प्रत्येक सुबह एवं संध्याकाल के समय तुम अपने ही देवालय या घर में शान्ति के साथ कुछ मिनटों का समय व्यतीत करो। उन्हें तुम उस सर्वशक्तिमान के साथ व्यतीत करो, जिसे तुम जानते हो। तुम उसके उन्नायक एवं उत्प्रेरक संसर्ग में रहो; उसकी मनसा उपासना-पूजा करो; जो सब कार्य तुम करते हो, उसे अर्पण कर दो। तब, तुम उस शान्त स्थल से उसमें प्रवेश करने के समय की अपेक्षा अधिक उदात्त एवं अधिक शूरवीर सा बन कर निकलोगे।**

तनिक विचार करो—क्या तुम सिनेमा घर से निकलते समय, उसमें प्रवेश करने के समय, की अपेक्षा अधिक शान्तिमय, अधिक शूरवीर सा, अधिक निर्मल एवं अधिक उदात्त बन कर निकलते हो? नहीं। तुम्हारे राग अधिक उभड़ जाते हैं, तुम्हारी पशु प्रवृत्तियों को अधिक खूराक मिलती है, तुम्हारे तुच्छतर स्वभाव को भोजन मिलता है। एकान्त स्थल से, प्रार्थना से एवं स्वामी (परमेश्वर) के संलाप से जो श्रेष्ठ पुरस्कार तुम्हें प्राप्त होते हैं, उन्हें कोई अन्य

नहीं प्रदान कर सकता है। न तो बैंक का सुन्दर खाता, न तो उपाधि-पदवी की शृंखला और न तो पुरस्कार विजेता पहलवान की मांसपेशियां ही उसे प्रदान कर सकती हैं।

कालाष्ठि में निर्मित विशाल मन्दिर के निर्माण से सम्बन्धित एक कथा है। भृगु एवं भरद्वाज मुनि की सहायता से ऋषि अगस्त्य ने इसे परम्परा के अनुसार निर्माण कराया। प्रतिदिन, सूर्यास्त के लगभग, अगस्त्य ऋषि नदी की तलहटी में बैठ जाते थे तथा हर एक श्रमिक को बुलाते थे। उनकी आज्ञा के अनुसार, दोनों ऋषि प्रत्येक श्रमिक के आँचल में नदी की रेत उठाकर डालते थे। वही उसका पारिश्रमिक था। वह रेत प्राप्तकर्ता के उस दिन के श्रम के समानुपात में ही, स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता था। जो अधिक काम किया होता, उसे अधिक स्वर्ण मिलता था, तथा जो कम काम किया होता, उसे कम स्वर्ण मिलता था। जो कोई पूरा दिन व्यर्थ व्यतीत करता था, उसका रेत, रेत ही रह जाता था। जहाँ तक किसी श्रमिक का सम्बन्ध है, उसके साथ कोई अन्याय नहीं होता था, कोई गुरन्नि-घुरन्नि नहीं था, कोई पक्षपात नहीं था। सभी सर्वदर्शी की उपस्थिति में काम करते थे। इसलिये, उस सर्वशक्तिमान द्वारा प्रनत्त स्वर्ण को सब स्वीकार करते थे; क्योंकि वही उसका उपयुक्त पारिश्रमिक था; न अधिक और न कम।

इस भावना से किया गया कर्म ही कर्म है, भगवान् की निरन्तर उपस्थिति की भावना, यही सच्चाई है। परमेश्वर सच्चाई पूर्वक एवं सहर्ष किये गये कर्म को पुरस्कृत करता है; न कि जो काम उच्चतर अधिकारियों अथवा मिस्त्रियों के भय से किया जाता है। यदि तुम्हारे हृदय निर्मल हैं तो तुम्हारे कार्य भी निर्मल होंगे।

यहां पर उस कार्य की भव्यता का स्मरण करो, जिसमें तुम व्यस्त हो। नदी की उस शक्ति का स्मरण करो जिसे तुम अपनी आज्ञा का पालन करने

के लिये बाध्य कर रहे हो। वह भावना तुमको विनम्र एवं निष्ठापूर्वक बना देगी। प्रशान्ति निलयम में भक्तों ने स्वयं अपने कन्धों पर चट्टान, ईंट, लोहा एवं रेत आदि को ढोया था। उसकी सेवा के परिणाम-स्वरूप अब हम लोगों के पास एक बड़ा अस्पताल, एक सुन्दर पाठशाला तथा एक विशाल श्रोताभवन है। समस्त भवन भक्ति से सिक्त है। इसलिये, एक बार, मैंने कहा था कि रोगी उस भक्ति के सौरभ से स्वयं नीरोग हो जाते हैं।

अपने उपार्जित धन को तुम्हें लाभदायक ढंग से एवं बुद्धिमत्तापूर्वक काम में लाना चाहिये। प्रत्येक योजना-स्थल पर श्रमिकों को करोड़ों रुपये बाँटे जाते हैं; किन्तु, इस सबके अन्त में, जब शिविर तोड़े जाते हैं तथा लोग अपने सामान बांधने लगते हैं, तब घर ले जाने के लिये उनके पास थोड़ा ही शेष रहता है! कठोर श्रम से उपार्जित अपनी आय को तुच्छ मनोरंजन एवं क्षणिक सुख में व्यर्थ नष्ट नहीं करो। अपने भविष्य के विषय में, अपनी सन्तति एवं अपने माता-पिता के विषय में विचार करो। ये निरर्थक आकर्षण जो प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं, उसका भी विचार करो। तुम्हारे बहुमूल्य चरित्र पर वे जो ठेस पहुंचाते हैं, उस पर भी विचार करो। उन लोगों का विचार करो जो भोजन, आश्रय एवं प्रेम के लिये तुम पर निर्भर करते हैं तथा केवल तुम्हीं उनको ये प्रदान कर सकते हो। इन उदात्त कर्मों के सन्दर्भ में तुम अपने व्यय की सूची की जांच करो। बुद्धिमान मनुष्य का यही लक्षण है।

अपने मन में अ-शान्ति के दानव को घुसने नहीं दो। उस महान् नाटक, जिसे प्रस्तुत करने में तुम सब सहायता कर रहे हो, की सफल पूर्ति के लिये तुम अपने समस्त चातुर्य एवं अपनी समस्त बुद्धि को संचालित करो। यह उसका नाटक है। वही डाइरेक्टर है। तुम केवल एक पात्र, अभिनेता हो, उसकी इच्छा का पालन करने वाले हो। तुम वही शब्द बोलते हो जो वह तुम्हारे मुख में रखता है तथा वही हाव-भाव करते हो जो वह निर्देशित करता है।

यह सब उस संगति की महिमा है जिसमें तुम पड़ जाते हो। अपने मित्रों का चुनाव करने में सावधान रहो। छोटे-छोटे सत्संग बनाओ एवं भजन के लिये तथा आध्यात्मिक बातों के लिये विचार आदान-प्रदान करने के लिये नियमित मिलते रहो। भागवत, गीता जैसे सुन्दर आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़ते रहो। अपने नेत्रों को उस परमात्मा के स्वरूप-सौन्दर्य से भरो, अपने कानों को उस परमेश्वर की लीला की कथा से भरो, हृदय को उसके ऐश्वर्य के माधुर्य से भरो तथा उस परमेश्वर को सर्वत्र देखते हुए स्वयं को प्रोत्साहित करते रहो। उसकी सर्वव्यापकता को प्रत्येक पहाड़ी एवं तराई में, प्रत्येक मनुष्य एवं पशु में, प्रत्येक वृक्ष, चिड़ियों एवं कीड़े में देखो। तुम उस दृष्टि के आनन्द से सचमुच स्पन्दित हो जाओगे। वह तुम्हारे कर्म को पूजा के सदृश हल्का एवं सन्तोषप्रद बना देगा। महासागर पर सेतु बांधने के समय वानर अपने शिरों पर विशाल चट्टानों को ले जाते थे और उस समय राम-नाम का उच्चारण करते रहते थे, जो चट्टानों के भार को कम कर देता था। यह भी कहा जाता है कि वे चट्टानों पर राम-नाम अंकित कर देते थे तथा वे चट्टानें तैरने लगती थीं! एक चट्टान को उखाड़ते या उठाते समय वे एक स्वर में राम-नाम पुकारते थे। इसलिये, वे अत्यधिक प्रसन्न होते थे। मानो वे पूजन कर रहे थे, न कि वे काम कर रहे थे, जो अप्रिय है। राम के अनुग्रह ने बाधाओं पर विजय पाने में सबकी सहायता की। **नाम लो एवं अपने काम को हल्का बनाओ। यही तुमको मेरा परामर्श है।**

अभी, तुम्हारे अधिकारी ने मुझे एक पुष्पहार दिया है। यह दो वस्तुओं से बना है।—उन फूलों से जो कल कलियां थीं तथा जो आज खिले एवं कल प्रातः वेला के पूर्व मुरझा जायेंगे। दूसरे, उस धागे से जो कल था, आज है और कल रहेगा। पुष्प अनित्य, अशाश्वत एवं क्षण भंगुर है। यह जीवि का प्रतिनिधित्व करता है जो जन्म एवं मृत्यु, विकास एवं विनाश का शिकार है। धागा या सूत नित्य है, यह ब्रह्मन् है। जिस पर सभी जीवि गूथे हुए हैं,—"सूत्रे मणिगणा इव।" इन पुष्पों की भांति जीवि की अनेक

विशिष्टतायें हैं, अनेक स्वभाव हैं, अनेक इच्छायें हैं; किन्तु धागा एक रूप सम आधार, ब्रह्मन् सूत्र है जो सबको एक सामान्य सृष्टि में एक साथ बांधता है। उस ऐक्य पर प्रतिदिन कुछ समय अवश्य विचार करो। यह तुमको सब प्रकार की अ-शान्तियों से बचा देगा।

तुम लोग करोड़ों लोगों को सुख, सन्तोष एवं संम्पदा प्रदान करने के कर्म में लीन हो। मैं तुम्हें आशीष देता हूं कि तुम लोग इस पवित्र कार्य को शीघ्र एवं सफलतापूर्वक पूरा कर सको तथा किसी दुर्भाग्य की छाया या किसी प्रकार के हस्तक्षेप एवं किसी उल्लेखनीय बेमेलपन के बिना ही इसे पूरा कर सको।

२८ कुंजी घुमाना

(स्थान—द्रोणाचलम्, दिनांक ८-१२-६३)

अब वेदान्त के पुनरुत्थान द्वारा प्रत्येक हृदय में धर्म प्रतिष्ठित करने का काम है, प्रत्येक पथ पर प्रकाश फैलाने का काम है। संसार एक उस बुभुक्षित व्यक्ति के सदृश है जो दावत की प्रतीक्षा कर रहा है। यह एक तप्त धरती के समान है जो वर्षा की प्रतीक्षा कर रही है। इस प्रदेश के वायु मण्डल को मैंने असन्तोष एवं बेईमानी से भरा देखा एवं अनुभव किया है। मैंने इसे कन्याकुमारी से हिमालय तक देखा है। यही कारण है कि आप के समान सहस्रों व्यक्ति दर्शन, स्पर्शन एवं सम्भाषण पसन्द करते हैं। मुझे केवल आश्चर्य हो रहा है कि सहस्रों व्यक्ति स्वयं इस अवसर को अस्वीकार कर रहे हैं।

मनुष्य प्रतिदिन दूसरों के जीवन के विषय में जानने के लिये अधिकाधिक लालची हो रहा है। वस्तुत: वह अधिक बहिर्मु खीन होता जा रहा है। दूसरों में स्वयं की रुचि रखकर वह स्वयं से ही भागना चाहता है। अपने जीवन के विस्तारों से अथवा अपने निजी पुनर्वास के द्वारा वह चिन्तित होना नहीं चाहता है। सूचना के इस बोझ से क्या लोभ है जिसे तुम अपने सिर से वहन करने का प्रयास करते हो, संसार के अनेक प्रदेशों का यह ज्ञान, जो तुम्हारी निजी आत्मा के ज्ञान से शून्य है, जो आत्मा तुम्हारे द्वारा प्रदर्शित सारी रुचियों का केन्द्र है, सारे विश्व का भ्रमण करने से, अनेक जातियों के मनुष्यों से सम्पर्क करने से एवं अपने ही परिचय को जानने में समर्थ न होते हुये कमाने एवं व्यय करने में व्यस्त रहने से कोई लाभ नहीं है।

मानव शरीर का वृक्ष प्रेम पैदा करके अपना साफल्य प्राप्त करता है। वह

मधुर भेंट इस बात का कारण है कि वह उगा एव उसका पोषण किया गया। इसने अपने तत्व को धरती एवं सूर्य से खींचा। उन दोनों से जिनसे उसने यह भेंट प्राप्त की तथा मानव समाज को बदले में वह क्या देता है ? प्रेंम देता है। फल मीठा है; किन्तु ऊपरी छिलका कड़वा हो सकता है। क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, लाभ के छिलके को पहले उतार देना है, तब उस फल को काम में लाना है। अपने अन्तःकरण में माधुर्य की सुरक्षा एवं विकास हेतु अपने भीतर के कड़वेपन या तिताई को काम में लाइये।

सन्तों एवं ऋषियों की अनुभूतियों को तुम यह समझ सकते हो कि आध्यात्मिक संयम से अर्जित अलौकिक आनन्द की तुलना में बाह्य संसार से प्राप्त किया गया आनन्द अत्यन्त अल्प है। उस अलौकिक आनन्द को पाने के लिए वैराग्यपूर्ण साधना अनिवार्य है। पृथ्वी के गर्भ से पानी निकालने के लिए बोरिंग करते समय, पाइप को हवा से रिक्त रखना पड़ता है, ताकि पानी ऊपर उठ सके। तथा **वायु के प्रवेश करने पर पानी ऊपर नहीं उठ सकता है। उसी प्रकार, यह निश्चय समझो कि सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति या दाग तुम्हारी साधना को अवश्य दूषित बना देती है। यदि मन पर ऐन्द्रिक सुख अथवा वैयक्तिक अहंकार धावा करते रहते हैं; तो ईश्वर प्रेम नहीं उमड़ सकेगा।**

जब तक जीवन चलता है, तब तक, तुम ऊंचाई एवं गहराई में, भलाई एवं बुराई में, सही एवं गलत में फंसते रहोगे। द्वैतता अनिवार्य है। यह आवश्यक भी है। एक वीर किसी दुष्ट दुरात्मा की पृष्ठभूमि में ही चमकता है। प्रह्लाद को आस्तिकता की परीक्षा हिरण्यकश्यप की निरीश्वरवादिता की पृष्ठभूमि से ही करनी है। पाण्डवों ने कौरवों के दुर्व्यवहार का सामना करने पर ही अपनी विनम्रता का प्रदर्शन किया था। नगर में एक पाइप पीने के पानी का है तथा दूसरा गन्दे पानी का। मनुष्य के शरीर में शुद्ध एवं अशुद्ध रक्त संचार के लिये शिराओं एवं धमनियों की प्रणाली है। व्यक्ति की स्वस्थता में दोनों का योगदान रहता है।

दोष यह है, तुम यह जानते हो कि एक बात अनुचित है, किन्तु, तिसपर भी, तुम उसे करते ही रहते हो तथा अपने विवेक या चेतना का हनन करते हो एवं उदात्त संवेगों का दमन करते हो। आनन्द प्राप्ति के तीव्रतम साधन के रूप में संसार लाभ के लिए स्थित है। ऊँचा लाभ, तात्कालिक लाभ, सरल लाभ—क्यों, माप करते या गिनते समय तुम, "एक" से प्रारम्भ नहीं करते हो; किन्तु इसके बदले में "लाभ" कहते हो। आगामी संख्या 'दो' निश्चय रूप से है, परन्तु तुम जिस विचार से प्रारम्भ करते हो वह "लाभ" है, 'सेवा' नहीं।

तड़क-भड़क, ठाट-बाट से कैसे रहा जाए, यह समस्या नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इससे दूसरे लोग तुमसे ईर्ष्या करेंगे। किन्तु, समस्या यह होनी चाहिये कि अधिक वैभव पूर्वक, इससे भी उत्तमतर कैसे जीवन बिताया जाय, तथा कैसे ऐश्वर्य पूर्वक प्राणत्याग किया जाए। इतना ऐश्वर्यपूर्वक कि पुनः मरने का अपमान तुमको नहीं झेलना पड़े। मरने पर तुम अपने साथ क्या ले जाते हो ? गजनी के महमूद ने (अपनी मृत्यु से पहले) अपने मंत्री को आदेश दिया कि कब्रगाह पर उसकी शव ले जाते समय उसके दोनों हाथ ऊपर उठे रहें, ताकि लोग यह देख सकें कि वह खाली हाथ पैदा हुआ था और उसी तरह संसार से कूच करते समय खाली हाथ चला गया, यद्यपि उसने सैंकड़ों शहरों की सम्पत्ति लूटी थी।

एक विशेषज्ञ की देख-रेख में साधना करनी चाहिए, जो तुम्हारे स्वास्थ्य एवं स्वभाव के विषय में भली-भाँति जानता है। अत्यधिक उत्साह एवं अनियमितता, दोनों से बचना चाहिए। यदि विवेक ने मिथ्या अभिनय किया, तो साधना जाल बन जाती है। उष्णता की सीमा का लवलेश भूलना ईंट की चिमनियों को नष्ट कर सकता है। कपड़ा साफ करने के सोडे का एक मुट्ठी भर अधिक होना धोने के कपड़ों के गठ्ठर को बराबर कर देगा। चावल से पूर्णतया भरा हुआ बर्तन अधिक पकाने पर व्यर्थ हो जाता है। **कड़ी दृष्टि, देख-रेख एवं होशियारी या चौकसी—साधनों के लिए ये बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। योग, प्रायः रोग में बदल जाता हैं, निरन्तर आत्म परीक्षण की कमी के कारण।**

स्वप्न में विषैले सर्प के काटने के कारण रोता हुआ व्यक्ति केवल जगाकर अच्छा किया जा सकता है। किसी डाक्टर की आवश्यकता नहीं होती है। उसी प्रकार अर्जुन को जो अज्ञान से दुःख भोग रहा था, ज्ञान प्रदान किया गया और स्वस्थ होकर उसने अपने कर्त्तव्य को पूरा किया। पीड़ा एवं सर्प दोनों ही अदृश्य हो जायेंगे, यदि स्वप्नद्रष्टा को जगा दिया जाय; क्योंकि वह केवल कल्पना कर रहा है कि उसको एक सर्प ने डँस लिया।

स्मरण रखो कि जब तुम किसी अन्धे को भोजन के लिए आमंत्रित करते हो, तब तुम्हें दो थालियाँ सजानी हैं, न कि केवल एक अतिथि के लिए एक ही। क्योंकि, उसके साथ निश्चय रूप से पथ-दर्शक होगा। अन्धा व्यक्ति **अज्ञान है तथा पथ-दर्शक सुज्ञान है। सुज्ञान उसे ठीक पथ पर ले जायेगा। सुज्ञान को केवल दायित्व लेने एवं उसे ले जाने की बात है।**

कुंजी को दायें घुमाओ, ताला खुल जाता है। परमात्मा एवं धार्मिकता की ओर मुड़ो, ताला खुलेगा, शृंखला टूटेगी। कुंजी को बायें घुमाओ, तुम बन्धन में होगे। बोल्ट-खटका भीतर गिरेगा तथा जंजीर फंस जायेगी। यह केवल दृष्टिकोण का प्रश्न है—बाह्य दृष्टि या अन्तर्दृष्टि? बाह्य खोज या अन्त:खोज?

इन सबके लिये, आस्तिकता प्रमुख आवश्यकता है। आत्म विश्वास! यदि तुम वैयक्तिक स्तर पर अपने मन पर विजय प्राप्त कर लो तो सामाजिक स्तर में तुम पर्वतों को हिला सकते हो। अपनी शक्तियों का दमन करो तथा उन्हें उपयोगी पथों में चलाओ। यह तुम्हारे लिए एवं दूसरों के लिए हर्ष में फलित होगा। उस **विश्वास—आस्तिकता** को पाने के लिए अपनी **'सत्यता'** को जानो। उसको जानने के लिये, **विशालतर आत्मा से जिसके तुम एक अंश हो, निरन्तर नामस्मरण द्वारा स्वयं को संयुक्त कर दो।**

२६ सुन्दर कला एवं सुन्दरतम कला

(स्थान—शिवाजी नगर, बंगलौर, दिनांक १४-१२-६३)

भारतवर्ष सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम का मूलस्थान है। शताब्दियों से वह इन आदर्शों को धारण किये है तथा उनके आचरण पर बल दे रहा है। भारत का अर्थ है वह देश जो 'भा'—भगवान् में 'रति'—अनुराग या प्रेम, रखता है। इस का तात्पर्य यह है कि यहां के निवासी भगवत-प्रेमी हैं, भगवान् से बहुत डरने वाले नहीं हैं। यदि तुम परमात्मा से प्रेम करते हो, तो तुम्हें मनुष्य से भी प्रेम करना है। यह शिक्षा कि **सत्य** ही **धर्म** का आधार है, जो वैयक्तिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों एवं दायित्वों की स्थापना करता है, तथा सत्य ही प्रेम एवं शान्ति का भी मूल है—भारतवर्ष की यह अप्रतिम विशेषता है। सत्यही पर्याप्त है—किसी अन्य परमातमा के पूजन की आवश्यकता नहीं।

यहाँ गुरुकुलों एवं ऋषियों के आश्रमों में सदैव अभ्यास—आचार—विचार पर बल प्रदान किया गया है। अपनी बुद्धि का प्रयोग करो; यह परमेश्वर द्वारा प्रदत्त भेंट है। स्वयं को सन्तुष्ट करो कि क्या निदान या नुस्खा तुम्हें स्वस्थ करेगा। तब उस संयम का भी पालन करो, जो विशिष्ट दवा के साथ बताया जाता है। तब, तुम पूर्ण, स्वतन्त्र, अघट आनन्द प्राप्त करते हो। भारत के लोग पालने से मृत्युपर्यन्त अनेक युगों से यही शिक्षा पा रहे हैं।

सुन्दरमूर्ति ने अपने **संस्थान** से इस स्टेडियम—क्रीड़ास्थल तक मेरे लिए एक "शानदार" जुलूस की व्यवस्था की है, क्योंकि इस दिन वह अपने संस्थापन की "रजत जयन्ति" मना रहे हैं। अब, मैं तुमसे स्वयं कहूं : मैं यह तड़क-भड़क नहीं पसन्द करता हूं। इससे मुझे कोई आनन्द नहीं प्राप्त होता है। अब, इस

प्रकार की सजावट एक 'फैशन' बन गया है, यहाँ तक कि सन्यासियों एवं साधुओं में भी यह प्रचलित हो गया, जो अधिक उत्तम ज्ञान होना चाहिये था। वे निर्धनता एवं सादगी का उपदेश देते हैं, सिंस पर भी, अपने शिष्यों को धूमधाम एवं आडम्बर पर शक्ति एवं धन व्यर्थ खर्च करने की अनुमति देते हैं। इनसे स्वयं उनका अहंकार एवं उनके अनुयायियों का अंहकार ही बढ़ता है। **किसी वस्तु के प्रदर्शन पर बल देने से उस वस्तु के सम्पर्ण उद्देश्य खोखला बन जाते है। सच्चाई रहित प्रदर्शनों की यह प्रथा वर्तमान युग की विपदाओं का एक बहुत बड़ा कारण है।**

तुम सबको स्वदेश के सम्मान एवं गौरव को बनाये रखने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये। यह तुम्हारा उत्तरदायित्व है। भारतवर्ष विश्व का गुरु होने का अधिकारी है। यह कृष्ण की भूमि है; जहाँ वेदों एवं उपनिषदों का जन्म हुआ; जहाँ सनातनधर्म के प्रचारार्थ श्री शंकराचार्य ने मठों की स्थापना की थी। यह देश रक्षित रहेगा; क्योंकि इसे एक उद्देश्य की पूर्ति करनी है तथा जिसे अन्य कोई पूरा नहीं कर सकता है। तुच्छ भय के सम्मुख कभी नहीं झुको कि यह देश या वह देश हमारी स्वतन्त्रता को संकट में डाल देगा। वह असम्भव है। परमेश्वर के अवतार का आगमन हुआ है। इसका प्रभाव होगा, इस पवित्र देश की रक्षा !

अतीत के ऋषियों द्वारा धारित जीवन को तुम भी आदर्श रूप में धारण करो। तुम्हारा सुख, तब, सुनिश्चित है। उस प्रकार का जीवन तुमको आन्तरिक सन्तुष्टि एवं पूर्ण शान्ति प्रदान करेगा। सैनिक शक्ति की अपेक्षा ईश प्रार्थना अधिक शक्तिशाली है। यदि सच्चे हृदय से आराधना की जाय, तो उसका उत्तर अवश्य प्राप्त होगा। इस देश के निवासियों के हाथों को यह मजबूत बनायेगी, यह अन्य किसी भी उत्साहवर्धक स्रोत की अपेक्षा अधिक मजबूत बनायेगी। भाषणों एवं पुस्तिकाओं की अपेक्षा देशवासियों के हृदयों को यह अधिक मिलायेगी। इतने अधिक झगड़ों एवं भ्रान्तियों से देश को

सड़ाते हुए, मानवता की एकता अथवा इस महाद्वीप या उस महाद्वीप की एकता के लिये चेष्टा करने से क्या लाभ है ? स्वयं सच्चाई एवं दृढ़ता पूर्वक सुसंगठित बनो, तब दूसरों को अपने कदम मिलाने की सलाह दो। बलवती दलीय भावना का अपराध तुम लोगों ने किया है। इसके लिए पश्चाताप करो तथा बन्धुतापूर्ण सहयोग के नूतन अध्याय का शुभारम्भ करो।

आज, सुन्दरमूर्ति, उनके मित्र एवं सहयोगी रजत-जयन्ति के कारण सुखी हैं। संस्थान के लिए यह एक पर्व है। किन्तु, मैं आत्मा के पर्व को इससे अधिक शानदार मानता हूँ। आत्मा का शाश्वत पर्व है! वह आनन्दस्वरूप है। यह कालातीत है। इसलिये, यह काल की गति की गणना नहीं करता है। मैं पूछता हूँ, "जब मनुष्य देह भ्रान्ति, इन्द्रियभ्रान्ति, मनोभ्रान्ति एवं लोकभ्रान्ति से दुखित है, तब वह कोई पर्व या उत्सव कैसे मना सकता है ? वह मिथ्यापन पर विश्वास करता है—शरीर, इन्द्रियाँ, मन एवं विश्व पर विश्वास करता है! वह उनका पीछा करता है हर्ष एवं विषाद भोगता है। इस विनोद में जब कुछ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, तब वह उत्सव मनाता है!

यह माया है, माया में है। मैं तुमको यह बताने नहीं आया हूँ कि इस संस्थान ने अपने जीवन के पच्चीस वर्ष व्यतीत कर लिये हैं। **मैं तो आध्यात्मिक कलाओं से, सुन्दर कलाओं की अपेक्षा सुन्दरतम कलाओं से अधिक सम्बन्ध रखता हूँ। मैं चाहता हूँ कि सुन्दरमूर्ति को आध्यात्मिकता युक्त उन्नायक विषयों, जैसे राधाकृष्ण तथा उनके सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध जो मनुष्य की परख के परे हैं, को नृत्यों में प्रदर्शित करना चाहिए।** वे शराबियों, दुरात्माओं, शक्ति के मतवाले व्यक्तियों एवं विदूषकों के विषयों को अवश्य त्याग दें, क्योंकि वे असभ्य रुचि को भोजन प्रदान करते हैं।

नृत्य एवं नाटकीय प्रदर्शनों के सभी विषयों का मानव की आध्यात्मिक आकांक्षा से सामंजस्य किया जाय; इसका पोषण किया जाय; इसे उर्वरक दिया जाय तथा मनुष्य को लक्ष्य—परमात्मा के अधिक सन्निकट लाया जाय।

मनुष्य पशु एवं देवदूत का सम्मिश्रण है—हम यह कह सकते हैं। उसमें भेड़िया, बन्दर, बैल, गीदड़, सर्प, मोर, रीछ आदि है तथा इन सबमें नीचे ईश्वरत्व की निर्मल चिनगारी भी है। यह उन सबका कर्त्तव्य है, जो मनुष्य की इन्द्रियों को खूराक देते हैं, कि वे आजकल व्याप्त तुच्छ मूल्यों का रूपान्तरण करें तथा उन्हें उच्चतर मूल्यों में कायापलट कर दें। शासक भी देशवासियों के उत्साह एवं कल्पना को स्वस्थ पथों पर अवश्य प्रवाहित करें।

३० समदृष्टि

(स्थान—मालेश्वरम, दिनांक, १५-१२-६३)

मालेश्वरम निवासियों ने भजन के वार्षिकोत्सव को मनाने के लिये सुन्दर प्रबन्ध किया है। वे यहां भजन का संचालन एक वर्ष से कर रहे हैं। भजन सर्वदा आनन्द एवं शान्ति प्रदान करता है। ध्यान रखो कि यह तुम्हारे अहं, या परस्पर दोषारोपण, ईर्ष्या या द्वेष को बढ़ाने का काम नहीं करता है, जैसा प्राय: घटित होता है। विनम्र बनो, शान्त बनो एवं सहिष्णु बनो। सबसे सहयोग करो एवं हर व्यक्ति से शिष्टता एवं दयालुता का व्यवहार करो।

भक्ति वह पहनावा नहीं है जिसे गुरुवार की संध्या के भजन के समय धारण किया जाय तथा भजन के उपरान्त उसे उतार कर दूर रख दिया जाय। इसका अर्थ है विनम्रता एवं माता-पिता, गुरु, बड़ों एवं अन्य सबके आदर की मनोवृत्ति। यह मानसिक दृष्टिकोण है जो सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये। यह हृदय की जीविका है, जैसे भोजन शरीर की जीविका है। 'कम्पास' की सूई के सदृश जो सदैव उत्तर की ओर संकेत करती है, उस दिशा से कभी विचलित नहीं होती है, तथा जब कभी उस पंक्ति से कम्पित होती है, तो उसी ओर तुरन्त, हर्षपूर्वक, शीघ्र ही वापस आ जाती है। उसी प्रकार, **भक्त सदैव ईश्वरोन्मुख रहे। उसके सन्मुख होने पर वह अवश्य सुखी होगा।**

बहुतेरे मनुष्य दुःख से अभिभूत होने पर ही परमेश्वर का स्मरण करते हैं। निश्चयरूपेण, ऐसा करना उत्तम है। उन लोगों की सहायता लेने की

अपेक्षा यह श्रेष्ठतर है, जो समान रूपेण दुःख के शिकार हैं। किन्तु, यह असीमतः श्रेष्ठतर है कि शोक एवं हर्ष में, शान्ति एवं संघर्ष में, सभी मौसमों में भगवान् का स्मरण करते रहें। धरती का गीलापन वर्षा का प्रमाण है, भक्ति का प्रमाण भक्त की शान्ति है, जो सफलता-असफलता, ख्याति, असम्मान, लाभ-हानि, आदि के आक्रमणों से उसकी रक्षा करती है।

आध्यात्मित्रिवेणी की भक्ति गंगा नदी है, वैराग्य यमुना नदी है एवं ज्ञान सरस्वती नदी है। ज्ञान सीधी ट्रेन है। तुम उसमें चढ़ जाओ। इतना ही पर्याप्त है। यह तुमको गन्तव्य स्थान पर सीधे ले जाती है। भक्ति सीधा डिब्बा है। यद्यपि, यह एक ट्रेन से पृथक् करके दूसरी ट्रेन में जोड़ा जाता है, किन्तु, यदि तुम इसमें चढ़ते हो, तो तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। तुम अपने स्थान पर डटे रहो। गन्तव्य स्थान तक ले जाने के लिये यह बाध्य है। कर्म साधारण गाड़ी है। यदि तुम इसमें चढ़ते हो, तो प्रत्येक जंकशन पर उतरना, फिर चढ़ना एवं उतरना पड़ेगा तथा अपने सामान को लादना एवं उतारना पड़ेगा। अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंचने के पूर्व तुम्हें बहुत काम करना पड़ेगा।

ज्ञानार्जनार्थ भक्ति मात्र ही पर्याप्त है। इसका अवसान समदृष्टि में होता है तथा यह अहंवादिता को विनष्ट करती है। ज्ञान भी तुमको यही प्रदान करता है। एक बार नारद गोपियों—अशिक्षित गोपालों की औरतों—को दर्शन के सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिये, जिसे वे 'विज्ञान बोध' कहा करते थे, तत्पर हुए। कृष्ण सहमत हो गये। नारद मुनि वृन्दावन पहुंचे तथा अपनी वार्ता प्रारम्भ कर दी। किन्तु, गोपियों ने कहा, "हम लोग आप के पांडित्य एवं वार्ता की परवाह नहीं करती हैं। हम लोग कृष्ण को हर स्थल में देखती हैं, हर वस्तु में देखती हैं। इसलिये हममें घृणा या द्वेष या शत्रुता नहीं है। इसमें समदृष्टि है। इसमें अहंकार नहीं है। हमारा विश्वास है कि इतना ही पर्याप्त है।" नारद ने देखा कि वे जिस बात का दावा करती हैं, वह सही है। इसलिये, वे पराजित होकर चल दिये।

इस समय, तुममें से अधिकांश द्विगुण या त्रिगुण जीवन बिता रहे हैं। प्रातःकाल योगमय, शेष दिनभर भोगमय एवं रात्रि में रोगमय। तुम अपने से बाहर आनन्द ढूंढ़ते हो तथा अपने भीतर फोड़ा रूपी वासना से पीड़ित हो रहे हो। तुम अपनी जीभ से एक बात कहते हो तथा अपने हाथों से दूसरी बात को पूरा करते हो। तुम ज्ञान के खोजी बनते हो; किन्तु तुम अपने द्वारा उत्पन्न भ्रान्ति से सम्बद्ध हो।

जड़ें अवश्य गहराई तक जायें, पृथ्वी के भीतर जल के स्तर तक गहरी जायें। नहरों के बांधों पर उगने वाले वृक्ष हरे-भरे एवं सघन छायादार होते हैं। तुम्हारी जड़ें भी ईश्वरता तक गहरी अवश्य जायें। यह तुमको शुष्क से शुष्क मौसम में एवं कड़ी से कड़ी सूर्य की उष्णता में हरा-भरा रखेगा।

यह 'लाभ' का युग है। जब किसी से कोई काम करने के लिये कहा जाता है, तब वह प्रश्न करता है, "इससे क्या लाभ है?", "इससे कितना लाभ होगा?" अच्छा, मैं भी पूछूं, "इस खिलाने-पिलाने एवं बड़े होने से, इस प्रयत्न एवं संघर्ष से, इस कमाने, बचाने एवं व्यय करने से, इस हानि एवं लाभ से, 'कार एवं वायुयान में तीव्र गति से यात्रा करने से क्या लाभ है, यदि इन साधनों के द्वारा तुमको मन में शान्ति एवं हृदय में हर्ष नहीं प्राप्त होता है?" **ये सारी क्रियायें व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव को छिपाने मात्र का काम करती हैं—वे इसे तुच्छ वस्तु की राशि में आच्छादित करने तथा मनुष्य की वास्तविक सत्यता सहज प्रभाव का दमन करने का काम करती हैं।**

परमेश्वर के लिये प्रेम का विकास करो, तब तुम उसको अपने अति सन्निकट, अपने निजात्मा में ही देख सकोगे। तुम सबको मैं यही आश्वासन दे रहा हूं।

३१ शूरवीर, शून्य नहीं

(स्थान–प्रशान्त निलयम, दिनाक-१-१-१९६४)

श्री सत्यानारायण अवधानुलु कुछ समय तक और भी बोल सकते थे; किन्तु, कदाचित, मुझको अधिक समय प्रदान करने के लिये वे अकस्मात रुक गये। जब दूसरे बोलते हों, तब, तुम लोगों को लापरवाह या निश्चिन्त नहीं होना चाहिए; क्योंकि, यहां जो कोई भाषण करता है, वह तुम लोगों को वेदों एवं शास्त्रों की सुधा प्रदान करता हूं, जो सर्वदा मधुर एवं मोक्षदायक है। और भी, आज संध्या समय हम लोग यहां मिलते हैं; क्योंकि यह नव वर्ष-दिवस-प्रथम जनवरी-१९६४ है। अच्छा, यह तो विशाल छलना के भीतर एक छलना है—धोखा है। आज का दिन किसी विशाल परिवर्तन के सूचक रूप में अभिनन्दित किया जाता है। मानो, कल का दिन इससे नितान्त भिन्न या, विपरीत था, क्योंकि वह १९६३ का दिन था तथा आज का दिन कुछ नितान्त विशिष्ट है, क्योंकि यह १९६४ का है! आज का दिवस लोगों द्वारा मनोरंजन यात्रा, जुआखोरी, मदिरापान एवं दावतों में मनाया जाता है। लोग सिनेमा देखते हैं, नये वस्त्र धारण करते हैं, एक दूसरे को भेंट प्रदान करते हैं तथा सहर्ष एवं हंसी-खुशी से सबका अभिनन्दन करते हैं। वे अपने पैसे एवं शक्ति को ओछे कामों में, रोमांचों में एवं उत्तेजनाओं में व्यर्थ खर्च करते हैं।

यह सब उस रीति-रस्म के कारण है जो इस दिवस को कुछ अनुपम विहित करता है। वस्तुतः, 'वर्ष' एक रूढ़ि मात्र है। वर्ष में जितने दिन हैं उतने ही **नव वर्ष दिवस** हैं। अनेक जातियों एवं अनेक देशों के अपने विशिष्ट संवत्सर हैं। प्रथम जनवरी अथवा प्रथम चैत्र ही अनुपम नहीं हैं। महीनों की संख्या सूचित करने के लिये वर्ष एक संज्ञा मात्र है, मास दिनों की संख्या, एक दिन

घटों की संख्या, घंटा समय की वह अवधि है जो मिनटों में गिनी जाती है तथा साठ पलों का नाम एक मिनट है। प्रत्येक पल नया है। यह एक भेंट है, एक अवसर है, उत्सव मनाने की एक चीज है, तथा अपने अभ्युत्थान के लिये प्रयोग करने की वस्तु है। अर्थात् **प्रत्येक सैकेण्ड तुम्हें, अपने मन को प्रशिक्षित करने के लिये बुद्धि को संवारने के लिये, भावों को निर्मल बनाने के हेतु इच्छा शक्ति को बलशालिनी बनाने के लिये तथा तुम्हें इस विश्वास में दृढ़ स्थित होने के लिये कि तुम अमर्त्य आत्मा हो, प्रदान किया गया एक नया अवसर है।**

परमात्मा के कृतज्ञ बनो कि उसने तुम्हें समय दिया तथा उसे भरने के लिये कर्म दिया। उसने तुमको भोजन दिया तथा उसका सुस्वाद लेने के लिये क्षुधा। किन्तु, यह तुमको अविवेकपूर्ण कामों में स्वयं को व्यस्त करने का अधिकार नहीं प्रदान करता है। घर का निर्माण करते समय, तुम सामने एक दरवाजा लगाते हो। दरवाजे का क्या उद्देश्य है? इसका उद्देश्य यह है कि जिनका तुम स्वागत करते हो उन्हें भीतर प्रवेश दिया जाये, तथा उनको दूर रखा जाय, जिन्हें तुम नहीं बुलाना चाहते हो। इसका द्विगुण उद्देश्य है। तुम सबके लिये दरवाजे को खुला नहीं छोड़ते हो, कि जो कोई जब चाहे भीतर चला आये। उसी प्रकार, **तुम भी अपने मन के भीतर प्रवेश करने वाले संवेगों, मनोवृत्तियों एवं उत्तेजनाओं को चुनो तथा बुरे अर्थपूर्ण, बुरे आधारपूर्ण विनाशक वृत्तियों को बाहर रखो। शास्त्रों के ज्ञान को, अनुभव की अग्नि में तपे हुए ज्ञान को जिसे अनुभव ज्ञान कहते हैं, प्रवेश प्रदान करो।**

सभी जल घड़े में रखने योग्य नहीं हैं। बन्द सरोवर के जल को दूर रखो। बहती सरिता का जल अधिक उत्तम है। इसे चुनो एवं पियो। **मच्छरदानी का प्रयोग करो; किन्तु, देखो कि जब तुम सोने जाते हो, तब मच्छर भीतर नहीं घुसते हैं। उनको बाहर रखो तथा उनको जाल के भीतर बन्दी मत बनाओ। जल पर तैरने वाली नौका पर यात्रा करो; किन्तु नौका के भीतर जल को**

प्रवेश न करने दो । संसार में रहो, किन्तु इसको अपने भीतर प्रवेश मत करने दो । दरवाजों का उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक करो । उनको भीतर आने दो, जिन्हें तुम चाहते हो तथा जिनकी तुमको आवश्यकता नहीं है, उनको बाहर रखो । **दलदल एवं कीचड़ में उत्पन्न कमल, पानी में से ऊपर उठता है तथा अपने सिर को जल के ऊपर उठाये रहता है । यह गीला होना अस्वीकृत कर देता है, यद्यपि जल ही वह तत्व है जो इसको जीवन प्रदान करता है ! कमल के सदृश बनो ।**

इस सावधानी से कृत कर्मों द्वारा दृष्टि स्पष्ट हो जाती है । मनुष्य दृश्यमान जगत से अन्धा हो जाता है तथा वह विश्वास करता है कि संसार वास्तविक, अर्थपूर्ण एवं अनुकरणीय है । आंख में फुल्ली रोग पैदा होता है तथा इसकी कुशलता को छीन लेती है । **फुल्ली आंख का शत्रु है । अज्ञानता, आन्तरिक दृष्टि की फुल्ली बुद्धि को अन्धा कर देती है तथा इसकी क्षमता को छीन लेती है । इसलिये, वह ईश्वरत्व को नहीं देख सकता है जो उसका वास्तविक स्वभाव है । वह तुमको इस प्रभाव में गलत ले जाता है कि तुम मानव हो, जब कि तुम. वस्तुतः माधव हो ।**

रस्सी को भ्रान्ति से सर्प समझ कर दर्शक भय से भागता है । सत्य तो यह है कि नेत्र नहीं देखता है । ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिनके नेत्र डाक्टरों की खोज के अनुसार अच्छे हैं; किन्तु वे नहीं देख सकते ! नेत्र सूर्य-किरण की एक खुर्दबीनी चिनगारी के द्वारा आलोकित होता है, इसलिये वह देखता है । —"चक्षशोः सूर्यो अजयत" आंख से सूर्य पैदा हुआ था ।

आत्मा सभी इन्द्रियों की प्रेरक शक्ति है । नेत्र एक वातायन मात्र है जिससे आत्मा बाह्य जगत की ओर झाँकता है । दृष्टि ठीक न होने पर, नेत्र के होने से क्या लाभ है ? अर्थात्, जब तुममें समदृष्टि नहीं है (तो तुम्हारे जीवन से क्या लाभ ?) **सम का अर्थ है ब्रह्म; सम-दृष्टि का अर्थ है ब्रह्म को,**

एकेश्वर को, हर वस्तु में, हर समय देखते रहना। यह एकत्व आधारभूत सत्य हैं। अन्येतर सभी अनुभव अपूर्ण, तोड़ मरोड़ एवं मिथ्या हैं।

अपने ध्यान में, उसी पर रहो। अपनी आन्तरिक चेतना में उसे दृढ़ स्थिर करो। मुक्ति का पथ यही है। इस पर चलना, अवश्य प्रारम्भ करो। आज किसी भी दिन के समान उत्तम है, ऐसा काम करने का निर्णय लेने के लिये तुम दीर्घ समय तक सम्पत्ति, सम्मान, वेतन, संतति, सम्बन्धियों, ख्याति एवं जीवन-स्तर पर ध्यान दे चुके हो। वे सभी तुच्छ रुचि के, क्षणिक मूल्य के एवं दूषित लाभ के हैं। अपनी आकांक्षा, ध्यान को नित्य, सत्य, निर्मल एवं निष्कल पर स्थिर करो।

श्री सत्यनारायण अवधानुलु ने महाभारत में उल्लिखित कुछ घटनाओं का वर्णन किया। इसलिये, मैं भी केवल एक मुद्दे का उल्लेख करूँगा, जो तुमको महाभारत का अधिक प्रशंसक बनायेगा। भगवान् के पास माया सहचरी रूप में थी तथा उनका मानस नामका एक पुत्र था। मानस के दो स्त्रियां थीं—प्रवृत्ति एवं निवृत्ति (मोह एव वैराग्य)। निश्चय ही, प्रवृत्ति उसकी अधिक प्रिय स्त्री थी तथा उसके सौ पुत्र थे। निवृत्ति के साथ दुर्व्यवहार होता था और उसकी उपेक्षा की जाती थी। उसके केवल पांच पुत्र थे। कौरवों एवं पाण्डवों का यही प्रतीक है। यद्यपि सभी बालक एक ही राज्य में रहते थे, एक ही समान भोजन करते थे तथा एक ही गुरु से शिक्षा पाते थे, तथापि उनका स्वभाव एक दूसरे से बहुत भिन्न था। प्रवृत्ति की सन्तानें, कौरव अधिक लोभी, क्रूर, स्वयं केन्द्रित एवं घमंडी थे। किन्तु, पांच पाण्डव, उनमें से प्रत्येक एक सर्वोच्च गुण या धर्म का प्रतिनिधित्व करता था। इसलिये, वे सत्य, धर्म, शान्ति, प्रेम एवं अहिंसा के प्रतीक कहे जा सकते थे। वे अत्यन्त निर्मल एवं निवृत्ति से उत्पन्न हुए थे। इसलिये, भगवान् उनके पथ-प्रदर्शक बन गये। वस्तुतः, जो कोई भी भगवान् को अपने सारथी रूप में प्रतिष्ठित करेगा, उसी के वे पथ-प्रदर्शक हो जायेंगे। वे उस पद को छोटा

नहीं मानेंगे। वे सनातन सारथी हैं। वे सबका सारथी बनने के लिये पधारे हैं। वे सबके परमात्मा हैं, जो भी एक स्वामी या सहायक ढूंढ़ता है। प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा स्वामी है। कृष्ण सर्वव्यापक आत्मा है, जो एक व्यक्ति रूप हैं।

उपनिषद् का कथन है कि एक वृक्ष पर दो चिड़ियां बैठी हैं—जीवात्मा एवं परमात्मा, इस शरीर के वृक्ष पर, इस विश्व के वृक्ष पर। एक चिड़िया वृक्ष के फलों को खाती है। दूसरी, साक्षी रूप में केवल इसे देखती है। किन्तु, आश्चर्य यह है कि दोनों चिड़ियां एक ही हैं, यद्यपि, वे दो दिखाई देती हैं। वे पृथक् नहीं किये जा सकते हैं; क्योंकि वे एक ही सत्ता के दो पहलू हैं। वायु में भाप को नहीं देख सकते हैं, इसका कोई रूप या आकार नहीं है; किन्तु वर्षा के रूप में वही है, जो कड़ा है, भारी हैं एवं ठण्डा है। निराकार एवं साकार केवल दो पथ हैं जिनमें एक स्वयं को व्यक्त करता है।

घड़ी की मिनट वाली सूई जीवात्मा है, वह चिड़िया है जो फलों को खाती है। यह चारों ओर चक्कर लगाती है; किन्तु घंटे की सूई धीरे-धीरे एवं चुपचाप घूमती है कुछ निश्चित मर्यादा के साथ। घंटे की सूई को परमात्मा कहा जा सकता है। एक घंटे में एकबार दोनों मिलते है; किन्तु जीवात्मा सदैव उस विश्राम पर स्थिर नहीं रहता है। यह बहुमूल्य अवसर को खो देता है। इसलिये, इसे बारम्बार चारों ओर चक्कर करना पड़ता है। मोक्ष तब है जब दोनों विलीन हो जाते हैं—केवल एक रह जाता है।

जब सत्य के रास्ते में बाधायें कम हो जाती हैं, तब उद्धार या मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यही कारण है कि मोक्ष यहीं पर एवं अभी प्राप्त किया जा सकता है। इस भौतिक शरीर के विनष्ट होने की किसी को प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। कर्म को भार स्वरूप कभी नहीं अनुभव करना चाहिये; क्योंकि वह भावना एक निश्चित लक्षण जो यह सूचित करता है कि यह

अखरता या बुरा लगता है। तुम्हारी प्रगति में सहायता देने वाला कोई भी कर्म तुम पर भार नहीं होगा—कष्टदायक नहीं होगा। जब तुम अन्तरतम् स्वभाव के विपरीत आचरण करते हो, केवल तभी तुम उसे भार समझते हो। एक समय आता है, जब तुम अपनी उपलब्धियों को मुड़कर देखते हो तथा उन सबकी व्यर्थता पर शोक करते हो। अत्यधिक विलम्ब होने के पूर्व, अपने मन को भगवान् के हाथ सौंप दो तथा इन्हें अपनी इच्छानुसार इसे आकृति प्रदान करने दो।

भगवान् की सेवा करने का काम अपने मन को निर्धारित करो और यह पालतू बन जायेगा। तुम स्वर्णकार को नितान्त सुन्दर आभूषण नहीं देते हो, तुम उसे सुधारने या पुनः बनाने के लिये उन्हीं आभूषणों को देते हो। जिन्हें तुम टूटा हुआ, या पिचका हुआ, या चलन से बाहर समझते हो। उसी प्रकार, अपने उस मन को भगवान् के सुपुर्द कर दो, जिसे सुधारने की आवश्यकता है, यदि पूर्ण पुनर्निर्माण नहीं।

जो धब्बा मन को दुष्प्रभावित करता है, वह है माया। यह भयंकर कुत्ते के सदृश है जो स्वामी के पास किसी को जाने नहीं देता। तुम इसके स्वामी का रूप धारण करके—सारूप्यम—ही किसी प्रकार इसके से पास गुजर सकते हो; अथवा इतने ऊँचे स्वर से स्वामी को पुकारो कि वह नीचे उतर आये और तुम को घर में अपने साथ ले जाये। अर्थात् उसका अनुग्रह या **सामीप्य** प्राप्त करके प्रवेश पा सकते हो। माया, उसकी दुलारी है, इसलिये यदि, वह इसको तुमको हानि पहुंचाने से दूर हटने के आदेश देवे, तो तुमको वह हानि नहीं पहुंचायेगी।

परमात्मा केवल एक सज्जन पुरुष को माया से बचाने के लिये नहीं आता है; बल्कि समस्त मानव जाति को बचाने के लिये आता है। निश्चय ही, उसे कोई स्वरूप धारण करना पड़ता है जिससे मनुष्य प्रेम कर सकता है,

जिसका वह सम्मान कर सकता है एवं जिसकी प्रशंसा कर सकता है। वह (परमेश्वर) यदि मानवीय बातचीत की भाषा बोल सकता है, केवल तभी वह सबको आनन्द एवं उत्साह प्रदान कर सकता है। यह जैसा भी है, अनेक व्यक्ति मेरे पास आने में भी डरते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि मैं उनके अन्त-स्तल के विचारों से तथा गहनतम वासनाओं से भी परिचित हूँ। किन्तु, मैं तुमसे कहूँ कि केवल निरीह, असहाय पशु भय करते हैं। मनुष्य अमर्त्य का पुत्र है। उसे भय नहीं होना चाहिये। शेष नाग देवता की प्रस्तर-प्रतिमा के सम्मुख प्रार्थना करते हैं, किन्तु जब वास्तविक सर्प दिखाई देता है, उनकी प्रार्थना के उत्तर स्वरूप, तब वे देवालय से भयत्रस्त होकर भाग जाते हैं ! परमात्मा अपनी कृपावृष्टि करने के लिये स्वयं को प्रगट करते हैं, भय का संचार करने के लिये नहीं।

लखनऊ के निकट एक नदी के तट पर एक साधु रहते थे। वे कुत्तों, कौवों एवं मनुष्यों को समान रूपेण परमात्मा की भाँति पुकारते थे। उन्हें सबके एकत्व की अनुभूति ईश्वरीय सार में हो चुकी थी। ज्ञान, गहन भक्ति का वही फल है, जहां तुम अपने इष्ट देवता के अतिरिक्त अन्येतर कुछ भी नहीं देखते हो चाहे जिधर भी मुड़ो। सदैव आनन्द में निवास करो, उस आनन्द में जो ईश्वरीय चेतना से सदैव एवं सर्वत्र निस्सृत होता है। यही **नित्यानन्द** है, जिसका ज्ञानीजन भोग करते हैं।

जिस प्रकार, रेशमी कीड़ा अपने भीतर से स्वयं रेशमी कोया बुनता है, और वही उसकी मौत सिद्ध होता है। उसी प्रकार, अपने मन के भीतर से पिंजड़ा बनाता है जिसमें वह स्वयं फंस जाता है। किन्तु इससे बचने का भी एक उपाय है, जो तुमको गुरु सिखा सकता है, अथवा तुममें वर्तमान परमात्मा तुमको व्यक्त करेगा।

साधना का अभ्यास करो जो तुमको विश्राम देगी। विदूषक एव भाँड के अभिनय से दूर रहो। आज तक तुम यही करते रहे। शूरवीर (नायक) का

अभिनय करो, न कि शून्य (व्यक्ति) का । **अतीत को विस्मृत कर दो, सम्भाव्य त्रुटियों की या निराशाओं की चिन्ता मत करो । निर्णय लो एवं काम करो ।**

कतिपय ऐसे गुरु हैं जो तुम्हें एक दैनन्दिनी रखने की सलाह देते हैं, तथा तुम्हें अपनी बुराइयों को उसमें अंकित करने के लिये कहते हैं । आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में पढ़ने के लिये तथा स्वयं सुधार करने के लिये प्रतिज्ञा करने के लिये तुमसे कहते हैं । अच्छी बात है । इसका पढ़ना एवं इसे लिखना इसे तुम्हारे मन पर और अधिक प्रभावकारी ढंग से मुद्रित करने का ही काम करेगा । बुरे विचारों के स्थान पर उत्तम विचारों का स्थानापन्न करना तथा धार्मिक कर्मों एवं पवित्र विचारों के चिन्तन द्वारा मन को स्वच्छ रखना श्रेष्ठतर है । स्मृति में केवल स्मरणीय बातों को लाओ । आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने के लिये यह समझदारी का ढंग है ।

३२ नाम का महत्व नहीं

(प्रशान्ति निलयम, दिनाँक १४–८–१९६४)

आज एक पवित्र दिवस है, क्योंकि लोग इस रूप में इसका सम्मान करते हैं। उन व्यक्तियों के लिए प्रत्येक दिवस पवित्र है, जो इसका प्रयोग पवित्र मन्तव्यों के लिए करते हैं। किन्तु कतिपय दिवस पृथक् किए गए विशिष्ट महत्वपूर्ण होने के कारण। उनमें से मकर संक्रान्ति एक है। संक्रान्ति इसलिये कहा जाता है कि यह दिन तुमको अन्धकार से बढ़ते प्रकाश में ले जाता है। आज से प्रकाश का पथ खुलता है। आज, सूर्य उत्तरायण में प्रवेश करता है। वह मकर रेखा से मध्य रेखा में चलता है। कष्टमय (बाण) शैय्या पर ५६ दिन व्यतीत करते हुए भीष्मपितामह ने इस दिवस की प्रतीक्षा की थी; क्योंकि वे सोचते थे कि जब सूर्य उत्तर की ओर यात्रा आरम्भ करता है, तब मृत्यु मंगलदायिनी होती है। वे भगवान् के चरणों पर अपने प्राणों को मंगलमय मुहूर्त में न्यौछावर करना चाहते थे।

मनुष्य को सदैव 'बलम्' शक्ति की ओर बढ़ना चाहिये। उसे असत्य, दुष्टता, कुटिलता में लीन नहीं होना चाहिये; क्योंकि इसमें सभी कायरता- 'बलहीनम्', की मूलभूत घातक विशेषता को प्रगट करते हैं। अपनी वास्तविकता की अपेक्षा स्वयं की हीनतर प्रतिमा को ही सत्य मान लेने से 'बलहीनता' या कायरता पैदा होती है। —तुम विश्वास करते हो कि तुम भूसी हो; किन्तु, वस्तुतः, तुम गूदा या हीर हो। यही मुख्य त्रुटि है। भूसी को दूर हटाने के निमित्त एवं गूदा को प्रगट करने हेतु समस्त साधना का अवश्य संचालन किया जाय। जब तक तुम यह कहते हो 'मैं हूँ', तब तक

भय का होना अनिवार्य है, किन्तु, एक बार, तुम कहो एवं विचार करो कि 'मैं ब्रह्म हूँ' 'अहं-ब्रह्मास्मि', तुम अजेय शक्ति प्राप्त करोगे।

देह एक क्षेत्र है उस स्वामी का जो सभी क्षेत्रों को जानता है। एक दिन, रात्रि के समय, विवेकानन्द अपने कक्ष में थे। उन्हें नींद नहीं आ रही थी, क्योंकि वे विरोधी विचारों द्वारा उद्वेलित हो रहे थे। श्री रामकृष्ण सो गये थे। वे स्वप्न में बातें कर रहे थे; किन्तु विवेकानन्द उनकी बातचीत को स्पष्ट सुन रहे थे। वे कह रहे थे, 'ऐ मानस ! ऐ मानस राजहंस ! ऐ नित्यानन्द रसैक निलय ! तुम दैव स्वरूप हो। ईश्वर के ध्यान रूपी निर्मल सरोवर में क्रीड़ा करो। इसके बदले, तुम ऐन्द्रिक सुखों की गन्दी तलैया के लिए क्यों तृष्णा करते हो ?" नरेन को गुरू की वही परामर्ष थी। नरेन ने उस परामर्श को हृदयंगम करने का तुरन्त संकल्प किया।

ईश्वर का प्रभाव ऐसा है कि इसका ध्यान करते समय, तुम्हारे मन से ईर्ष्या एवं लोभ के सभी चिन्ह अदृश्य हो जाते हैं। बालकृष्ण एक गोपी के घर में घुस गया था। जब उस गोपी ने कृष्ण को ढूंढ़ा, तब वह दही के मटके के नीचे खड़ा था। कृष्ण गली में भागे तथा गोपी ने उनका पीछा किया तथा वह उनको शीघ्र पकड़ना चाहती थी; क्योंकि बालकृष्ण के जलती धूप में दौड़ने से उसे बहुत कष्ट हो रहा था। दही या दूध या नवनीत के नष्ट होने की उसे तनिक भी चिन्ता नहीं थी: किन्तु कड़कती धूप में कड़े पत्थरों पर पड़ते हुए कृष्ण के कोमल चरणों की कल्पना उसे असह्य थी। जो प्रेम कृष्ण बरसाते थे, वह सबको अन्य सभी बातें भुला देता था। माँ तथा गोपियों के प्रश्नों का वे भी ऐसे निशस्त्र उत्तर दिया करते थे कि उनके प्रति प्रेम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कोई नहीं रख सके। अवतारों की यही विशिष्टता, सभी युगों में रहती है।

"वह भगवान् के मन्दिर भगवान् को चढ़ाने के लिये दूध लिये जा रही

थी; कदाचित् भगवान् ने स्वय उससे दूध का घड़ा ले लिया।" अपनी निजी **सत्यता** की अप्रत्यक्ष घोषणा करते हुए, वे कहा करते थे। 'माँ ! मैं तो तुम्हारे बगल में सो रहा था। उनका मक्खन चुराने के लिये, मैं तब किस प्रकार उनके घर चला गया था ?" —यह संकेत करते हुए कि मैं एक ही समय में एक से अधिक स्थानों पर रह सकता हूं, वे उत्तर देते थे। जब, नवनीत ढूंढ़ने की क्रिया में वे पकड़े जाते थे, वे कहा करते थे कि वे उस बछड़े को उसके भीतर ढूंढ़ रहे थे, जो भाग गया था। ऐसी सुन्दर युक्तियों से वे सबके हृदय में स्थान बना लेते थे तथा गोपियाँ उनका लाड़-प्यार करने एवं सेवा करने में एक दूसरे से ईर्ष्या करती थीं।

भीष्मपितामह के लिये भी कृष्ण वही प्रेमस्वरूप थे। गंवार, सरल गोपियाँ एवं वयोवृद्ध शूरवीर भीष्म उनका सम्मान करते थे। हर प्रकार के, वर्ग के एवं व्यवसाय के लोग ज्ञान, अनुग्रह एवं प्रोत्साहन के अपने स्रोत को उनमें प्राप्त करते थे। वही अवतार का लक्षण है। उत्तरायण के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए भीष्म मानव जाति को एक मूल्यवान् संदेश दे रहे थे —सूर्य बुद्धि का अधिष्ठित देवता है। जब हृदयाकाश में सूर्य उत्तर की ओर मोड़ लेता है अर्थात्, उत्तरायण या उत्तमायन पथ पर होता है, जो दृश्यमान जगत की ओर नीचे लाने के बदले, परमात्मा की ओर ले जाता है। वह अवधि आत्मा की यात्रा के लिए भी सर्वोत्तम समय है। इसलिए, आज तुमको देवयान पर चलने का संकल्प करना चाहिये। परमात्मा के नाम स्मरण, अर्चना, एवं आराधना आरम्भ करने के लिए संकल्प करो। जिस दिन तुम यह कार्य शुभारम्भ करते हो तथा अपनी बुद्धि के लिए श्रेष्ठकर पथ का उद्घाटन करते हो, वह दिन तुम्हारे लिए उत्तरायण है। तिथि बताने के लिए तुम पंचाङ्ग की प्रतीक्षा मत करो।

उर्वकोण्डा में अपने परिचय की घोषणा करते समय मैंने जो प्रथम शिक्षा दी थी, "मानस भज रे गुरुचरणम्, दुस्तर भव सागर तरणम्।"

अर्थात्, तुम सर्वप्रथम यह समझो कि तुम भवसागर में पड़े हो—जन्म एव मृत्यु के चक्र में फँसे हो, तब तुम संकल्प करो इसे पार करने के लिये। तब, गुरु या परमात्मा के नाम एवं रूप पर, जो तुम्हें प्रिय है, मन को स्थिर करो। अन्त में, उसकी महिमा का चिन्तन करो, भजन करो किन्तु इसे पूरे मन से करो। जो इस सापेक्षिक सत्यता से भ्रान्ति में पड़ा है, वह संसारी है, तथा जो यह जानता है कि यह सापेक्षतः सत्य है, वह साधक है।

अहवादिता सबसे भयानक धोखा है जिसका विस्फोट एवं विध्वंस करना है। भीम में यह था। किन्तु जब वह एक बूढ़े, दुर्बल बन्दर की पूंछ को न तो उठा सके और न बगल में रख सके, जो स्वयं आंजनेय थे, तब वह बुलबुला फूट गया। अर्जुन में भी यह दोष था। एक दिन युद्ध समाप्त होने के पश्चात्, जब श्री कृष्ण रथ को शिविर के पास वापस लाये, तब अर्जुन चाहते थे कि अन्य सारथियों की भाँति श्री कृष्ण को रथ से पहले उतरना चाहिये और सारथी द्वारा रथ के दरवाजे खोलने पर वह स्वामी (अर्जुन) बाद में रथ से उतरे। क्या यह बात नहीं है? कृष्ण ने अस्वीकार कर दिया तथा आग्रह किया कि उनके उतरने के पूर्व अर्जुन को उतरना चाहिये। अन्ततोगत्वा श्रीकृष्ण सफल हुए। अर्जुन उतर गये। तत्पश्चात्, ज्यों ही श्री कृष्ण जी उतरे, और पृथ्वी पर आये, रथ धू! धू! जलने लगा।

यदि श्री कृष्ण रथ से पहले उतरे होते तो क्या हुआ होता? यथार्थ तो यह है कि अनेक आग्नेय बाण जो रथ पर आघात किये थे उनमें रथ को जलाने की शक्ति थी; किन्तु श्री कृष्ण के आरूढ़ रहने के कारण उनकी ज्वलन शक्तियाँ स्वयं को व्यक्त नहीं कर सकीं। इसे जानने पर अर्जुन बहुत अपमानित हुए। उनके अहंकार को गहरी ठेस पहुंची। उन्हें यह ज्ञान हुआ कि श्री कृष्ण का प्रत्येक कार्य गरिमापूर्ण था।

कृष्ण वह अवतार थे जिनका अवतरण दुष्टों के विनाशार्थ हुआ

था। किन्तु, इस समय, दुष्टता कुछ सीमित व्यक्तियों में ही नहीं देखी जा सकती है; बल्कि यह विस्तीर्ण हो गई है। विच्छू की केवल पुंछ में विष होता है; काले नाग के केवल दाँत में विष होता है; किन्तु मनुष्य के सारे अंगों में विष भरा है। उसके नेत्रों में, उसकी रसना में, उसके मन में, उसकी बुद्धि में, उसके हाव-भाव में, उसके मस्तिष्क में—प्रत्येक स्थान में विष है! तुम पूछ सकते हो, "अरे ! यह विष कब निवारण एव विनष्ट किया जायेगा ?" यह विलीन होगा। इसमें सन्देह नहीं करो। वही असली उद्देश्य है जिसके लिये मैं आया हूँ। अपने हृदयपुष्प को मेरे पास लाओ; (किन्तु) इसे नष्ट करने वाले सभी रोगों से मुक्त—मनुष्य को छः शत्रुओं—काम, क्रोध, मद, मोह लोभ, मात्सर्य से मुक्त करके लाओ।

आध्यात्मिक विजय के लिये कोई भी प्रयत्न करने के लिये कटिवद्ध नहीं है। यदि जिलाधीश के पद को तुम अपने लिये सीधे प्रदान करने की मांग करोगे, तो यह कैसे सम्भव हो सकता है ? कुछ निर्धारित योग्यतायें है :-- आयु, पाण्डित्य, कुशलता, बुद्धि, अनुभव। पुष्प अवश्य फल बने तथा फल अवश्य पके, पक्वता माधुर्य में अवश्य अभिव्यंजित हो। इन सब में समय लगता है। एक नास्तिक भी एक श्रेष्ठ या गुप्त शक्ति को अवश्य स्वीकार करे जो वस्तुओं एवं घटनाओं को पथदर्शाती है। यह तर्क कि तुमने इसको नहीं देखा है इसलिये, तुम इसे सत्य नहीं मानोगे। यह नितान्त बुद्धिमानी नहीं है। आँख अधिक से अधिक एक साधारण अस्त्र है। पुनः तुम्हें किसी वस्तु को स्वय देखना आवश्यक नहीं है। जिन लोगों ने इसे देखा है और यदि वे द्वेषरहित एवं ज्ञानी हैं, तो उनका विश्वास किया जा सकता है।

जब एक मनुष्य ने एक संकीर्ण पहाड़ी पथ से जाने का विचार किया। लोगों ने उसको चेतावनी दी कि उस सड़क की पटरी पर एक काला सर्प है, किन्तु उसने उत्तर दिया कि उसने सर्प को नहीं देखा है। इसलिये, वह इस बात को विश्वास करने का तैयार नहीं है। जब सर्प ने उसको काट

लिया, तब उसे विश्वास करना पड़ा। किन्तु, तब इतना विलम्ब हो चुका था, कि उस ज्ञान से कोई लाभ नहीं हो सकता था! नागैय्या ने अभी कहा, कि पं० नेहरू को अपने एक तत्कालीन भाषण में यह स्वीकार करना पड़ा कि व्यक्ति के प्रयत्नों के बावजूद भी एक नियति या भाग्य है जो घटनाओं की रचना करता है। हां, प्रत्येक को इस निचोड़ पर आना है, चाहे वह अविलम्ब से या विलम्ब से आवे, क्योंकि घटनाओं को रोकने के लिये मनुष्य के सामर्थ्य की एक सीमा है। उसके परे एक अदृश्य हाथ घटनाओं के चक्र को ग्रहण कर लेता है। तुम इसको **नियति** कह सकते हो, दूसरा इसको **सर्वशक्तिमान** कह सकता है, तीसरा इसको **परमात्मा** कह सकता है। नाम का महत्व नहीं है। यह **विनम्रता** है जो महत्व रखती है, **विस्मय,** तथा **भय** का विचार है जो महत्वपूर्ण है।

कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो कहते हैं कि मन में कोई विलक्षणता रहे तथा मूल्यवान् वस्तु के रूप में उसका आदर करना ही पर्याप्त है तथा इसका आचरण करना उतना आवश्यक नहीं है। यह उस कथन के समान है कि थाल में भोजन का होना पर्याप्त है, इसे खाना एवं पचाना कोई आवश्यक नहीं है।

दो भाई अपनी कंजूसी के लिये प्रसिद्ध थे। उनमें से बड़ा भयंकर अपराधी था। एक दिन उसे कुछ दूर दूसरे गांव में जाना था। इसलिये, वह सवेरे उठा तथा घर से बाहर चला गया। लगभग पांच मील की दूरी पर, आधे रास्ते में उसके मन में संशय उत्पन्न हो गया कि ज्योंही उसने घर छोड़ा था, त्यौंही उसके छोटे भाई ने तेल के दीपक को भुजाया या नहीं। इसलिये, वह तेजी से वापस गया तथा भीतर अपने भाई से पूछा। उसने कहा, "क्या मेरी बुद्धि पर तुम सन्देह करते हो? ज्योंही तुमने अपनी पीठ घुमायी थी, त्योंही मैंने दीपक बुझा दिया था। किन्तु, प्रार्थना करता हूँ, "तुम वापस क्यों आये?" सोचो, पांच मील अतिरिक्त चलने से तुम्हारा चप्पल कितना अधिक

घिस गया ?" बड़े भाई ने उत्तर दिया, "क्या ? तुम मेरी बुद्धि पर सन्देह करते हो ?" मैंने चप्पलों को अपने बगल में दबा लिया था तथा मैं नंगे पांव वापस आया था।"

किन्तु, क्या तुम उनके कंन्जूसीपने के परिणाम को जानते हो ? छोटे भाई को अन्धेरे में बिच्छू ने डंक मार दिया तथा ज्येष्ठ भाई के नंगे पांव में पथ पर काले सर्प ने काट लिया !

फिल्म में नागैय्या ने जब त्यागैय्या का अभिनय किया था, तब वह कभी नहीं भूला था कि वह नागैय्या है। यदि वह भूल जाये, तो फिल्म बिगड़ जायेगी। उसी प्रकार, तुम भी कभी न भूलो कि तुम आत्मन् हो। उसी चेतना के साथ तुम इस विश्व के रंगमंच पर कोई भी अभिनय कर सकते हो। भागवत एवं महाभारत में कृष्ण के कार्यों के प्रकाश में यदि तुम गीता पढ़ो तो यह तथ्य तुम्हारे मन में स्थापित हो जायेगा। अपने मन को भगवान् की लीला एवं उनके वैभव से भरो।

एक बार कृष्ण तथा उनके साथी एक घर में चुपके से घुस गये तथा दही के मटके को उतार लिया। उसी समय गृह स्वामिनी भीतर आई। "तुम भीतर क्यों आये ?", उसने पूछा। कृष्ण ने उत्तर दिया, "मेरी मां के हाथ में एक छड़ी थी। इसलिये, डरकर मैं भीतर भाग आया था।" "ये बालक कौन है ?" उस स्वामिनी ने प्रश्न किया। "जो मैं कहता हूँ, उसकी साक्षी के लिये मैं इसको लाया था।", कृष्ण ने उत्तर दिया।

"उस मटके को तुमने अपने पैरों के मध्य क्यों रखा है ?" उसने बनावटी क्रोध से पूछा। "ताकि ये साथी मक्खन न निकाल सके।" यह कृष्ण का उत्तर था। "तुम एक घर से दूसरे घर में क्यों जाते एवं उनके भण्डारों से मक्खन क्यों खाते हो।" यशोदा ने प्रश्न किया। "मुझे वही

वस्तुयें प्रिय हैं जिनको मैं चुनता एवं पसन्द करता हूं। दूसरों का खिलाना मुझे प्रिय नहीं है" बालकृष्ण ने उत्तर दिया। कृष्ण एक घर या एक दिनचर्या में बंधे नहीं रह सकते थे। **वे सर्वव्यापी हैं; वे भक्त वत्सल हैं।** अपने हृदय को भगवान् का आसन बनाओ। तब वह मूल्यवान हो जायेगा। **अबरक मिली मिट्टी कीमती होती है। किन्तु, जिस धरती में सोना होता है, वह और भी अधिक कीमती होती है। मिट्टी का मूल्य उसके गर्भ में छिपी धातु के मूल्यानुसार होता है। उसी प्रकार हृदय का मूल्यांकन उसमें निहित भावों के अनुसार होता है। परमात्मा को अपने हृदय में धारण करो, तब वे तुम्हारी सबसे मूल्यवान सम्पत्तियां होंगी।**

यदि हृदय में ईश्वर को आरोपित किया जाये, तो तुम्हें हर स्थल पर ईश्वर ही दिखाई देगा, दृश्यमान जगत में भी वही दिखाई देगा, क्यों कि 'सर्वं ब्रह्ममयम्' एक सत्य है। आज तुम लोग केवल धार्मिक कर्मों, उत्तम विचारों एवं उत्तम संगति में लीन रहने की प्रतिज्ञा करो। अपने मन को उन्नायक विचारों पर टिकाओ। आलसीपन की बातों में, व्यर्थ आत्म प्रशंसा में अथवा पतनोन्मुखी मनोरंजनों में अपने जागरण के समय का एक क्षण भी व्यर्थ न करो। मृत्यु तुम्हारे पीछे डण्डा लेकर दौड़ती है तुमको गिराने एवं ले जाने के लिये। कैनेडी का विचार करो। किस प्रकार वह उसके चारों ओर मंडरा रही थी तथा अवसर ढूंढ़ रही थी। क्या उसकी रक्षा के लिये आदमी, सैनिक, सुरक्षा वाले एवं अंगरक्षक उसके पास नहीं थे? किन्तु, सब व्यर्थ था। **इसलिये, जब तक जीवन चल रहा है, उत्तम कर्म करो, मधुर एवं कोमल शब्द बोलो, किसी को हानि नहीं पहुंचाओ या अपमानित नहीं करो, लाचार की सेवा करो तथा परमात्मा की प्रतिमा को सर्वदा अपने मन की आंख के सामने रखो।**

धर्म निरपेक्ष राज्य छोटे बालकों एवं विद्यार्थियों को विद्यालयों में सनातन धर्म के सिद्धान्तों की शिक्षा देने से अस्वीकार करती है, यद्यपि वे

सिद्धान्त सर्वव्यापक प्रयोग के हैं तथा वे किसी भी धर्म के विरुद्ध नहीं हैं। यह कहा जाता है, कि श्री प्रकाश समिति ने नैतिक शिक्षा के लिये संस्तुति की है। किन्तु, यदि इसने व्यक्ति के आत्मिक आधार पर बल नहीं दिया है, तो सनातन धर्म की जीवन दायिनी शक्ति बहुत मात्रा में खो जायेगी।

युवकों को ध्यान के लिये एक नियमित पाठ्यक्रम भी अवश्य प्रदान किया जाये, ताकि वे अपने निजी व्यक्तित्व की गहराइयों एवं आगामी शान्ति एवं सौख्य को सुनिर्धारित करने के लिये उसकी अनन्त सम्भावनाओं को भली प्रकार समझ सकें।

३३ परमेश्वर–सदन

(त्रिचनापली, दिनाँक, ३-२-६४)

मैं त्रिचनापली पन्द्रह वर्षों से, कभी-कभी, आया करता हूँ; किन्तु यह प्रथम अवसर है कि नागरिकों की इस विशाल संख्या को आनन्द वितरित कर रहा हूं। नटराजन, ए. के. सी. को हर्ष है कि मैं गृह प्रवेशोत्सव में पधारा हूं। यह एक बहाना मात्र है। तुम सब लोगों को आनन्द प्रदान करना ही मेरे यहां पधारने का प्रथम उद्देश्य था। तुम्हारा आनन्द मेरा आनन्द है। आज, ए. के. सी. ने अपने लिये निर्मित भवन में प्रवेश किया। मैं चाहता हूं कि तुम सबको अपने सुखमय जीवन के लिये नये घरों का निर्माण करना चाहिये एवं उसमें भगवान् को प्रतिष्ठित करना चाहिये। मेरे कथन का तात्पर्य ईंटों एवं मसाले से बने भवनों से नहीं है, **किन्तु उत्तम विचारों, उत्तम शब्दों, उत्तम कर्मों एवं सत्संग से है, जहां तुम शान्ति एवं सुख से रह सकते हो। तब, सचमुच, वह सदन पहले से ही मेरा है** और तब वहां आने एवं प्रवेश करने के लिये मुझे किसी निमन्त्रण की आवश्यकता नहीं। ये भवन तो सांसारिक सुखों के लिये हैं; वह सदन आध्यात्मिक आनन्द के लिये हैं। **मेरा निवास स्थान निर्मल एवं जिज्ञासु हृदय है।**

"देहो देवालयम्" शरीर मन्दिर है—यह कहा जाता है। ए. के. सी. नटराज का एवं तुममें से प्रत्येक का वास्तविक भवन वही है। तुम लोग इधर-उधर एक मन्दिर के साथ चल रहे हो, जहां अन्तरतम मन्दिर में परमात्मा रहता है। शरीर मांस एवं अस्थियों की राशि नहीं है, यह उन **मन्त्रों** का एक माध्यम है, जो ध्यान करने पर तुम्हारी रक्षा करते हैं। बुद्धि एवं भाव से

संयुक्त होकर अनेक दीर्घ युगों तक संघर्ष करने के उपरान्त उपार्जित पवित्र साधन या अस्त्र है, जो दुःख एवं बुराइयों से उद्धार पाने के लिये काम में लाने योग्य है। इसी रूप में इसका सम्मान करो, इसे उत्तम दशा में रखो ताकि यह उस उच्च उद्देश्य को पूरा कर सकें। इन ईंट के भवनों की अपेक्षा अधिक सावधानी के साथ इसको कायम रखो तथा सदैव इस दृढ़ विश्वास को सुरक्षित रखो कि यह एक अस्त्र या उपाय है तथा और कुछ नहीं। जिस उद्देश्य के लिये इसकी संरचना की गई है तथा यह प्रदान किया गया, केवल उसके लिये इसका उपयोग करो।

इस समय, सर्वोपरि, यह अत्यावश्यक है कि प्रत्येक उस सत्य, निर्मल एवं नित्य की छान-बीन करें, क्योंकि, इस समय मूल्यों के प्रति एक भ्रान्ति प्रस्तुत है। लोकनायक भी मिथ्या कल्पनाओं को गले लगाते हैं कि सम्पत्ति या स्वास्थ्य, या गृह या वस्त्र या कलाकौशल एवं निर्माण में कुशलता के द्वारा सुख प्राप्त किया जा सकता है! विहंग डाली पर अपनी पांखों पर भरोसा करके बैठता है। तूफान में डाली हिलती है। वह उस डाली पर भरोसा नहीं करता है जिस पर वह बैठता है। उसी प्रकार तुम्हें भी अपनी पांखों—श्रद्धा एवं विश्वास की दृढ़ पाँखों के कारण मजबूती का अनुभव करना चाहिये, न कि दृश्यमान संसार की डालियों के कारण, जिन पर तुम बैठे हो।

कावेरी नदी को बाढ़ों के अनुभव से तुम जानते हो कि बाढ़ में डूबने से किसी मनुष्य को कोई नहीं बचा सकता है—न तो उच्चस्तर, न उच्चवर्ण, न सम्पत्ति, न स्वस्थता उसे बचा सकते हैं, जब तक कि वह तैरने की सरल कला को नहीं जानता है। क्या मुझे यह कहने की आवश्यकता है कि संसार रूपी सागर को पार करना, जन्म एवं मृत्यु के सागर के दूसरे छोर पर पहुँचना उसी प्रकार सम्भव है केवल उनके लिये जो आध्यात्मिक साधना की कला को जानते हैं? **जो मानव समाज का धन की आधारशिला पर निर्माण करना चाहते हैं वे बालुका पर महल बना रहे हैं। जो धर्म की शिला पर निर्माण करने का प्रयास कर रहे हैं; वे बुद्धिमान हैं।**

"धर्म मूलं इदं जगत् ।" इस संसार का मूल धर्म है । इसका पालन करो और तुम सुखी रहो । दुरात्मा व्यक्ति कायर है जो भय के भूत से डरता है । उसके भीतर शान्ति नहीं है । धर्म पहली शिक्षा यही देता है : माता-पिता का सम्मान करो जिन्होंने तुम्हें जीवन प्रदान किया एवं इस संसार में तुमको अनेक एवं विशाल अनुभवों के भण्डार के सहित लाया । कृतज्ञता वह चश्मा है जो उस सम्मान को भोजन देता है। आज, यह गुण विश्व से तीव्रता से लुप्त हो रहा है । आचार्यों, वयोवृद्धों, ज्ञानियों के लिये सम्मान का ह्रास हो रहा है । यही कारण है कि धर्म तेजी से लुप्त हो रहा है तथा अपने दावे को खो रहा है ।

लोग सभी प्रकार के मंचों से धर्म, प्रेम, शान्ति, दया, सत्य आदि के विषय में चिल्ला-चिल्लाकर देर तक बातें करते हैं । दूसरे दिन समाचार पत्रों में इसका प्रकाशन होता है । वहाँ उनके उद्देश्य का अन्त हो जाता है । आज का समाचार पत्र कल का रद्दी कागज हो जाता है ! यह पैकिंग के काम आता है, यह धूल में फेंक दिया जाता है तथा कूड़े के रूप में जला दिया जाता है । सभी मंच-व्यवसायों की यही कथा है । **अपने उपदेश के एक अंश का तुम आचरण करो** ।

जिस प्रकार, शरीर रूपी गृह में तुम निवास करते हो, उसी प्रकार, विश्व परमात्मा का शरीर है । तुम्हारे पैर की छोटी अंगुली में काटकर एक चींटी तुम्हारे ध्यान को उस स्थान पर आकृष्ट कर लेती है । तुममें दर्द की प्रतिक्रिया होती है तथा तुम उस नन्हें शत्रु को हटाने के लिये प्रयत्न करते हो । उसी प्रकार, तुम सम्पूर्ण देश के किसी भाग में दिखाई देने वाले दुःख, विपत्ति या हर्ष या उमंग का अनुभव करो तथा तुम शत्रु से स्वदेश की रक्षा करने के लिये अवश्य उद्योग करो, चाहे वह स्थान, जहाँ शत्रु स्वयं उपस्थित हो गया हो, कितना भी दूर क्यों न हो । अपनी जाति के सम्बन्धी बनो । अपनी सहानुभूति का प्रसार करो तथा जिन्हें सहायता की आवश्यकता है

उनको अपने कौशल एवं स्रोत के अनुरूप सहायता करो । अपनी बुद्धि का अनुपयोगी पथों में व्यर्थ विनष्ट न करो ।

प्रत्येक व्यक्ति, भोजन की कुछ मात्रायें ग्रहण करता है; किन्तु वह यह सोचने के लिये कभी नहीं ठहरता है कि जिस समाज ने उसे जीवित रहने में सहायता की है उसके प्रति वह बदले में क्या करता है । भोजन को सेवा रूप में रूपान्तरित करना चाहिये, चाहे वह अपने सर्वोत्तम लाभ के लिये, अथवा दूसरों के लाभार्थ । तुम्हें दूसरों पर भार स्वरूप अथवा स्वयं के शत्रु रूप में नहीं बनना चाहिये । शरीर मात्र की देखभाल लाभरहित है, क्योंकि शरीर तो एक बर्तन है । ईश्वरीय चिनगारी जब इसके बाहर निकल जाती है, तब यह एक घृणित बर्तन हो जाता है । अन्त्येष्टि क्रिया में यदि वर्षा अवान्तर पैदा करती है, तो कोई भी शव को अपने घर के भीतर नहीं रखने देता है । मन्दिर जाते समय, पथ का दूकानदार तुम्हें अपने जूते कुछ समय के लिये रखने की अनुमति दे सकता है; किन्तु शव को रखने की कभी नहीं अनुमति देगा ! यह कुछ ऐसी घृणाकारक है जिसके दर्शन से दूर रहना होता है ।

ताले की कुंजी को दाहिने घुमाओ, वह खुल जायेगा । उसी कुंजी को बायें घुमाओ, वह बन्द हो जायेगा । उसी प्रकार, अपने मन को वस्तुगत संसार की ओर फेरो, यह बन्द हो जाता है, फंस जाता है तथा गिरफ्त हो जाता है । इसको इन्द्रियों के विषयों से दूर, दायें घुमाओ, ताला खुलेगा, तुम स्वतन्त्र होगे, उद्धार निकट है । दायें कैसे घुमावे ? अच्छा, नाम स्मरण से प्रारम्भ करो । यह प्रथम कदम है । सभी यात्रायें प्रथम कदम से प्रारम्भ होती हैं । यह स्वयं तुमको दूसरे कदम तक एवं तीसरे कदम तक......तदनन्तर लक्ष्य तक ले जायेगा ।

अब तुमसे एक दूसरी बात मुझे बतानी है । मैं देखता हूं कि कुछ भक्तों ने मेरी अनुमति के बिना ही, यह घोषित कर दिया कि मैं यहां से उनके

स्थानों पर जाऊंगा तथा उन्होंने जुलूस एवं सभा की व्यवस्थायें की हैं। तुम लोगों ने यहां पर स्वयं देखा कि यहां पर नगरपालिका ने किस प्रकार इस पण्डाल में मुझे अभिनन्दन पत्र समर्पित किया। इस कार्यक्रम के विषय में मुझसे पहले परामर्श नहीं किया गया और न मैंने सहमति प्रदान की थी। सहस्रों व्यक्ति म्युनिसिपल हाल में एकत्रित हुए थे। इस नगर एवं बंगलौर के मध्य सलेम एवं अन्य अनेक स्थानों पर, लोगों ने ऐसे समारोहों को संगठित किया है। जब मैं बचन देता हूं, तो उसका अवश्य पालन करता हूं। यही कारण है कि मैंने तिरुपति से ११ बजे दिन प्रस्थान किया तथा मोटर से सारा मार्ग १० बजे रात तक तय किया है। मैं जानता था कि ए. के. सी. ने यहां पर घोषित किया था कि मैं १०-३० बजे रात तक पहुंचूंगा। इसलिये, मैं लगभग एक घंटे तक सड़क पर रुका रहा, ताकि उनका अनुमान सत्य सिद्ध हो सके। ए. के. सी. को विस्मय हो रहा था कि मैं ठीक १०-३० बजे कैसे आ गया, जैसा, उन्होंने कुछ घंटा पूर्व ध्वनिविस्तारक पर घोषित किया था। कदाचित् वह भूल गये थे कि मैं उनकी घोषणा को अनेक मील की दूरी से सुन सकता हूं। क्या मैं पूछूं कि, उन्हें यह करने के लिये किसने प्रेरित किया ?

जब मैं कहता हूं कि मैं आ रहा हूं, तो मैं अवश्य आता हूँ; किन्तु ये अति उत्साही भक्त, सलेम तथा अन्य स्थानों पर, सहस्रों भक्तों को अत्यन्त कष्ट प्रदान कर रहे हैं, जिन्हें वे गलत ले जाते हैं। कृपया, अब से ऐसी अफवाहों से कि मैं अपनी यात्रा के पथ में इस स्थान से या उस स्थान से इस स्थल या उस स्थल पर आ रहा हूं। ऐसे प्रत्येक समाचार की प्रामाणिकता की जांच कीजिये, विश्वास करने के पूर्व।

३४ ब्रह्मानन्द लिंग

(प्रशान्ति निलयम, शिवरात्रि दिनाँक ११-२-६४)

उमामहेश्वर शास्त्री एवं वीरभद्र शास्त्री, दोनों भगवत-तत्व पर अपनी समझ-शक्ति एवं भाषा की अभिव्यक्ति-शक्ति के अनुरूप व्याख्यान दिया; क्योंकि यह विषय अभिव्यक्ति एवं व्याख्या के परे है। इसकी अनुभूति करनी होती है। एक बार अनुभूति होने पर, अनुभूति की समृद्धता, सम्पूर्णता, विस्तार एवं गहनता दूसरों तक कभी प्रेष्य नहीं की जा सकती है। मनुष्य को अवश्य विचार करना चाहिए कि उसका उच्चतम लक्ष्य उस अनुभूति की प्राप्ति है। वह कोई निकृष्ट प्राणी नहीं है, जो कीचड़ या पाप में जन्म लिया हो, अपने मलिन अस्तित्व को बढ़ाने के लिये तथा सदैव के लिए समाप्त हो जाने के लिए। वह तो अमर्त्य है; वह शाश्वत है। इसलिए अमर्त्य से पुकार आने पर, वह अपने पूर्णहृदय से उत्तर देता है। वह मरेगा— इस पर विश्वास करने से अस्वीकार करता है। वह मृत्यु का उपहास करता है तथा उसको एक अहानिकर आकस्मिक आगन्तुक समझता है, क्योंकि, उसमें कोई ऐसी शक्ति होती है जो मृत्यु को चुनौती देती है। वह देह एवं देव का, मर्त्य एवं अमर्त्य का संमिश्रण है। यदि मुक्ति का तात्पर्य शोक का अन्त एवं आनन्द की प्राप्यता है, तो यह सरल है। भगवान् पर सब भार सौंप देना ही तुम्हारा कर्म है। वह तुमको चितामुक्त एवं शोक-मुक्त बना देता है। जब तुम सब कामों को अपने प्यारे परमात्मा की लीला मानते हो, तब तुम आनन्द में अपने हाथों से तालियाँ बजाते हो, चाहे जो भी घटना घटित हो, क्योंकि, यह सब उसकी लीला है तथा तुम उतने सुखी होते हो, जितना वह आनन्दित होता है, अपनी योजनाओं के सीधे चलने पर।

"ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति ।"—"हे अर्जुन ! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में विराजता है ।" —भगवान् कहते हैं । वह, विशेषतः अमरनाथ, काशी, तिरुपति, केदारनाथ या गोकर्णनाथ में नहीं रहता है । जैसे, महासागर के हर कण में स्वाद है, महासागर की रचना एवं नाम है; उसी प्रकार हर एक प्राणी में ईश्वरीय स्वाद, बनावट एवं भगवान् का नाम है । तुम केवल उतने स्पष्ट रूप से उसको अनुभव नहीं करते हो । समुद्र पहुंच कर गोदावरी स्वयं उसका अनुभव करती है । मनुष्य सर्वशक्तिमान में विलीन होकर स्वयं अनुभव करता है । "लीयते गम्यम् इति लिङ्गम् ।" —जो लक्ष्य में विलीन हो जाता है, वह लिङ्गम् है ।

एक घड़े में सीमित आकाश, उपाधि का निषेध करने से, जो भ्रान्तिपूर्ण मन की एक कृत्रिम रचना मात्र है, समस्त ब्रह्माण्ड घूमने वाले आकाश के साथ एक हो जाता है । उपाधि-मोह अवश्य विलुप्त होना चाहिए । मनुष्य का तुच्छतर स्तर जो इस समय सन्तुष्टि प्रदान करता है, उसे असली स्तर वाले माधव तत्व के स्तर के सामने पराजित होना ही पड़ेगा । यही वह कर्म है जिसके लिये साई तुम्हें पुकार रहे हैं; यही वह कर्म है जिसके लिए मैं अवतरित हुआ हूं ।

सर्वोच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश अपने घर पर अपने पोतों के साथ खेलते समय अपने चारों हाथ-पैर पर झुक जाता है ताकि वह उसकी पीठ पर चढ़ सकें और जब वह रेंगता हुआ चले, तो वह "हल्लो" पुकारें । किन्तु, उस समय भी उसके न्यायमूर्ति के स्तर में कोई कमी नहीं होती है तथा न उस स्तर को वह भूलता ही है। उसी प्रकार, तुम्हें उस उच्च धन्धे की चेतना सदैव अवश्य रखनी है, जिसके लिए तुम पैदा हुए हो । तुम्हें किसी नीच या निरर्थक कार्य या शब्द या विचार द्वारा उसे अपमानित नहीं करना चाहिये । मैं तुम्हारे पास तुम्हें उत्साहित करने के लिए आया हूं कि तुम स्वयं

को परार्थतत्व समझो; वस्तुतः तुम वही हो तथा वास्तविकता को ग्रहण करने के लिए तुम्हें 'घी शक्ति' प्रदान करने आया हूं। अज्ञानजन्य भ्रान्ति को केवल वही विध्वंस कर सकती है।

एक-एक कदम करके हम लोग सड़क के अन्त पर पहुंच जाते हैं। एक कार्य के पश्चात् दूसरा कार्य अच्छी आदत पैदा करता है। सुनते-सुनते तुम काम में लग जाते हो। काम करने की प्रतिज्ञा करो, केवल सत्संग में बैठने की प्रतिज्ञा करो, केवल उन्नायक पुस्तकों को पढ़ने की प्रतिज्ञा करो, नामस्मरण की आदत डालने की प्रतिज्ञा करो, तब अज्ञान स्वतः अदृश्य हो जायेगा। तब तुम्हारे भीतर आनन्द स्वरूप के ध्यान द्वारा आनन्द उमड़ेगा और सभी चिन्ताओं एवं शोक को भगा देगा।

त्रिपुर असुर—तीन शरीर धारी—स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण—असुर को शिव ने जब वध करना शुरू किया, तब उसके लिए एक रथ प्रदान किया गया। शिव, उस रथ की ओर अच्छी तरह देखकर, ऐसा प्रतीत होता है, हंस पड़े। रथ का सारथी अधिकांश योगनिद्रा में था, स्थिर पृथ्वी ही रथ थी तथा दो चक्र सूर्य एवं चन्द्र थे, ये दो गोले कभी एक साथ नहीं घूमते हैं। उस हंसी ने असुरों को नीचा दिखा दिया। असुरों के विरुद्ध कोई कदम उठाने की आवश्यकता नहीं थी। उन त्रयदेही में बसने वाली दुष्ट शक्तियाँ कैसे नष्ट हुयीं? वे उस स्थान पर नहीं टिक सकीं, जहाँ आनन्द था, क्योंकि वे दुःख की उपज थीं। आनन्द के भाव का विकास करो, दुष्ट संवेग एवं प्रवृत्तियाँ अदृश्य हो जायेंगी, क्योंकि हृदय में वे अपना पैर नहीं जमा सकेंगी।

प्रकाश की ओर, जब आगे बढ़ते हो, तब छाया पीछे गिरती है। तुम इससे दूर जाते हो तथा अपनी ही छाया का अनुगमन करते हो। प्रति क्षण, भगवान् के निकट एक-एक कदम चलो, तब माया रूपी छाया पीछे गिर

पड़ेगी तथा तुमको बिल्कुल नहीं छलेगी। दृढ़ बनो; संकल्प रखो। कोई त्रुटि न करो या मिथ्या कदम नहीं उठाओ तथा तदनन्तर, पश्चाताप करो। पहले **तप** धारण करो (विचार, निर्णय, संयम) '**पश्चात-तप**' करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठतर है। अर्जुन में 'तप' था। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व भी उसने परिणाम को देख लिया था और चाहता था कि कृष्ण उसे परामर्श दें कि क्या किया जाय। किन्तु, धर्मराज, ज्येष्ठ भ्राता में पश्चात्ताप था, युद्धोपरान्त दुःख—युद्ध में जो हानि हुई उसके लिए (उनके मन में) दुःख एवं शोक हुआ।

सर्वोपरि, तुम केवल गंभीर विचार करके एवं स्वयं को संतुष्ट करके कि वह तुम्हारी भलाई के लिये होगा, तभी साधना या संसार में प्रत्येक कदम उठाओ। अन्यथा, वह विलपती हुई नगरी की कथा के समान होगा। एक दिन, महारानी की एक घनिष्ट परिचारिका (दासी) राजमहल में अत्यन्त दुःख से रोती हुई आयी। इसलिए, महारानी भी रोने लगीं। महारानी को रोते देखकर समस्त जनानखाना रोने लगा तथा मर्दाने सेवकों में भी रुदन मच गया। महारानी को सान्त्वनातीत दुख में देखकर, महाराजाधिराज भी सहानुभूति में विलपने लगे। इस दृश्य को देखकर समस्त नगरी अविराम विलाप करने लगी।

अन्त में, एक विचारवान व्यक्ति ने जाँच करना शुरू किया। एक-एक व्यक्ति से पूछ-ताछ शुरू हुई और महारानी को स्वयं भी पूछा गया। उनकी सेविका अतिशय दुख में थी और जब वह सेविका, जो जाति की धोबिन थी, से पूछा गया, तब उसने स्वीकार किया कि इसका कारण था उसके प्रिय गदहे की अकस्मात् मृत्यु ! जब यह समाचार प्रसारित हुआ तब, विलपना बन्द हुआ तथा सर्वत्र हंसी एवं लज्जा व्याप्त हो गई। **तर्क करो, विवेचन करो, निष्कर्ष पर नहीं टूटो या दूसरों से सुनी बातों से प्रभावित नहीं बनो।**

मैं तुम लोगों को सुधारने आया हूँ। जब तक मैं यह नहीं कर लूंगा,

तब तक मैं तुम लोगों को नहीं छोड़ूंगा। ऐसा करने के पूर्व ही, यदि तुम निकल जाते हो, तिसपर भी यह नहीं सोचो कि तुम मुझसे बच पाओगे। मैं तुमको पकड़ रखूंगा। तुम मुझे भले ही त्याग दो, मुझे कोई चिन्ता इसकी नहीं है, क्योंकि मैं इसका इच्छुक नहीं हूं कि मेरे चारों ओर यहां पर भीड़-भाड़ रहा करे। तुम लोगों को किसने बुलाया। एक छोटी सी नोटिस भी नहीं मुद्रित हुई थी; किन्तु सहस्रों की संख्या में तुम लोग यहां आये हो। तुम स्वयं मुझसे सम्बद्ध होते हो। मैं असम्बद्ध हूं। मैं तो केवल उस कर्म से सम्बद्ध हूँ जिसके निमित्त मैं अवतीर्ण हुआ हूँ।

किन्तु एक बात का भरोसा रखो। चाहे तुम लोग **मेरे पास** आओ या नहीं, तुम सब **मेरे हो।** यह **शिवमाता**, यह साइ माता अपनी सन्तानों के लिये सहस्रों माताओं का वात्सल्य प्रेम लिये है। यही कारण है कि मैं इतना अधिक लालन एवं पालन करता हूं। जब कभी मैं क्रुद्ध दिखाई देता हूँ, तब, स्मरण रखो, यह केवल वात्सल्य ही दूसरे रूप में है, क्योंकि, मुझमें क्रोध का एक अणु भी नहीं है। मैं तो केवल अपनी निराशा व्यक्त करता हूँ कि जैसा मैं निर्देश देता हूं वैसा तुम अपने को नहीं बनाते हो। जब मैं तुमको किसी कार्य के लिये निर्देश देता हूँ, **मेरे परामर्श** पर विचार करो। तुम्हें ऐसा करने का पूर्ण स्वातन्त्र्य है। वस्तुतः, मैं सुखी होऊंगा यदि तुम ऐसा करने लगो। मैं दासों के आज्ञा पालन की प्रवृत्ति को पसन्द नहीं करता हूं। यदि, तुम समझते हो कि यह तुम्हें लक्ष्य तक पहुंचने में मदद करेगी, तो इसका पालन करो; यदि नहीं, तो तुम अन्यत्र चले जाओ किन्तु, मैं तुमसे एक बात कहूं : **जहां कहीं भी तुम जाओगे, तुम मुझसे ही मिलोगे। मैं हर जगह हूं।**

क्या तुमने उस खरगोश की कहानी सुनी है जिसने पृथ्वी माता से चार पैसे उधार मांगे थे। वह सोचो कि यदि किसी दूसरे प्रदेश में चली जायेगी, तो उस दायित्व से वह मुक्त हो जायेगी। इसलिये, एक दिन वह इतनी तेज

दौड़ी जितना उसके पैर दौड़ सकते थे तथा उस स्थान से बहुत दूर चली गई। अन्ततः वह बहुत विश्रान्तिपूर्वक बैठी तथा अपने मन में कहने लगी, "अब मुझे (कर्ज) भुगताने के लिये कोई नहीं कहेगा।" जब, अपने नीचे की धरती से उसने एक आवाज सुनी तो उसे बड़ा विस्मय हुआ, "यहां पर पृथ्वीमाता तुम्हारे पैरों के ठीक नीचे है। तुम मुझसे बचकर नहीं भाग सकती; चाहे जितनी भी दूर तुम भाग निकलो।"

उसी प्रकार, तुम भी मुझसे दूर नहीं भाग सकते हो। जहां कहीं भी तुम शरण ढूंढ़ते हुए जाओ, मैं तुमसे सदाचरण, उत्तम आदत, सद्विचार, सत्संगति की मांग करूंगा। त्यागने का तुम्हारे पास क्या कारण है? केवल वे ही (त्याग करते हैं); जो यहां पर प्राप्त आनन्द, सान्त्वना, साहस, प्रेम, आशीष की अवहेलना करते हैं तथा केवल वे लोग जो कान पर विश्वास करते हैं, आंख पर नहीं, वही ऐसा करते हैं। अल्प समय में ही, अन्तर में रचित लिङ्ग की उत्पत्ति देखोगे। लिङ्गोद्भव मुहूर्त्त निकट आ रहा है। तुम उसको देखते एवं आशीष प्राप्त करते हो। तिस पर भी, तुममें कुछ लोग ऐसे होंगे जो उस पर संशय करेंगे तथा उसे अस्वीकृत करेंगे। वह **कर्म** ही है ऐसे लोगों का। वे क्या कर ही सकते हैं? (यहीं पर बाबा ने सम्भाषण बन्द कर दिया। सर्व प्रथम, उदर में क्रिया जारी हुई, तब वक्षस्थल में, एवं कंठ में। बाबा एक ओर से दूसरी ओर झूमने लगे। पुनः टेबुल पर झुक गये; कुछ पानी पिया तथा अन्ततः लगभग बीस मिनट के पश्चात् एक अण्डाकार गुलाबी **लिङ्ग** उनके मुख से निकला। अपने दांयें हाथ के अंगूठे एवं मध्यमा से उसको पकड़कर बाबा उसके विषय में आगे सम्भाषण करने लगे]......

अहा! यह ब्रह्मानन्द लिङ्ग है। इसके भीतर नवग्रह चक्कर कर रहे हैं। इसके भीतर समस्त प्रपंच, समस्त ग्रह एवं उनके उपग्रह, आदि तेज एवं आदि धूल के बादलों का प्रतिनिधित्व है। इस अण्ड के ऊपर एक नेत्र मुद्रित है—'जगदेकचक्षु'—एक शाश्वत साक्षी का नेत्र है।

तुम लोग सचमुच बड़े पुण्यात्मा हो कि अनेक जन्मों के पुण्यों ने तुमको इस **महान आश्चर्य**—इस अमूल्य **सृष्टि** को देखने के लिये यहां लाया है। अनेक वर्षों की पूजा, या कर्मकाण्डी संकल्प एवं व्रत उस अनुपम अवसर को नहीं प्रदान कर सकते हैं जो तुमको अभी प्राप्त हुआ है। इसे स्मरण रखो। सद्दैवी परामर्श सुनने के लिये, उत्तम सत्संगति चुनने के लिये, तथा **लक्ष्य** तक पहुंचने के लिये अधिक सच्चाई से प्रयत्न करने के लिये इस उत्तम भाग्य को काम में लाओ।

३५ मणि-मण्डप

(स्थान—प्रशान्ति निलयम, दिनांक १२-२-६४)

कुप्पा वैरागी शास्त्री एवं मैसूर के श्राउदी ने ग्राप लोगों को वेदान्त एव वेद, दोनों के सुनने का ग्रानन्द प्रदान किया, जब कि वीरभद्र शास्त्री ने कृष्ण के झूलोत्सव के विषय को चुना था, जिसका प्रत्यक्ष कारण यह है कि ग्राज बंगलौर के भक्तों ने, विशेषत: फूलमालियों एवं प्रसाधकों ने, जो मुझसे विगत बीस वर्षों से सम्बद्ध है, इस झूले में कुछ समय तक मुझे बैठने का ग्राग्रह किया है, जिसको उन लोगों ने बड़ी सतर्कता एवं भक्ति से निर्मित किया है। मैं केवल ग्रल्पकाल तक बोलूंगा, क्योंकि उसके पश्चात् हरिकथा है। ग्राप लोग, जैसा मैंने प्राय: कहा है, यहाँ पर जो कोई भी ग्रापको सम्बोधित करे उसको सम्मानपूर्वक ध्यान से सुनना सीखें, क्योंकि वे लोग ग्राप से बड़ी चर्चा करते हैं, जो ग्राप को ऊपर उठा सके तथा ग्रापकी साधना को दृढ़ बना सके।

इन सब शास्त्रों, भागवत, पुराणों, इन सम्भाषणों तथा हरिकथा का क्या ठीक-ठीक उद्देश्य है! इस प्रश्न का उत्तर देने की तनिक चेष्टा कीजिये। मनुष्य को उसके विषय में सत्यता बताने के लिये ये हैं। तुमको पथभ्रष्ट करने का कोई षड्यन्त्र नहीं है। इन कथाओं एवं ग्रपने ग्रनुभवों के लेखकों, ऋषियों की कभी ऐसी इच्छा नहीं थी। अपनी ग्रांखों के सामने घटित होने वाले वर्तमान मात्र को तुम लोग जानते हो। तुम लोग यह नहीं जानते हो कि वर्तमान अतीत से जुड़ा हुआ है तथा भविष्य के पथ को बना रहा है। परदे पर पड़ने वाले फिल्मी शीर्षकों एवं उपाधियों के समान है। जैसे जैसे ग्रक्षर एक एक करके चमकते हैं, वैसे तुम उनको पढ़ते जाते हो

तथा दृष्टि में आने वाले आगामी अक्षर की ओर चलते हो। हर एक नया अक्षर या शब्द तुम्हारी आंखों के सामने के पहले वाले को ठीक वैसे ही साफ करता जाता है, जैसे प्रत्येक जन्म पूर्व जन्म की स्मृतियों को मिटाता है।

मनुष्य यह नहीं समझता है कि जन्म-मृत्यु का यह चक्र उसी के हाथों में है। काल के प्रारम्भ से ही, बीज से वृक्ष उत्पन्न हुआ तथा बृक्ष से बीज होता चला आ रहा है। हाँ, तुम यह नहीं जान सकते हो कि कौन पहले आया वृक्ष या बीज; किन्तु, **बीज को भून करके तुम चक्र को सरलतापूर्वक समाप्त कर सकते हो। फिर यह अंकुरित नहीं होगा।**

असाधारण होते हुए भी मानव अब, साधारण से भी निम्नतर स्तरों पर उतरता जा रहा है। जिस नदी को बहते हुए सागर से अवश्य मिलना था, वह एक दलदली झील में विलीन हो रही है। मरुस्थल के मृगों की भाँति वह अपनी प्यास बुझाने के लिये मृग तृष्णा की ओर दौड़ रहा है। वह अपनी इन्द्रियों एवं समस्त निम्न वासनाओं पर स्वामित्व प्राप्त करने का दावा करता है; किन्तु प्रथम अवसर पर ही वे अंकुरित हो जाती है, जैसे ग्रीष्म के उपरान्त पहली वर्षा के पश्चात् तिनके उग जाते हैं।

यथा, तुम दुधारी गाय के थन को दूध के लिये खोजते हो, उसी प्रकार, परमात्मा को एवं उनके ऐश्वर्य को केवल प्रकृति में ढूंढ़ो। वस्तुतः, प्रकृति केवल तभी उपयोगी है जब उस विस्मय एवं भय को बढ़ाती रहती है जिसे यह उभारने एवं जीवित रखने में सक्षम है। हर वस्तु परमेश्वर की प्रतिमा है। कृष्ण अपने बाल्यकाल में अपने महल के मणि-मण्डप में अपनी ही प्रतिमा देखने में वैसे ही आनन्दित हुआ करते थे, यथा परमात्मा, अपनी ही रचना, प्रकृति में स्वयं को देखकर प्रसन्न होता है। यही कारण है कि सब लोगों के हृदय में ऐसा आनन्द उमड़ रहा है भगवान् की कथा को सुनकर तथा जिस प्रकार वे सबको स्वयं अपने पास बुलाते हैं। यह प्रतिबिम्ब के

लिये बिम्ब की प्रकार है उस में ही लय होने के लिये। इसलिये, सभा लय होने के अधिकारी हैं। अन्ततोगत्वा सबको उसे प्राप्त करना ही है। अन्यथा, महान से महान बनने की अकांक्षा का कोई महत्व ही नहीं है।

तुम मेरे ही रहस्य के विषय में मुझे बोलने के लिये कह सकते हो। (किन्तु) इसको समझना सरल नहीं है। जब तुमको एक अवसर प्राप्त है, तुम जितना आनन्द संचित कर सको, उतना संचित कर लो। चोरों के लूटने व भाग जाने के पश्चात् दरवाजों की शृंखला लगाने से कोई लाभ नहीं है। **अवसर को घेरो तथा कालान्तर में अवसर खोने के लिये पश्चाताप नहीं करो। स्मरण रखो; मेरे पास तुमको आना ही है, यदि इस जन्म में नहीं, तो कम से कम और दस जन्मों के भीतर ही। अनुग्रह प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करो। साधना के लिये अनुग्रह एक पुरस्कार है। स्वामी के आदेशों का पालन करना ही उच्चतम साधना है।**

अनेक वर्षों की कठोर ट्रेनिङ्ग के उपरान्त एक व्यक्ति सैनिक बनता है जो युद्ध की सभी कठिनाइयों को झेल सकता है। कोई शूरवीर योद्धा एक दिन में नहीं बनता है। उसी प्रकार विजयी साधक एक दिन में नहीं बनता है। नियंत्रण, संयम, ड्रिल (अभ्यास) एवं विधियां उसके लिये भी बनायी गई हैं। सच्चाई-पूर्वक एवं दृढ़तापूर्वक उनका पालन करो। विजय तुम्हारी है।

३६ काशी एवं बद्री

(प्रशान्ति निलयम, दिनाँक ३-२-६४)

जीवन केवल सापेक्षतः सत्य है। मृत्यु के अपने तक, यह सत्य प्रतीत होता है। यही सब कुछ है। दुल्हन एवं वर की बारात के लिये दुल्हन का पिता हाथी का एक नमूना लाया था जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म अग प्रत्यंग रचना में सही था। जितने लोगों ने उस नमूने को देखा सभी ने उसे सजीव माना। तदनन्तर, जब सब लोग कला के आश्चर्यजनक कार्य की प्रशंसा कर रहे थे तथा तर्क कर रहे थे कि यह बड़ा ही सजीव है, यह फट गया। उसमें से सुन्दर छोटे-छोटे तारे एवं प्रकाश में सर्प निकलने लगे और वे आकाश में चमकने लगे। यह आतिशबाजी की सामग्रियों से भरा हुआ था और जब इसे जलाया गया तो भीतर भरा हुआ समस्त ढेर जोर की आवाज के धड़ाके, रोशनी एवं रंग के चमकीले प्रकाश के सहित बाहर निकल आई। मनुष्य उसी हाथी की भाँति सत्य है, जब तक धड़ाका नहीं होता।

उस धड़ाके के घटित होने के पूर्व ही, मनुष्य को आत्मानुभूति अवश्य कर लेनी चाहिए। काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर एवं लोभादि आतिशबाजी है और अब वे इस कृत्रिम पशु में भरे हैं। वे केवल प्रदर्शन के हेतु उपयोगी हैं। मनुष्य ऐसी आपत्ति से वेदान्त द्वारा ही बचता है। वेदान्त सिंहगर्जना के सदृश है। यह उत्साह एवं साहस प्रदान करता है यह मनुष्य को बहादुर बनाता है। कायरता को दूर भगाता है तथा उच्चतम कोटि का आत्मविश्वास पैदा करता है, नियति के बाणों के विरुद्ध यह सबसे मजबूत कवच है। इन्द्रियसुख की हिमवर्षा से बचने के लिये यह 'वाटर-प्रूफ' के समान है। यह चिन्ता के मच्छरों को बाहर रखने वाली मच्छरदानी है, जिसके न होने

पर वे तुम्हारी निद्रा छीन लेते हैं। वेदान्तसिक्त हृदय सहित तुम समुद्र-तट की चट्टान हो, जो प्रलोभनों की तरंगों से अप्रभावित है। वेदान्त तुम्हारी साहस की भावना, जो तुम्हारी यथार्थता है, की चुनौती देता है। साधना की रेलगाड़ी में प्रवेश करो; एक-एक स्टेशन करके तुम जंकशन पर पहुंचोगे, जो तुम्हारा एवं इन सबका ज्ञान है। पेनुकोण्डा जाओ तथा बंगलौर का एक टिकिट लो एवं ट्रेन में बैठ जाओ। बीच में जब कोई स्टेशन तुम्हें लुभाये, तो भी मत उतरना। स्टेशन-कर्म, उपासनादि हैं। उनसे होकर तुम्हें जाना है; किन्तु स्मरण रखो कि वे जंकशन नहीं हैं। जंकशन ज्ञान है।

इस समय, मनुष्य भ्रम के भूत द्वारा अधिकृत है। वह ऐसी भाषा बोलता है जो अशोभनीय है तथा वह पशुवत् व्यवहार करता है। वह इधर-उधर कुटिल तरीके से घूमता है, ऊपर एवं नीचे चढ़ता-उतरता है। मैं भूत झाड़ने के लिये आया हूँ तथा मेरे कार्य का यह एक अंग है। इस भ्रम ने बहुत हानि पहुँचाई है कि भूत चढ़ा व्यक्ति चतुर है, उदाहरणार्थ, पण्डित लोग यह तर्क करने में बहुत सा समय नष्ट कर देते हैं कि कृष्ण से राम श्रेष्ठतर है या राम से कृष्ण श्रेष्ठतर है; किन्तु वास्तविकता यह है कि उनमें से प्रत्येक ईश्वरत्व के एक निश्चित रूप को व्यक्त करता है। तुलना स्वयं जिज्ञासु की सच्चाई को कम करती है। यदि उसमें तनिक भी श्रद्धा है, तो बौद्धिक मूल्यांकन करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। उसे रामकृष्ण परमहंस की भाँति आन्तरिक अनुभूति करनी चाहिये। तब समझेगा कि एक उतना ही मधुर है, जितना दूसरा। त्यागराज ने इसका अन्वेषण किया था; क्योंकि वे एक रहस्यवादी थे, जिसने तर्क करने के बजाय अनुभव किया था। वे गाते थे कि राम दो ध्वनियों से बना है —ना-रा-यण से रा एवं नमः—शि-वा-य से म एवं राम वैष्णव धर्म एवं शैवधर्म का मधुर सम्मिलन हैं। एकता या समन्वय किसी भी धार्मिक दृष्टिकोण की कसौटी। यदि यह घृणा, गुटबन्दी, या अभिमान का पोषण करता है तो वह दृष्टिकोण निश्चय रूपेण बुरा है। ऐसे दृष्टिकोण से दूर रहो, यदि तुमको अपनी साधना में अभिरुचि है।

मैं विद्वत्ता या पाण्डित्य से आकृष्ट नहीं होता हूं ; क्योंकि यह अहंकार एवं अभिमान के सिवाय और कहीं नहीं ले जाता है । **मैं केवल भक्ति से आकृष्ट होता हूँ । तुम्हारे जो भी कष्ट या दुःख हैं, उन्हें मेरे पास लाओ उन्हें मैं अपने ऊपर ले लूंगा और तुम्हें आनन्द प्रदान करूंगा । मैं, जब अपने भक्तों को चाहता हूं, तो उनके दोषों को भी चाहता हूं** ; यद्यपि यहाँ पर कुछ लोग अपनी नाकें सिकोड़ते हैं तथा यहाँ अनेक प्रान्तों से आने वालों की विचित्र मूर्खता एवं दोषों पर हंसते हैं । मैं उस प्रेम (भक्ति) से आकृष्ट होता हूँ, जो तुम्हें अनेक कठिनाइयों से पूर्ण सुदूर स्थानों से यहां लाता है तथा जो तुम्हारे अभ्यस्त सुखों के अभाव में भी तुमको यहाँ सुखी बनाता है तथा जो तुम्हें पेड़ों के नीचे या खुले पड़ावों में जीवन बिताने के लिये विवश करता है । मैं जानता हूँ कि तुम गाँव में पुराने मन्दिर पर नहीं जाते हो; क्योंकि, जैसा तुम कहते हो, जब मैं इस भवन के एक ओर से दूसरी ओर जाता हूं, तब तुम वहाँ से मुझको नहीं देख सकते हो । मैं यहाँ तीन घंटों से हूं और तब से तुम दर्शन कर रहे हो; किन्तु ज्योंही मैं अपने कक्ष में जाता हूं, त्योंही तुम लोग दूसरे दर्शन के लिये, जब मैं बरामंदे में आता हूँ, दौड़ पड़ते हो ! **दर्शन की इस आकांक्षा की अपेक्षा भक्ति का कौन सा महत्तर लक्षण हैं ?**

किन्तु, यह भक्ति मात्र ही पर्याप्त नहीं है । वस्तुतः इससे बहुत प्रयोजन नहीं सिद्ध होता है । आवश्यकता है सद्‌गुण एवं सेवा के रूप में उस प्रेम को नियमित बनाने की । यदि तुम इसे सिद्ध कर लेते हो तो इस युग में तुम्हारे बराबर कोई नहीं हैं ।

जैसा बीज, वैसा अंकुर; जैसा स्तर वैसा व्यवहार; जैसा गुरु वैसा शिष्य; जैसा पैर वैसा जूता । यहां पर, वैराग्य एवं प्रेम वातावरण बनाने वाले हैं तथा मौन अनुशासन है । **दूसरों की आलोचना मत करो अपनी ही आलोचना**

करो। अपनी जीभ पर भगवान् का नाम रखो और अपनी आंखों के सामने भगवान् का रूप। यदि तुम स्वयं को इस प्रकार बनाते हो तो तुम्हारे खड़े होने का स्थल काशी बन जाएगा तथा जिस घर में तुम रहते हो वह बद्री बन जायेगा। अपने हृदय को निर्मल करने के लिये तुम्हारे सब कर्म हों। तुम्हारे प्रयत्नों में तुम्हारे पास मेरा आशीष है।

३७ प्रकाश-स्तम्भ

(प्रकाश की मीनार)

(पेनुकोंडा, विजय नगर राज्य के कृष्णदिवरैय्या के राज्य तिलक की रजतजयन्ती, दिनांक १७-२-६४)

मुझे हर्ष होता है कि मैं कलाकारों, कवियों एवं साहित्यकारों तथा कला की उन्नति में अभिरुचि रखने वाले व्यक्तियों की मण्डली से सम्भाषण कर रहा हूं। आप लोग यहां विजय नगर साम्राज्य के कृष्ण देवरैया के राज्य-तिलक की स्मृति में यहां पर एकत्र हुए हैं। उन्होंने काव्य, नाटक, शिल्पकला, चित्रकारी, संगीत, नृत्य एवं साहित्य का संरक्षण किया तथा इन माध्यमों के द्वारा हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान किया।

भारतीय संस्कृति का उदय युगातीत वेदों से हुआ है। कुछ समय तक वह जीवन एवं विचारों के पाश्चात्य मानदण्डों के प्रभाव से पराभूत रहा; क्योंकि जब पाश्चात्य इस देश पर शासन कर रहे थे तब उन्हें कृत्रिम सहायता प्राप्त होती थी। अब, उसका पुनः शोध करना है तथा पुनर्स्थापना करनी है, मुख्यतः भारत-वासियों की दुर्बलता के निवारण द्वारा। यहां के लोग सनातन धर्म के असाधारण शक्तिशाली संदेश को अंगीकार करने के लिये इतने दुर्बल हैं कि उसे अंगीकार नहीं कर सकते हैं!

किसी एक आदमी को हम व्यक्ति कहते हैं। क्या आप इसका कारण जानते हैं? **क्योंकि हम उससे आशा करते हैं कि वह अपनी दिव्यता को व्यक्त—प्रकट कर सकेगा! "ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति"—**

"हे अर्जुन ! सभी प्राणियों के हृदय में ईश्वर निवास करता है।" हे अर्जुन, यह प्रदर्शित करो कि यह सत्य है, उसको अपने हृदय में अनुभव करो, उसको प्रकट होने दो, व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है।

विजय नगर के राजाओं में धार्मिकता, साहस, देशभक्ति, धर्मप्रेम, उदारता, दूरदर्शिता, एवं राजनीतिज्ञता थी। उन लोगों ने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया; जीर्णशीर्ण मन्दिरों का उद्धार कराया, तथा अनेक तालाबों एवं नगरों का भी निर्माण कराया। उनको स्मरण करना एव उनके कृत्यों के लिये कृतज्ञ होना अच्छी बात है। किन्तु, एक त्रुटि है जिसे तुम नहीं करना; अतीत के विचार मात्र से सन्तोष न करो। जिस पथ को तुमने पार कर लिया है, उसे मापने से क्या लाभ है ? अतीत को सफलतायें वर्तमान की सफलताओं का क्यों दमन करें ? तुम लोग प्रश्न करते हो, "क्या आज, हम लोग उसी प्रकार नक्काशी कर सकते हैं या भवन बना सकते हैं या चित्रकारी कर सकते हैं या गीत गा सकते हैं जैसे विजयनगर के राज्य में होता था। यह दुर्बलता का एक लक्षण है, भयत्रस्त होने का लक्षण है।

एक बार एक संन्यासी की भेंट हैजा की देवी से पथ पर हुई जब वह गांव की आबादी को कम करके वापस आ रही थी। उसने देवी से पूछा कि अपनी गोद में उसने कितने मनुष्यों को लिया है। "केवल दस।", उसने उत्तर दिया। किन्तु, सच कहा जाय तो सौ व्यक्ति मर गये थे। देवी ने समझाया, "मैंने केवल दस को मारा; किन्तु शेष भय के कारण मर गये !"

मनुष्य आत्मस्वरूप, अर्थात्, अभयस्वरूप है। यदि वह अपने सत्य स्वभाव को जाने, तो दुर्बलता या भय के लिये उसमें तनिक भी स्थान नहीं है। संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य यही है कि वह मानसिक शान्ति एवं मानसिक उत्साह उत्पन्न करे ताकि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से घनिष्टता अनुभव कर सके। "मैं कौन हूं"—"कोऽहं—अधरों पर इस प्रकार के साथ तुम जन्म

लेते हो, किन्तु संसार से कूच करते समय तुम्हारे हंसते वदन पर यह घोषणा अवश्य होनी चाहिये, "मैं वह हूं"—"सोऽहं" । यही वह सन्देश है जिसका कृष्ण देवरैया ने पोषण किया ; इस सभा से यही शिक्षा घर ले जाओ । इस समय, तुमलोग 'EYEयख देन सेते हो—यह तीन अक्षरों का एक यन्त्र है जो तीन गुणों का प्रतीक है—सत्व, रज एवं तम । निर्मल, द्वेषरहित अनासक्त 'मैं' से देखो, तब तुमको केवल एक ही दिखाई देगा । यद्यपि तुम स्वयं को देखते हो, किन्तु, वस्तुतः तुम वह हर वस्तु हो, जो स्वयं को 'मैं' रूप बताता है ।

इस एक मात्र लक्ष्य का परित्याग कर देने के कारण, यह सब अवलक्षण —गड़बड़ी पैदा हो गई है ! बेजवाड़ा के गोपाल रेड्डा ने अभी बताया है कि प्राचीन शास्त्रों एवं पवित्र ग्रन्थों में विशेष दक्षता प्राप्त करने वाले पण्डित हमारी संस्कृति के मानस-सरोवर है; किन्तु, आजकल, अत्यल्प व्यक्ति ऐसे मनुष्यों का सम्मान करते हैं । संस्कृति के उच्चतर पहलुओं की एक सामान्य उपेक्षा है । लोग फिल्मी स्टारों के वैयक्तिक जीवन के विस्तारों को जानते हैं तथा अधिकाधिक व्यक्ति ऐसी तुच्छ बातों में लीन होते जा रहे हैं । उसी पथ पर श्रमशील पण्डित की वे परवाह तक नहीं करते है । वे अपने ही नगर के कवियों एवं चित्रकारों का नाम तक नहीं जानते हैं । शिक्षित वर्ग की यह दु:खान्त कथा है । उन्हें मूल्यों का ज्ञान तक नहीं है ।

इस दिन, आप लोगों ने यहाँ पर पुट्टापर्ति के नारायणाचार जैसे साहित्यिक व्यक्ति को बुलाया । इसलिये, मैं अनुभव करता हूँ कि यह दिवस हर व्यक्ति के लिये 'आनन्दोदयम' का है; क्योंकि साहित्य आनन्द एवं शान्ति प्रदान करता है या प्रदान करना चाहिये । साहित्य एवं संस्कृति का उत्थान करने वाले शासकों का तुम सम्मान करते हो । इसलिये, तुम इसे अवश्य मानो कि आज भी उस परम्परा को चलाते रहना शासकों का एक उत्तर-दायित्व है । वे देशवासियों की क्षमता एवं बुद्धि को नैतिक कार्यों एवं सामाजिक एकता के कार्यक्रमों में अवश्य प्रवाहित करते रहें ।

मैं सनातन, सांघिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं—को तीन 'स'—को सवर्द प्रोत्साहित करता हूं। यदि ये समय द्वारा मान्य महान मूल्यों का पुनरुत्थाम करता है, अथवा भले समाज के विनष्ट ढांचे की पुनर्रचना करता है, अथवा किसी ह्रासोन्मुखी ललित कला को पुनः शक्ति प्रदान कर रहा है, तब आप **मेरे वरदानों** को महत्व दे सकते हैं। मैं लोगों को उस उपाधि को प्राप्त करने के लिये नहीं प्रेरित करता हूं जिसके लिये वे सहायता का अनुरोध करते हैं; किन्तु, मैं उन उपाधियों के लिये सदैव-प्रेरणा देता हूं जिनको उपनिषद् आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिये सर्वोच्च अलंकरण रूप में घोषित करते हैं, "अमृतस्य पुत्रः"—"अमरता की सन्तान।"

किसी व्यक्ति के यह घमण्ड करने से कि मेरे "बाबा" बड़े विद्वान थे क्या लाभ है? मनुष्य के लिये 'मनुज' शब्द एक शानदार प्राचीनता का अर्थ बताता है—स्वयं मनु से। तुम अपनी आन्तरिक ईश्वरता का घमन्ड करो, जो तुम्हारा महत्तम कोषागार है। यहां उपस्थित कवियों एवं लेखकों से मैं यह अवश्य कहना चाहता हूं: सरस्वती एक देवी है, ब्रह्मा की सहचरी है, आप सब उस देवी के उपासक है, जिसकी हर व्यक्ति पूजा करता है। वह विवेक एवं मुक्ति प्रदान करती है। उस देवी द्वारा प्रश्न सर्वोच्च वरदानों के प्रति सच्चे बनो। इन्द्रियों की लौकिक क्षुधा के लिये कुछ भोजन प्रदान करके तुम सन्तृप्त न बनो। सस्ती ख्याति हेतु तुम अपने आदर्शों को अवनत नहीं करो तथा जनसमूह की रुचि को गन्दी न बनाओ। लौकिक शृङ्गार के बदले, अलौकिक आत्मानन्द प्रदान करो। तुम प्रेम के प्रसारणार्थ, मनोवृत्तियों के प्रक्षालनार्थ, सहानभूति के विस्तारार्थ, मतभेदों के सहनार्थ, वैयक्तिक प्रयत्न के लिये सम्मानार्थ योगदान करो।

अतीत के वीरों के प्रति कृतज्ञता एव वर्तमान उद्धारकों के प्रति हर प्रकार से कृतज्ञता ज्ञापन करो। किन्तु, स्वयं को उत्साह से भरो, लक्ष्य तक पहुँचने के लिये सदविचारों, सत्कर्मों एवं सद् वचनों का सहारा लेकर। कल्लुरु सुब्बा राव ने अपने पच्चीस वर्षों के कृत संघर्ष की चर्चा की। उन्होंने

इस उत्सव को रायलसीमा के विभिन्न अंचलों में मनाने के लिये एवं इन जिलों के नामों को रायलसीमा में बदलने के लिये संघर्ष संचालित किया था 'दत्तमण्डल' प्रथम जिले के नाम के बदले रायलसीमा नाम देने के लिये। उनकी सहायता केवल शब्दों—'मातलु' से नहीं; अपितु रुपये की थैलियों—'मूतल' से अवश्य की जाये। इस प्रकार के उत्सवों को बारम्बार मानना चाहिये तथा मैं भी तुम लोग के साथ अधिक शीघ्रता से सम्मिलित हुआ करूंगा।

वस्तुतः, पुट्टापर्ति यहाँ से केवल १६ मील दूरी पर है। तिसपर भी, इस तरह मैं पेनुकोंडा केवल दो बार आया हूं—एक बार, जब कृष्णराव ने मुझको जिला व्यायाम प्रतियोगिता के सभापतित्व के लिये बुलाया था तथा अब, कृष्णदेवार्या मुझको लाया। मैं अपने आनन्द को सबके साथ बटाने के लिये प्रतीक्षा कर रहा हूं। इसलिये, मैं सोचता हूँ कि आप केवल मुझे आमन्त्रित करें और मैं आप के साथ हूँ। मैं जानता हूं कि आप लोग अभी तक मुझको नहीं समझ पाये हैं। तुम केवल मुझको एक दूरी से देखते हो। तुम्हारे नगर से होकर मेरे पास जाने वाले सहस्रों व्यक्तियों द्वारा देखो। यदि उनकी अवस्था एवं आनन्द का एक अल्पांश भी तुमको मिल जाए, जो तुम पर्याप्त पुरस्कृत हो जाओगे। मुझे चिन्ता है—यदि उस भावना के लिये चिन्ता ही नाम है, कि जब मनुष्य इस देश के सुदूरतम अंचलों से तथा विदेशों से भी लाभ उठा रहे हैं; तो पेनुकोंडा के निवासी मेरे आनन्द में हाथ बटाने से स्वयं को बंचित कर रहे हैं। पेनुकोंडा नगर को अपना नाम उस पहाड़ी से प्राप्त हुआ है जो चिरकाल तक चट्टानों की एक विशाल राशि बनी रही। तुम्हारे हृदय अवश्य 'कोंडा' गिरि शिखर बने तथा चोटी पर, अरुणागिरि की भांति, ज्ञान की ज्योति एक प्रकाश स्तम्भ की भांति चमके। अनुभव करना सीखो एवं सुखी बनो। नियन्त्रित करो, प्रवाहित करो एवं प्राप्त करो। मेरे में या परमात्मा में यदि तुम्हारा विश्वास नहीं है, तो इसकी रंच मात्र भी परवाह नहीं करो। तुम स्वयं में विश्वास करो—यही पर्याप्त है। तुम सचमुच कौन हो? तुममें से प्रत्येक ईश्वर है, चाहे तुम जानते हो या नहीं।

३८ धर्मक्षेत्र

(वेंकटगिरि:, १८-२-६४)

यह प्रशान्ति विद्वान महासभा के उद्घाटन की सभा है। इसकी स्थापना मूलभूत सत्यों, आस्थाओं एवं सनातन धर्म के अनुशासनों के ज्ञान एवं अभ्यास को समस्त मानव जाति में प्रसारित करने के हेतु की गई थी। अभी, राजा साहब ने अपने महान् हर्ष एवं सन्तोष को अभिव्यंजित किया कि पुनरुत्थान के चक्र को मेरे द्वारा इस स्थान से चालित किया जा रहा है, यद्यपि अनेक अन्य स्थानों ने इस गौरव का दावा किया है। गत वर्ष श्री रामनवमी दिवस के शुभावसर पर इस राजमुन्दरी में ही गोदावरी नदी के मध्यस्थित द्वीप की रेती पर मेरे चतुर्दिक् एकत्रित पंडितों से मैंने इस सभा के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को घोषित किया था। स्वभावत:, वहां के निवासी भक्त आशा कर रहे थे एवं इस आशा से स्वयं को सन्नद्ध कर रहे थे कि सभा के उद्घाटन की सभा उनके नगर में ही की जाये। निस्सन्देह, राजमुन्दरी वह स्थल है जो उस गौरव को धारण करने के लिये उपयुक्त है। अपने ऐतिहासिक अतीत एवं विशाल संख्या में इसके द्वारा पोषित आस्तिक संघों एवं संस्थानों सहित यह परम्परा के पालकों में उच्च स्थान रखता है। किन्तु, सभी उत्तम वस्तुओं एवं सभी सौभाग्यपूर्ण अवसरों के समान, यह अवसर भी, अत्यधिक प्रयत्नों से नहीं; वरञ्च, वर्षों, शताब्दियों एवं युगों से संचित पुण्यों द्वारा प्राप्त किया जाता है।

यह एक युग-निर्मायक घटना है, क्योंकि यह मानवता की मुक्ति के स्वर्ण-युग के अरुणोदय से कुछ कम नहीं है। वेंकटगिरि शताब्दियों तक उस राज्य परिवार की राजधानी रही है, जो धर्म की सहायता, रक्षा एवं उन्नयन में निष्ठा रखता था। इसलिये, इसने इस गौरव को अर्जित किया है। विचार करो, वेंकटगिरि के राजाओं की उदारता (दानशीलता) द्वारा कितने देवालयों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ! उन पण्डितों की गणना करो, जिनको वे

संरक्षण प्रदान किये तथा उन धार्मिक पुस्तकों की गणना करो, जो उनके दान की सहायता से प्रकाशित हो सकी थीं ! शताब्दियों तक, उस राज्य में उनके द्वारा स्थापित धार्मिक वायुमंडल पर विचार करो ! वह परिवार जो आज भी, अभिरुचि ले रहा है, उसे देखो; जबकि उनका राज्य एवं उनका स्तर राजनीतिक परिवर्तन द्वारा समाप्त हो चुका है ।

भारतवर्ष ने अपने सम्मुख धर्म के इस आदर्श को रखा है । उसकी संस्कृति की वह मूल जड़ है, उसके शौर्य एवं प्राणशक्ति का वह स्रोत है । ईश्वरोन्मुख पथ धर्माश्रित कर्म है । वह पथ ही आनन्दोन्मुख, सन्तोषोन्मुख एवं शान्ति-उन्मुख है । इसलिये, वह शक्ति का पथ है । अब, वह पथ पौधों एवं झाड़ियों के अतिशय बढ़ जाने से ओझल हो गया है तथा सेतु एवं नालियां बिगड़ी दशा में हैं । लोग इस लक्ष्य, पथ एवं इस पर चलने की आदतों को भी भूल गये हैं । वह पथ एक मात्र आश्रय (शरण) है । यदि आज नहीं, तो कल इस पर अवश्य चलना है, क्योंकि लक्ष्य उस पथ के छोर पर है । बहु शताब्दियों पूर्व, इतिहास की स्मृति से अतीत, वेदों में उस पथ का निर्माण हुआ । 'सत्यं वद, धर्मं चर',—वेद तुमसे कहते हैं । वेदों एवं शास्त्रों में निपुण, ये पण्डित यह जानते हैं कि धर्म क्या है तथा वे बिना तोड़-मरोड़ के उसे तुमको समझा सकते हैं । यही कारण है कि तुम्हें उनके पास आदरपूर्वक जाना चाहिये; उनको अपने मध्य बैठाना चाहिये तथा उनके द्वारा स्वयं को आलोकित बनाओ । **जानना होना नहीं है । उनसे जो तुम सीखते हो, उसे अपने दैनिक जीवन में कार्यान्वित (अनूदित) करने की चेष्टा अवश्य करो । आनन्दमय जीवन के लिये, नैतिक (सदाचारपूर्ण, धार्मिक) जीवन सर्वोत्तम नुस्खा है ।**

प्रत्येक व्यक्ति का हृदय एक धर्मक्षेत्र है, जहां पर उत्तम एवं दुष्ट शक्तियों में युद्ध होता रहता है । क्यों, यह समस्त देश ही एक धर्मक्षेत्र है । इसलिये, इस देश की मातायें एवं सन्तानें, सर्वोपरि धर्म-निष्ठ अवश्य बनें ।

गीता, 'धर्मक्षेत्र' शब्द से प्रारम्भ होती है तथा 'सर्व धर्मान् परित्यज्य' से इसकी समाप्ति होती है। धर्म के माध्यम से तुमको धर्म का अतिक्रमण करना है। यही कारण था कि कौशल्या ने राम को वन जाते समय प्रोत्साहित किया, "इस कर्म के द्वारा तुम जिस धर्म को ऊंचा उठा रहे हो, वही धर्म वन में निर्वासित रूप में तुम्हारी रक्षा करे।" तथा राम भी, अत्यन्त परीक्षात्मक परिस्थितयों में भी उस धर्म को धारण किये रहे।

रावण की मृत्यु के उपरान्त, विभीषण के राज्याभिषेक का प्रबन्ध हुआ। विभीषण ने प्रार्थना की कि लंका के शहर में राम स्वयं उसको राजमुकुट पहनावें। किन्तु, राम ने घोषित कर दिया कि उनकी प्रतिज्ञा एवं उनके पिता के आदेश उनको निर्वासन अवधि में किसी भी नगर में पैर रखने की अनुमति नहीं देते हैं तथा वह अवधि तब तक समाप्त भी नहीं हुई है। इसलिये उस समारोह में केवल सुग्रीव एवं अन्य लोग उपस्थित हुए थे। इस प्रकार, राम ने अपने कार्यों द्वारा यह प्रदर्शित किया कि किस चातुर्य के साथ धर्म का पालन करना पड़ा था। हमको वैसी ही बुद्धिमान मातायें चाहियें तथा धर्म के अभ्यास में वैसी ही दृढ़ सन्तानें चाहियें।

आध्यात्मिक मामलों में अभ्यास ही यथार्थ वस्तु है। विद्वत्ता एक बोझ है। यह प्रायः एक अपूर्णता है। जब तक, हम यह विश्वास करते रहेंगे कि परमेश्वर बहुत दूर है, मन्दिरों में एवं पवित्र तीर्थ स्थानों में है, मनुष्य धर्म को एक भार एवं एक रुकावट समझता रहेगा। किन्तु उसको अपने हृदय में आरोपित करो और हलका हुआ भाररहित एवं बलवान भी अनुभव करोगे। यह भोजन की उस टोकरी के सदृश है जिसे अपने कन्धों पर ढोते समय, तुम भारी समझते हो तथा तुम इतने दुर्बल हो कि उसे वहन नहीं कर सकते हो। किन्तु, एक सोते के पास बैठो तथा उसे खाओ। यद्यपि भार के योग में कोई कमी नहीं हुई है, तुम पहले की अपेक्षा अधिक हलके हुए एवं बलवान अनुभव करते हो। भोजन को अपने **भीतर** डालने का परिणाम यह निकला।

परमेश्वर के विचार के साथ तुम वैसा ही करो। इसे कन्धों पर नहीं वहन करो, इसे (अपने) भीतर धारण करो।

परमेश्वर की एवं उसके ऐश्वर्य की स्मृति निरन्तर अपने पास रखो। वह आप के कदमों को त्वरित करेगी एवं तुम अपने लक्ष्य पर शीघ्र पहुंचोगे। एक पानी का घड़ा अपने सिर पर, दूसरा कूल्हे पर, तथा तीसरा अपने हाथ में लिये हुए एक मां आतुरतापूर्वक घर आती है, क्योंकि पालने में पड़े शिशु का उसे निरन्तर ध्यान है। यदि, शिशु को विस्मृत करती, तो उसकी गति मन्द हो जाती, तथा अपने मित्रों से बात-चीत करती एवं इधर-उधर घूमती। उसी प्रकार, परमेश्वर,—लक्ष्य—को यदि निरन्तर स्मृति में नहीं रखा जाय, तो व्यक्ति को अनेक जन्म भ्रमण करना पड़ेगा तथा वह अपने घर विलम्ब से पहुंचेगा।

परमात्मा प्रत्येक आत्मा का प्राण-श्वास है। इसलिये, प्रति पल उसकी विभूति में, उसकी स्मृति में, उसके ध्यान में निवास करना सीखो।

३६ यन्त्र एवं मन्त्र

(वेंकटगिरि, दिनांक १९-२-६४)

मानव के पास असीम क्षमतायें हैं, जो उसमें गुप्त हैं। निकालने एवं काम में लाने की प्रतीक्षा कर रही हैं। उसमें अनेक योग्यतायें या गुण हैं जिनको उसे प्रकाशित करना है। वह सभी प्राणियों से प्रेम करने की, अपनी जाति के साथ अपने सुख एवं दुख को बटाने की, अधिक जानने एवं अपनी बुद्धि की उत्कंठा को तृप्त करने की तथा भय एवं विस्मय को, जो उसमें प्रकृति उभाड़ती है, देखने की प्रेरणा का अनुभव करता है। विश्व के सभी कोनों से वह सभी प्रकार की वस्तुओं के विषय में सूचनायें एकत्र करने में समर्थ है, किन्तु अपने ही मन के कोने में जो घटित होता है, उससे वह अपरिचित है। वह शेष सभी लोगों में से जानता है कि कौन कौन है; किन्तु वह इस साधारण प्रश्न का उत्तर नहीं जानता है, "मैं कौन हूँ।"

यथार्थता यह है, वह स्वय से यह पूछे तथा इस पहेली की शृंखला को ढूंढ़े। उसने यह नहीं समझा है कि इसका उत्तर जानना अनिवार्य है। संसार में अन्धे की भाँति इधर-उधर घूमने में ही सन्तुष्ट रहता है। वह अन्धकार में अपना पथ टटोलता है। स्वयं मैं कौन हूं—यह जाने बिना ही वह उतावला होकर निर्णय करता है, नाम चिपकाता है तथा दूसरों की निन्दा भी करता है! आजकल, मनुष्य के जीवन के खोखलेपन का यह मूलभूत कारण है, क्योंकि घृणा एवं भय विश्व में इठलाते चल रहे हैं।

भारतवर्ष के वेदों एवं शास्त्रों के पास उस उत्तर की कुन्जी है। यदि तुम्हारा झुकाव उस प्रकार का हो, तो वे तुमको उस पद्धति को सिखा सकते

हैं जिससे तुम स्वयं के लिये उस उत्तर को ढूंढ़ सकते हो। अंग्रेजी की वर्णमाला में केवल छब्बीस ग्रक्षर है; किन्तु उनको अनेक प्रकार से मिलाकर सहस्रों पुस्तकें लिखी जाती हैं। उसी प्रकार, वेदों में दिये गये विचार एवं संकेत थोड़े हो सकते हैं, किन्तु उनका प्रयोग उस **ग्रक्षर** के समस्त साहित्य को समझाता है, जिसके दोनों ग्रर्थ हैं—'अक्षर' एवं 'अविनश्वर'।

भारतवर्ष में उत्पन्न प्रत्येक व्यक्ति को इन अनुशासनों का एक उदाहरण या नमूना अवश्य बनना चाहिये, क्योंकि 'भा' भव्यता—प्रकाश, मनुष्य के भीतर बन्द भव्यता का ग्रर्थ देता है तथा 'रति', 'इसे व्यक्त करने, इसे चखने की इच्छा' का ग्रर्थ देता है। उस विभूति के अनुरूप जीवन व्यतीत करो तथा तुम सब सम्पूर्णता में रूपान्तरित हो जाग्रोगे।

तुम नराकार में पैदा हुए निराकार हो, असीम ससीम के रूप में उत्पन्न हुआ है, ग्राकारहीन अनन्त ससीम अत्यल्प रूप में ग्राया है, सर्वोच्च सत्ता सापेक्ष होने का बहाना कर रही है, ग्रात्मा शरीर रूप में ग्राचरण कर रहा है, आध्यात्मिक सत्ता केवल शरीर सा स्वाँग कर रही है। सर्वव्यापक ग्रात्मा सर्व प्राणियों का आधार है। आत्मा सर्व प्राणियां का आधार है। आकाश पहले से था उसके तले गृहों का निर्माण बाद में हुआ। उसने इनमें प्रवेश किया तथा कुछ समय इनमें व्याप्त रहा। तदनन्तर, भवन धराशायी हो गये तथा मिट्टी के समूह एवं टीले बन गये। किन्तु, इनसे आकाश रंचमात्र भी प्रभावित नहीं हुग्रा। उसी प्रकार, ग्रात्मा शरीरों में व्याप्त होता है तथा शरीर के नष्ट होने पर भी वह बना रहता है।

जब, एक ही गूढ़, ग्रदृश्य विद्युत तरङ्ग एक बल्ब, एक पंखे, एक स्टोव, एक कूलर, एक स्प्रेयर में प्रवेश करती है, तब उनमें से प्रत्येक को सक्रियता प्रदान करती है या सबको एक साथ ही सक्रिय करती है। उसी प्रकार, 'ईश्वरः सर्वभूतानामम्'—ईश्वरीय सत्ता सभी प्राणियों को क्रियाशील करती

है। वह है आन्तरिक हीर, दैवी चिनगारी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, महानतम से भी महान। सूक्ष्म को परखने के लिये, तुम्हें दूरवीक्षण यंत्र का प्रयोग अवश्य करना है, सुदूरवर्ती को अपने नेत्रों के निकट लाने के लिये तुम 'टेलिस्कोप' का प्रयोग करते हो—ये **यन्त्र** हैं, भौतिक साधन हैं। अन्तस्थ को देखने के लिये जो साधन तुम्हारी सहायता करते हैं वे **मन्त्र** कहलाते हैं, ये वे सूत्र हैं जिनका ध्यान (चिन्तन) करने पर वे तुम्हारी रक्षा करते हैं। उस अन्तस्थ के अनेक अनोखे विरोधी गुण हैं। उन मन्त्रों के प्रयोगात्मक व्यवहार पर जब बल दिया जाता है, तब उन्हें **तन्त्र** भी कहते हैं।

जिस प्रकार, यन्त्रों की क्षमता में, उनकी पद्धति के मांगल्य में, तथा शोध्य पदार्थ की सत्ता में किसी भी वैज्ञानिक का विश्वास होना अनिवार्य है; उसी प्रकार, इन मन्त्रों के मांगल्य में एवं निर्धारित पद्धति की उपयोगिता में, तथा **अन्तस्थ** के अस्तित्व में विश्वास का होना इस महान् साहसिक कार्य में सफलता के लिये अनिवार्य है।

इस समस्या को वहां से पकड़ना चाहिये जहाँ से यह आरम्भ होती है। अज्ञान को हम केवल ज्ञान द्वारा निवारण कर सकते हैं तथा अन्धकार केवल प्रकाश के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। तर्क, धमकी एवं दबाव की कोई भी मात्रा अन्धकार को दूर हटने के लिये बाध्य नहीं कर सकती है। एक ज्योति, यही पर्याप्त है। वह अदृश्य हो जायेगा। प्रकाश की उस ज्योति के लिये तैयारी करो। प्रकाश, तुममें पहले से है। किन्तु, अवरोधक तत्वों से अत्यन्त लदे होने के कारण यह स्वयं को व्यक्त नहीं कर सकता है। "निशा से मुक्ति", **प्रकाश** के प्रगट होने पर मिलती है। इसे ही मोक्ष कहते हैं। चाहे कोई इसके लिये, अभी प्रयत्न करता है अथवा नहीं; किन्तु हर एक को उसे प्राप्त करना ही है। उस लक्ष्य के निमित्त संघर्ष का अपरिहार्य अन्त है तथा सभी लोग उसी ओर चल रहे हैं।

किन्तु, कृपा करके मोक्ष के लक्ष्य तक पहुंचने में भयभीत न हों ! उस स्थिति की विपत्ति रूप में कल्पना न करें। यह विपत्ति का अन्त है। यह दुःख की मृत्यु है; यह आनन्द का जन्म है—उस आनन्द का जिसका ह्रास नहीं होता है; उस दुःख की मौत है, जो फिर कभी नहीं पैदा होगा।

अच्छा, उस स्थिति के लिये तुम स्वयं को किस प्रकार सन्नद्ध कर रहे हो ? मैं तुमको यह अवश्य बताऊँ कि उसका उत्तर उसी शब्द **'मोक्ष'** में स्वयं है। यह स्व व्याख्यात्मक है। 'मो' मोह को प्रगट करता है (=भ्रम; चमकदार, भड़कीले, क्षणभंगुर, अस्थायी चमक से छला जाना); तथा 'क्ष' का अर्थ है क्षय (—ह्रास, विलोप, विनाश)। यह तुमसे अपेक्षा करता है कि तुम अपने मन की उड़ानों को इन छलने - अकर्षणों से दूर रखो तथा उन्हें मोक्षोन्मुख पथ पर सीधे रखो।

देखो, सूर्य का असह्य उत्ताप, किस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है। उतारा जाता है तथा तुम्हारे शारीरिक यन्त्रों द्वारा ९८.४ डिग्री के अनुकूल या सुखद तापमान में अवतारित किया जाता है। उसी प्रकार, तुमको भी अपने तात्विक रोगों की विनाशकारी शक्तियों में, जो शब्द, रूप, रस, स्पर्श एवं गन्ध की तृष्णा से उत्पन्न होती हैं, कड़ाई से रोकना चाहिए तथा उन्हें सह्य स्तर पर लाना चाहिए; ताकि वे सुख एवं अनुकूल जीवन प्रदान कर सकें।

तुम स्वयं माया को रचते हो तथा उसके दास बनते हो। इसे अस्वीकार करो, अपने ऊपर स्वामित्व करने का तुम इसको अवसर प्रदान नहीं करो। तब यह तुमको हानि नहीं पहुंचा सकती है। किसी से कहा गया था, "इस कूएं में तुम्हारी परछाईं पड़ी है।" उसने उत्तर दिया, "नहीं, यह नहीं हो सकता है।" किन्तु, तिस पर भी, उसने जानने के लिए तथा स्वयं तथ्य की जाँच करने के लिए निश्चय कर लिया। वह कुएं तक गया एवं कुएं में झाँका।

ओहो ! उसने उसे सत्य पाया ! कुए ने उसकी परछाईं को अपने भीतर रखा है। बेचारा ! वह नहीं जानता था कि वह परछाईं उसमें केवल तभी होगी, जब वह उसमें देखेगा ! **माया की परीक्षा नहीं करो। इसका पता लगाने की चेष्टा की कि यह स्वयं उपस्थित हो जाएगी। इसे अस्वीकार करके ही तुम इससे दूर रह सकते हो। केवल सार पर चित्त एकाग्र करके ही तुम बच सकते हो; परछाईं को कोई महत्व मत दो, चाहे वह कुएं के भीतर हो या बाहर हो।** क्योंकि अन्ततः, यह एक छाया मात्र ही है।

माया, काम या कामना या तृष्णा के रूप में, मनुष्य को सताती है। काम शब्द, रूप, रस, स्पर्श एवं गन्ध के लिए पुकार मचाता है। ये उन पाँच तत्वों के गुण हैं, जिनसे मनुष्य बना हुआ है—आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस एवं पृथ्वी की गन्ध। मनुष्य के भीतर का आकाश उसे मीठी ध्वनियों के लिए उत्तेजित करता जो उसके कर्ण को तुष्ट करती हैं; उसके भीतर का वायु चिकनी एवं कोमल वस्तुओं के पीछे दौड़ने के लिए उत्तेजित करता है जो चर्म को सुख देती हैं; उसके अन्दर की अग्नि उन वस्तुओं को पीछे करने के लिये उत्तेजना पैदा करती है जो उसकी आँख को अपने रूप-सौंदर्य से प्रिय लगती हैं; उसके भीतर का जलीय तत्व भोजन एवं पेय के लिए आकांक्षा करता है जो उसकी रसना जीभ के लिए स्वादिष्ट होते हैं तथा उसके आन्तरिक पृथ्वी तत्व की उत्तेजना सुगन्ध, सौरभ एवं सुखद गन्धों को नासिका के उपभोग के लिए उकसाता है।

काम का पुत्र दो सिर वाला है—क्रोध एवं लोभ; दो सिरों वाला राक्षस है। इन तीनों की हानिकारक योजना के द्वारा तुम्हारा चिर सुख लुट जाता है।

अपने दिव्य स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण तुम तुच्छ संगति में विचरते हो; तुम निकृष्ट रागों के दास रूप में परिश्रम करते एवं पसीना

बहाते हो । ये तुमको कलङ्क की ओर घसीटते हैं । तुम वह राजकुमार बनो, जो तुम वस्तुतः हो । कमल के समान बनो । वह सरोवर की सतह के कीचड़ से उत्पन्न होकर अपनी इच्छा-शक्ति के बल से सूर्य के दर्शनार्थ जल के ऊपर उठता है तथा उसकी किरणों से उत्साहित होता है । कमल जल के संस्पर्श को ठुकरा देता है, यद्यपि वह उसी तत्व में पैदा हुआ एवं विकसित होता है । उसी प्रकार, तुम्हें भी उन तात्विक रागों के संयोग से दूर रहना चाहिये जो तुम्हारा निर्माण करते हैं तथा उत्तेजित करते हैं । विदूषक या भांड़ के तुच्छ रूपाभिनय से तुम कब तक सन्तुष्ट बैठोगे ? क्या तुम लज्जित नहीं होते हो ? क्या तुममें महत्वाकांक्षा नहीं है ? स्व-आच्छादित लबादे के भीतर तुम अपने सच्चे गुणों को क्यों कुंठित करते हो ? ये सब शून्य अभिनय है । शूरवीर का रूपाभिनय करो । वह तुम्हारा अधिकार है । तुम जगमगाओ !

मैं तुमको बताऊँगा कि तुम उसका पात्र कैसे बनोगे; नाटक के संचालक सूत्रधार से कैसे इसे प्राप्त करोगे । आध्यात्मिक साधना के पाठ्यक्रम में प्रवेश करो । तुम्हारा अनुभव स्वयं इसकी उययोगिता एवं महत्व को बतायेगा । एक रेडियो संग्राहिका को प्रतिष्ठित करो, तरङ्ग की दूरी का जहाँ से तुम सुनने का विचार करते हो, चुनाव करो, उसी तरङ्ग की दूरी के बटन को ठीक-ठीक दबाओ—तुम बस कार्यक्रम को साफ-साफ एवं स्पष्ट रूप से सुनोगे । तुम्हारा कर्ण उसके खरेपन को बतायेगा जिस से तुमने उसको स्वरमुखर किया था । तुम मद्रास रेडियो स्टेशन से किसी दूसरे प्रकार के कार्यक्रमों को नहीं सुन सकते हो । यह सब यन्त्रस्वरूप है । उसी प्रकार, मन्त्रस्वरूप को धारण करो । इसका उच्चारण करो तथा इसका ध्यान करो सच्ची सतर्कता एवं दृढ़ एकाग्रता से । तुम्हारे भीतर परमेश्वर का स्वर मुखरित होगा ।

साधक के पथ में आने वाली बाधाओं में से एक बाधा है, उसके चतुर्दिक् भीड़ लगाने वाले नीम हकीमों द्वारा उसका उपहास एवं आलोचना । उनकी

सलाह या उनमें चुभते काँटों पर ध्यान न दो । वे सामाजिक जीवन या ऐन्द्रिक सुखों के केवल अविवेकी, क्षरण स्थाई, नगण्य वस्तुओं में निपुरण हैं । आजकल, अधिकांश लोग फिल्म स्टारों के इतिहास में उन योगियों एवं परमहंसों के इतिहास की अपेक्षा अधिक अभिरुचि रखते हैं, जो अन्तस्थ अज्ञान के विनाश से तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं ।

यम अथवा मृत्यु के देवता के विषय में वर्णित है कि वह रस्सी या पाश के द्वारा अपने शिकारों को अपने सदन को खेंचता है । अच्छा, उसके पास वहाँ रस्सी का कारखाना नहीं है जो आवश्यकता पड़ने पर उससे रस्सियों की पूर्ति कर सके । तुम स्वयं रस्सियाँ बनाते हो तथा इस अपनी गर्दन के चारों तैयार रखते हो । उसे केवल रस्सी पकड़ना है तथा घसीट ले जाना है ! यह त्रिगुरण रस्सी है—अहंकार, विषय-वासना एवं काम ही त्रिगुरण हैं ।

विषयों के फंदे में फंसे हुए व्यक्तियों का आदर नहीं करो। स्वय के ज्ञान की मात्रा के अनुरूप व्यक्ति का आदर करो; अर्थात्, अन्तर्मापी एवं इन्द्रियातीत (सर्वश्रेष्ठ) का आदर करो । गन्ने का मूल्य तुम कैसे निर्धारित करते हो ? इसमें निहित चीनी के अनुरूप । क्या यह बात नहीं है ? तुम नारंगी का मूल्याङ्कन उसमें निहित रस के अनुसार करते हो । क्या नहीं ? उसी प्रकार, आत्मिक ज्ञान, जिसे उसने अर्जित किया है, के अनुरूप कोई व्यक्ति सम्मान का पात्र है । वही ज्ञान मात्र दृढ़ता एवं बल प्रदान कर सकता है । उसके बिना, संन्यास के सभी कर्म, भक्ति के सभी बहाने, दानशीलता के सभी कर्म केवल रसना या चर्म मात्र की गहराई में हैं ।

प्रस्ताव या विचार का महत्व नहीं है । दृढ़ता या सकल्प महत्व का विषय है । प्रस्ताव तो शब्दों की एक रस्सी मात्र है । तुमको भगवद्गीता के सात सौ श्लोक कंठस्थ हो सकते हैं; किन्तु, मेरा विश्वास करो, इस रटने में जितना समय तुम लगाते हो, वह सब व्यर्थ है, यदि तुम एक भी श्लोक का

संकल्प पूर्वक पालन नहीं करते हो। क्यों? वह विद्वत्ता भी एक अपूर्णता हो सकती है; क्योंकि उस कौशल ने तुम्हारे सिर को प्रभावित किया है तथा इसे अंहकार से फुला दिया है।

भगवद्गीता एक उपाय है जिसके द्वारा तुम अपने ही भगवद्-भाव में निमग्न हो सकते हो। यदि तुम उसमें यों निमग्न हो गये तो तुमको अघट आनन्द, नित्यानन्द प्राप्त होगा। इस समय, अपनी अज्ञानता वश तुम अपने को तुच्छ समझते हो, दुःखी अनुभव करते हो तथा तुम सोचते हो कि दुष्ट, लोभी, क्रूर—ये सब तुम्हारी अपेक्षा अधिक सुखी हैं तथा ऐसा अन्यायपूर्ण है। तुम सोचते हो, इतने सत्यवादी, इतने सुन्दर, इतने उत्तम होते हुए भी तुम कष्ट भोगते हो, यह अन्यायपूर्ण है। तनिक इस पर विचार करो। क्या वे उतने सुखी हैं जैसो तुम कल्पना करते हो तथा तुम्हारी दशा उतनी खराब है जितनी तुम चित्रित करते हो? तनिक छान-बीन करो। तुम्हें इसका उत्तर स्वयं मिलेगा। वे सब केवल विष के रंगे हुए घड़े हैं, उन पर मधु का रंग बहुत पतला चढ़ाया गया है, वह केवल दिखावा है। उनके हृदय में शान्ति नहीं है। वे तुम्हारे समान ही दुखित हैं, यदि अधिक नहीं हैं।

विश्वास रखो कि धर्म या नैतिक सच्चाई कभी मिथ्या नहीं होगी। अन्य साधनों से प्राप्त आनन्द की अपेक्षा यह महत्तर आनन्द सुनिश्चित करेगा। **राम ने रावण का विनाश किया। यह एक शिर की दस शिरों पर विजय थी; केन्द्रिकरण की विकेन्द्रिकरण पर विजय थी।** रावण ने प्रकृति (सीता) के लिये कामना की थी और पुरुष (राम) का परित्याग किया था, जिसने इसको मूल्य एवं अर्थ प्रदान किया था। यदि तुम प्रकृति, दृश्यमान संसार के लिये कामना करते हो, तो तुम स्वयं को अवनत करते हो, तुम अपनी सत्यता को अस्वीकार करते हो तथा तुम रावण की सन्तान में सम्मिलित होते हो। यह भी नहीं कल्पना करो कि परमेश्वर प्रकृति के अथवा तुम्हारे भी बाहर है। तुम भी प्रकृति के एक अंश हो। वह तुम्हारे भीतर,

तुम्हारे पीछे, तुम्हारे बगल तथा तुम्हारे सम्मुख है। वह तुम्हारे नेत्र का नेत्र है तथा तुम्हारे 'मैं का मैं' है। उसके साथ योग या एकत्व के लिये आकांक्षा करो, उसकी अविचल चेतना के द्वारा कि वह वस्तुत: तुम हो। योग की ही आकांक्षा करो। फिर, जो भोग तुम्हें सचमुच आवश्यक होंगे, वे समय पर प्रदान किये जायेंगे। यदि, इसके विपरीत, तुम भोग को ही माँगते हो, तो तुम नष्ट हो जाओगे। तुमको केवल रोग ही प्रदान होंगे, स्मरण रखो।

इस सर्वोत्कृष्ट पक्के विश्वास में निवास करो कि तुम आत्मा हो। सनातन शिक्षा की यह कठोर गूदा या हीर है। यह आत्मा है जो नेत्रों से देखता है, कर्णों से सुनता है, अंगुलियों से पकड़ता है तथा पांवों से चलता है। वही आधार भूत 'तू' है ! वह 'तू' प्रशंसा से फूलता नहीं है अथवा निन्दा से संकुचित नहीं होता है। यदि कोई तुममें छिद्रान्वेषण करता है, तो इस प्रकार स्वयं तर्क करो, "क्या वह मेरे शरीर पर दोष या कलंक फेंकता है ! अच्छा हमको क्यों चिन्तित होना चाहिये ? जो काम मुझे करना चाहिये था, वही वह कर रहा है, मुझे शरीर के मोह को फेंक देना चाहिये, यह इस तुच्छ कारावास के (मोह को त्याग देना चाहिये।) अथवा, क्या वह उनको आत्मा पर फेंक रहा है ? इसकी निर्मलता को कुछ भी दुष्प्रभावित नहीं कर सकता है न इसके वैभव को कलंकित कर सकता है। "इसलिये, शान्त एवं अविचलित बने रहो।" तुम पूछ सकते हो, "गालियों के डंकों का क्या होता है ?" डाक द्वारा प्रेषित एवं प्राप्तकर्त्ता द्वारा अस्वीकृत पत्र की भांति वह प्रेषक के पास लौट जाता है !

मैं तुम्हें घर जाने एवं इन निर्देशनों एवं विचारों पर मनन करने का आदेश देता हूं। जो तुमने श्रवण किया उस पर विचार करो, विशेषत: उन की बातों पर जो तुम्हारे पास प्राचीन धर्म ग्रन्थों में निहित मणियों को तुम्हारे पास पहुंचाते हैं तथा जो (मणियां) अनेक शताब्दियों के अनुभव रूपी

पारस पत्थर द्वारा परीक्षित हैं। श्रवण, मनन एव निदिध्यासन के त्रिगुण पथ की सनातन धर्म संस्तुति करता है। यह बताता है, "सुनो, मनन करो तथा चित्त में केन्द्रित करो। श्रवण से तुम केवल विद्वान बनते हो। श्रुत बातों के अर्थ पर केन्द्रित ध्यान उपदेश का फल उस रूप में प्रदान करता है जैसी उपदेशक की कामना रहती है।

४० एक रुपया या सोलह आना

(वेंकटगिरि, दिनाँक १७-२-६४)

नेल्लूर के पिशैय्या शास्त्री ने मुझ से मिलने के लिये अपने औत्सुक्य एवं आतुरता का वर्णन वहुत भावुकतापूर्वक किया है। अनेक वर्षों से उनकी यह प्रचण्ड लालसा थी। अपनी कामना के पूर्ण होने पर उन्हें इस समय जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका भी उन्होंने वर्णन किया। निश्चय ही, हर कामना के सत्य होने के लिये समय कारण एवं परिस्थिति की एकरूपता होती है। इनके विषय में आज ही ये तीनों बातें उसे यह सन्तुष्टि देने के लिये संयुक्त हुई हैं। कई वर्षों से मैं उनको जानता हूँ और मेरे पास उनके आने की आकांक्षा से मैं अवगत था, विशेषत: विगत चार वर्षों से उन्हें अपनी कामना पूरी करने के लिये मैंने आज बुलाया।

रेमिल्ला के सूर्यप्रकाश शास्त्री ने वेदों के '**अपौरुषेयत्व**' पर भाषण दिया तथा वाराणसी के सुब्रह्मण्य शास्त्री ने वाल्मीकि रामायण में वर्णित राम के कार्यों में आभासित धर्म पर भाषण दिया। तुम सब के लिये ये अत्यन्त रुचिकर विषय हैं। किन्तु, उनपर तथा उन विषयों पर तुम लोगों को उचित ध्यान न देने के लिये मैं तुम्हारी भर्त्सना अवश्य करूँगा। तुम लोग अशान्त एव चिन्तित थे तथा उनके उपदेशों पर ध्यान एकाग्र नहीं कर रहे थे। आज कल, तुम लोग, जहां जाते हो वहां, जिस वातावरण को तुम अपने साथ ले जाते हो, उसी का एक अंश यह भी है। उसमें सच्चाई एवं एकनिष्ठ ध्यान का अभाव है।

परेशानी इस बात की है कि तुम लोग लक्ष्य से सुदूर गलत दिशा में

भ्रमण कर रहे हो। इस संसार में तुम आत्मानुभव के लिये सभी आवश्यक साधनों—विवेक, वैराग्य एवं विचारणा से सुसज्जित होकर अवतरित हुए हो। अपने प्रेम को विस्तीर्ण करने, अपने स्थायी भावों को समृद्ध बनाने एवं अपने कार्यों को सक्षम बनाने के लिये तुममें उद्भावना है। किन्तु, तुमने अपना पथ खो दिया है; तुम दल-दल में फँस गये हो; तुम मृगतृष्णा एवं स्वप्नों से विमूढ़ हो गये हो; क्योंकि तुम उन्हें वास्तविक समझते हो एवं तुम भड़कीले रंगों एवं सस्ते मुआवजे (बदले की वस्तु) चाहते हो।

अपनी ज्ञानपूर्ण विद्वत्ता का प्रयोग करते हुए सुब्रह्मण्य शास्त्री ने राम को धर्म की पूर्ण प्रतिमूर्ति दिखाने के लिये रामायण से सुन्दर घटनाओं को चुना था। प्रत्येक कदम पर राम धर्म का पालन कर रहे थे और समस्त संसार के सामने धर्म की घोषणा कर रहे थे। मरते हुए बालि से अपने तर्कों में उन्होंने घोषित किया कि विवेकयुक्त सभी प्राणी धर्म से बँधे हैं और उसकी अवहेलना करने पर उन्हें दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा। मानवीय कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म के पृथक्-पृथक् प्रयोगों से वे अवगत थे।

वेद ही धर्म का स्रोत हैं। सुब्रह्मण्य शास्त्री ने बताया कि योग ऋषियों की यौगिक चेतना में अभिव्यक्त हुए थे। राम धर्म के मानवीकरण थे। इस लिये रामायण में वेदों की विशिष्टता है। सामान्यतः, महाभारत पंचमवेद के रूप में विख्यात है। भागवत भगवान् की महिमा एवं कृपा का वर्णन करता है तथा सबमें अन्तरवासी के रूप में उनकी भव्यता का भी वर्णन करता है। इसलिये, मनुष्य को मनुष्य के उत्थान के लिये तथा तुच्छ एवं हेय बन्धनों से उसे मुक्त करने के लिये वह भी वेदों के समान ही उत्तम है।

इन ग्रन्थत्रयी में (भगवान् का) वेद स्वरूपम् प्रतिष्ठित है तथा इस प्रकार तुम्हारे अज्ञान को दूर करने के लिये उन्हें समान रूप से प्रभावकारी रसायन

बनाता है। किन्तु तुम ब्राह्मणों को व उनकी अनन्यता एवं एकाधिकारी प्रलोभन के लिये दोषी ठहराते हुए कोलाहल एवं विरोध क्यों बढ़ाते हो ? अपनी श्रद्धा एवं त्याग के बावजूद, वे भी वेदों में संस्तुत कठोर नियमों का अनुसरण करना कठिन समझते हैं। उनके पीछे, अनेक पीढ़ियों का अभ्यास एव प्रोत्साहन उन्हें प्राप्त है। वैदिक मंत्रों का अध्ययन उनके एवं उनके परिवारों के साथ कई शताब्दियों तक रहा है; किन्तु, तिसपर भी, वे ब्राह्मणत्व के वैदिक मापकों के अनुरूप जीवन बिताना कठिन समझते हैं। फिर, तुम उनका पालन कैसे कर सकते हो ? चार व्यक्तियों के पास एक-एक रुपया है। यदि उनमें से प्रत्येक उस सिक्के को नये पैसे में बदलता है और २५ पैसे अपने पास रखने के बाद अन्य तीनों को पचीस-पचीस पैसे देता है, तो उनमें से कोई भी कुछ नहीं खोता है। एक सिक्के के बदले, हर एक के पास १०० नया पैसा है; किन्तु प्रारम्भ में उनकी जो क्रय-शक्ति थी, उसमें कोई बट्टा नहीं आया। रामायण, महाभारत एवं भागवत १०० पैसे हैं ; किन्तु वेद एक रुपये का सिक्का है। बस, कुल यही अन्तर है। तब, तुम लोग घृणा के आन्दोलन में स्वयं क्यों लीन हो जाते हो ? अपने कन्धों की शक्ति से जो भार अधिक है, उसे वहन करने की चेष्टा क्यों करते हो।

तुम उन सब समय-चक्रों, नियन्त्रणों एवं नियमों, धार्मिक रीतियों एवं कर्मकाण्डों की ओर देखो, जिनके भार को ब्राह्मणों ने स्वयं अपने ऊपर लाद रखा है अपने लिये सुरक्षा एवं सन्तोष का निश्चय मात्र करना उनका अभिप्राय नहीं है ; किन्तु उनका उद्देश्य है, समस्त संसार के सभी मानवों एवं सभी प्राणियों के कल्याणार्थ प्रकृति की शक्तियों की व्यवस्थित क्रिया को सुनिर्धारित करना। यही उच्च आदर्श है जिसके लिये उन्होंने अपने ऊपर कठिन श्रम एवं कष्टों को लाद रखा है।

अपने भीतर निहित ईश्वरता के विकास पर एकाग्रचित्त होना ही तुम्हारा कर्त्तव्य हैं। एक बार तुम उसे करो। सभी घृणा एवं दम्भ अदृश्य हो

जायेंगे और ब्राह्मणों के साथ तुम भी हर एक ही लक्ष्य के सहतीर्थयात्री बन जाओगे, यद्यपि समानान्तर पथों में। स्मरण रखो कि मतों की गणना से या जनता के समर्थन प्राप्त करने से इन बातों का निर्णय नहीं किया जा सकता है। हीरे की अपेक्षा मछली के अधिक कीमती होने का निर्णय तुम नहीं कर सकते हो; केवल इस कारण कि मछली बाजार में आदमियों की अधिक भीड़ है तथा हीरा बेचने की दूकान में मुट्ठी भर ग्राहक हैं।

झोंपड़ी एवं किला, दोनों ही धरती पर बनाये जाते हैं। उसी प्रकार, सभी विश्वासों, सभी धर्मों एवं सभी नियमों का आधार वेद हैं। भारतीय संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप यह है कि यहाँ पर वेश-भूषा एवं व्यवहार, भाषा एवं साहित्य, तौर-तरीके एवं रहने की विधि, आदर्श एवं संस्थान-सभी मनुष्य के आध्यात्मिक अभ्युत्थान को ध्वनित करते एवं बल देते हुए शरीर पर आत्मा की श्रेष्ठता, एवं स्थूल पर सूक्ष्म की श्रेष्ठता बताते हैं। इस सर्वोच्च कर्म के सहायक हर कर्म हैं। शरीर को भोजन देना चाहिए एवं रोग से मुक्त रखना चाहिए। क्यों? ताकि यह साधना के योग्य बना रहे। साधना किस लिये? अपने विषय में **सत्यता** का अनुभव करने के लिये। सूक्ष्म स्थूल के लिये आधार है और मानव के लिये ईश्वरता आधार है। भारतीय संस्कृति इस आधार की ओर तुम्हारी आंखों को मोड़ती है—इस पर जो निर्मित हैं, उसके प्रति नहीं।

चिरकाल तक वह दृष्टिकोण प्रत्येक भारतीय के लिये स्वाभाविक दृष्टिकोण था तथा यह स्वतः भी था। माँ की गोद से, खेत में पिता से, पाठशाला में शिक्षक से, पड़ोसी, मित्र एवं सम्बन्धियों से, बृद्धों एवं नवयुवकों से तथा अपने चहुं ओर जो कुछ किया जाता था, लिखा जाता था या कहा जाता था; उससे यह अर्जित किया जाता था। चूँकि, यह दृष्टिकोण तेजी से लुप्त होता जा रहा है तथा इसे पूर्णतया फेंक दिये जाने का भय है, इसलिये मैंने इस प्रशान्ति विद्वान महासभा का प्रवर्तन किया है, ताकि तुम्हें यह एक बार पुनः इस आदत को डालने का स्मरण कराये।

निस्संदेह, तुम सब इस बात से सहमत होगे कि जब मैं यह कहता हूं कि ग्रानन्द तुम्हारी सबसे बड़ी ग्रावश्यकता है । किन्तु, तुम इसको किसी दूकान से नहीं माँग सकते हो । इसे कठोर तरीके से उपार्जित करना है—उत्तम कर्म करना, सत्संग में रहना बुराइयों से बचना, एवं भगवान् की महिमा पर मन को लगाना । एक ही पात्र में भले एवं बुरे, दोनों को नहीं रखा जा सकता है; क्योंकि; तब तो भला भी बुरा हो जायेगा । **रात एवं प्रकाश साथ-साथ नहीं रह सकते** । सूर्य को ग्रभिमान था कि कोई शत्रु शेष नहीं रहा । किन्तु किसी ने उससे कहा, तुम्हारा एक शत्रु बच रहा, ग्रर्थात्, ग्रन्धकार । तब उसने ग्रपनी किरणों को शत्रु को खोजने के लिए भेजा । किन्तु जहाँ कहीं वे गयीं, वहां पर उन्होंने **प्रकाश** को ही पाया, तथा ग्रन्धकार कहीं नहीं मिल सका । वे वापस ग्रायीं ग्रौर ग्रपना प्रतिवेदन दिया, "धरती पर **ग्रन्धकार** नामक कोई वस्तु नहीं थी । हम लोगों ने बहुत बड़ी खोज की ।"

सूर्य प्रकाश शास्त्री ने बताया है कि सूर्य के इस ग्रोर बसने वाले प्राणी जन्म एवं मरण के, विनाश एवं विकास के शिकार हैं; किन्तु उसके दूसरी ग्रोर बसने वाले **प्राणी** इस परिवर्तन के पहलुग्रों से मुक्त हैं । उन्होंने पूछा, "मृत्यु के प्रदेश को ग्रमरत्व के प्रदेश से विभाजित करने वाली दीवार को लाँघने के रहस्य को हमें कौन बता सकता है?" निश्चय ही, भगवान् ने ग्रनेक वार इसके विषय में बताने के लिये दूतों को भेजा है तथा इसे बताने के लिये एवं मानव जाति को विनाश से बचाने के लिये वह स्वयं मानव शरीर में ग्रवतीर्ण हुग्रा है । मानवता के पथप्रदर्शन का कार्य इतना निरन्तर हुग्रा है कि ग्राज, भारतवर्ष में इसे प्राप्त करने के लिये तथा जन्म एवं मृत्यु के चक्र से छुटकारा पाने के लिये कम से कम सच्चाई की यह मात्रा तो पाई जाती है ।

केवल कठोर साधना के द्वारा ही तुम यह विजय प्राप्त कर सकते हो । शारीरिक साधन की ग्रपेक्षा ग्राध्यात्मिक साधन ग्रधिक कठोर है । सर्कस के पण्डाल के नीचे वृत्त के भीतर फैले हुए विद्युत तार पर दौड़ने वाली महिला

के प्रयत्नों की प्रचण्ड मात्रा की कल्पना करो ! अन्त में, लाभ कुछ रुपयों का ही है। श्रेष्ठतर पुरस्कार को लक्ष्य करके वैसा ही दृढ़ एवं व्यवस्थित प्रयत्न तुम्हें मानसिक सन्तुलन प्रदान कर सकता है और तुम अपनी मानसिक समरूपता को अत्यन्त आपत्तिमय एवं अत्यन्त उन्मत्तकारक परिस्थितियों में भी कायम रख सकते हो। **इस प्रकार की साधना के लिये कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियां अधिक महत्वपूर्ण हैं तथा मनुष्य को प्रदत्त अभ्यान्तरिक साधनों की अपेक्षा बुद्धि अधिक महत्वपूर्ण है। अपनी बुद्धि को अपने मानस का स्वामी बना लो और तुम कभी असफल नहीं होगे। तुम तभी असफल होगे जब इन्द्रियां तुम्हारे मन पर अधिकार कर लेंगी।**

एक लंगड़ा आदमी एवं एक अन्धा आदमी मित्र बने। वे एक स्थान से दूसरे स्थान घूमने लगे। लँगड़ा आदमी अन्धे के कन्धों पर सवार रहता था। एक दिन, किसी खेत से गुजरते हुए लँगड़े आदमी ने उस खेत में लौकियों को देखा और अन्धे से कहा कि वे कुछ तोड़ें एवं पेट भर खायें। अन्धे में कुछ महत्तर विचार थे। इसलिये, इस विषय में सुनने पर उसने इस विचार का तुरन्त स्वागत नहीं किया। उसने पूछा, "भाई ! क्या लोगों ने फसल को घेरा है ?" लँगड़े ने कहा, "नहीं।" उसने पुनः पूछा, "भाई ! वहां उनका कोई रखवाला है ?" लँगड़े ने कहा, "नहीं।" तब अन्धे ने कहा, "चलो, हम अपना रास्ता लें। ये लौकियां अवश्य तीती हैं। इसी कारण, ये अरक्षित छोड़ दी गई हैं।

तुम्हें ज्ञात है कि लौकियां मधुर एवं तिक्त, दोनों होती हैं। वह अन्धा अपनी बुद्धि का प्रयोग करके यह अन्वेषण करने में, बिना चखे सफल रहा कि वे तिक्त थीं। उसकी बुद्धि ने सत्य को अधिक तीव्रता एवं स्पष्टता से समझ लिया।

अपनी बुद्धि को साधना द्वारा निर्मल करो ताकि अपने भीतर रहने वाले

भगवान् का दर्शन प्राप्त कर सको। यही **सुदर्शन** है जिसने गजेन्द्र को बचाया था। वह जंगली हाथी (मनुष्य) जो मगरमच्छ (अहंकार) द्वारा झील (संसार) में क्रीड़ा करते समय पकड़ लिया गया था । **हर्ष एवं शोक को श्रमशीलता एवं संतुलन का शिक्षक समझो। दुःख मित्रवत् स्मरण कराता है, एक उत्तम गुरु है जो हर्ष की अपेक्षा बेहतर शिक्षक है।** परमात्मा रक्षण एवं दण्ड दोनों देता है। क्योंकि वह भगवान् (स्वामी) कैसे हो सकता है यदि वह कठोर है।

४१ पण्डितों का स्थान

(स्थान—राजमुन्दरी, दिनाँक २४-२-६४)

विदेशी संस्कृतियों के प्रचण्ड प्रभाव में भारतीय संस्कृति के सोते लगभग शुष्क हो गये हैं तथा भारतीय स्वयं को बड़ी तेजी से बेचते जा रहे हैं। उस वृक्ष को हरा-भरा रखने वाली एजेन्सियाँ दुर्बल हो गई हैं; वे संस्थान, परम्परागत रीतियाँ एवं कर्मकाण्ड जो संस्कृति के दृष्टिकोणों को जन-दृष्टि में संजोये रखते थे, मुर्झाकर दुर्बल हो गये हैं। जनसमूह को उसकी वसीयत का स्मरण कराने के सामाजिक कर्तव्य का दायित्व जिन्हें सौंपा गया था, वे हतोत्साहित एवं उदासीन बन गये हैं। प्रशंसा प्राप्त करने के निमित्त वेदों में स्थापित धर्म का अनुभव करना है, ऊंचे शब्दों में इसकी केवल चर्चा नहीं की जा सकती है। वेदों की उपयोगिता केवल उच्चारण में नहीं है, यद्यपि वेदपाठी एक बहुमूल्य सेवा कर रहे हैं, उनको सही स्वरूप एवं उच्चारण शैली में सुरक्षित रख रहे हैं। वेद आनन्द देते हैं; वेदमाता आनन्दमाता है।

वे प्रश्नों के प्रश्न : मैं कौन हूं ? का उत्तर प्रदान करते हैं। तुममें से हर व्यक्ति को यह समझना है कि यह प्रश्न तुमको शीघ्र या विलम्ब से अवश्य परेशान करेगा। इन्द्रियाँ, जो एक छोटे-से मान्य क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करती हैं, इसका उत्तर प्राप्त करने में शक्तिहीन हैं। वे अपने विशिष्ट प्रदेश में भी अत्यन्त अपर्याप्त हैं। ऐसी ध्वनियाँ हैं जिन्हें कर्ण नहीं सुन सकता है; ऐसे रंग हैं जिनको नेत्र नहीं देख सकता है; न उसका अर्थ हमें समझा सकता है तथा रसना की शक्ति के परे स्वाद भी है। बाह्य जगत के अध्ययन के लिए भी ये अपूर्ण साधन हैं। फिर, वे हमको आत्मा के अग्राह्य,

अदृश्य आन्तरिक जगत के विषय में शिक्षा देने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? वेदान्तिक ज्योति मात्र ही तुमको "अणोरणीयान महतोमहीयान"—अल्पतम से भी अल्पतर एवं विशालतम से भी विशालतर—व्यक्त कर सकती है।

अपने पास ज्योति होने पर, तुम उसके मूल्य को नहीं समझते हो। तुम उसे स्वाभाविक मात्र समझते हो। केवल उसके खोने पर या उसके धुंधले होने पर, तुम आँख के अस्पताल में दौड़ते हो। जब भारत की वेदान्त ज्योति मन्द पड़ गई थी, तब शंकराचार्य ने इसको पुनः संचित किया और इस प्रकार इस देश को बचाया। मेरा विश्वास मानो, यदि वे ऐसा न किये होते, तो भारतवर्ष द्वितीय चीन बन गया होता।

पानी ऊपर निकालने के लिए धरती को खोदते एवं पाइप को धंसाते समय, तुमको उत्तम सतर्कता रखनी पड़ती है, ताकि पाइप में हवा या पानी प्रवेश न कर सके तथा आवश्यक रिक्तता की रचना को कहीं नष्ट न कर दे। उसी प्रकार, यदि तुम अपने आन्तरिक 'स्व'—आत्मा की सत्यता को ढूंढ़ने के प्रयत्न में **सफलता चाहते हो, तो तुमको उत्तम सावधानी रखनी पड़ेगी** कि **बाह्य 'स्व'** प्रवेश न कर सके तथा एकाग्रता को बिगाड़ न सके। तुम्हें बाह्य जगत के विचारों को मन में प्रवेश करने से रोकना पड़ेगा। अनुसंधान के उस क्षेत्र में इन्द्रियाँ निश्चित (अपूर्णतायें) रियायते हैं।

आधुनिक काल के भयंकर उपायों में एक यह है कि अनेक व्यक्ति यह दावा करते हैं कि वे (ईश्वर द्वारा) धर्म की पुनर्स्थापना करने के हेतु भेजे गये हैं। यह बात असंख्य लोगों को पथभ्रष्ट कर रही है। उनमें से हर एक अपने निजी ढंग से तथा अपने कौशल एव विशिष्ट प्रकृति के अनुरूप यह काम कर रहा है। किसी राजपथ पर एक पुल के टूट जाने पर, कोई एक पद-यात्री, चाहे वह कितनी ख्याति का हो, उसका सुधार या पुनर्निर्माण प्रारम्भ नहीं कर सकता है। और न तो इसके कोई पड़ोस में रहने वाले ग्रामीण

सेतुनिर्माण के अपने निजी विचारों के अनुसार ही कार्य प्रारम्भ कर सकते हैं। जिस अधिकारी ने वह सड़क बनवायी थी तथा पुल की योजना तैयार की थी, उसी को आना पड़ेगा तथा योजना बनानी पड़ेगी।

धर्म व्यक्ति की एवं समाज की प्रगति हेतु, इस संसार में, तथा इस संसार के द्वारा दूसरे संसार में, राजकीय पथ है। यह शाश्वत, बुनियादी एवं मूलभूत है। वैयक्तिक इच्छाओं या बलवती समस्याओं, जो कुछ व्यक्तियों या व्यक्ति-समूह की दृष्टि में भयंकर दिखाई देती हैं, के अनुकूल धर्म-सिद्धांतों को बदला या ठीक नहीं किया जा सकता है। यह मां के सदृश है, जिसे स्वीकार करना ही है; यह उस पत्नी के समान नहीं है, जिसको तुम चाहे पसन्द करो या त्याग दो।

वाराणसी के सुब्रह्मण्य शास्त्री ने धर्म की चर्चा की जैसा महाभारत में एवं महाभारत के द्वारा इसकी व्याख्या की गई है। वह एक सहायक स्तम्भ है जो किसी भी कुम्हलाते हृदय को प्राणवान बना सकता है। तदि तुम गम्भीरतापूर्वक ख़ोज करो तथा निर्भय होकर विचार करो, तब भारतीय दृष्टिकोण की श्लाघा कर सकते हो—इन्द्रियों को तुष्ट करके आनन्द के निम्नतर मानदण्ड को ढूंढ़ने के बजाय, मन को सर्वदा विश्वात्मा, विराट सर्वव्यापी, की दृष्टि में रहने की शिक्षा देकर कोई व्यक्ति चिरस्थाई आनन्द प्राप्त कर सकता है। जब उसे हम कोई रूप एवं नाम प्रदान करते हैं अपनी आत्मा या चेतना में उसे बन्द करने के लिए, तब वही (विराट्) भगवान्—परमात्मा के नाम से पुकारा जाता है।

विश्वात्मा एवं सर्वव्यापी का ध्यान करके कोई मनुष्य आनन्द क्यों प्राप्त करता है? क्योंकि, वह स्वयं विश्वात्मा एवं सर्वव्यापी है। यह त्वम् की पुकार है तत् के लिये, तथा त्वम् के सजातीय स्वर का तत् द्वारा उत्तर है। मनुष्य, बुनियादी तौर से, अनिवार्यतः, पूर्णतः अमर्त्य है। वह अमृतस्वरूप है। किन्तु,

तिस पर भी, वह डरता है कि वह मर जायेगा ! वह ग्रानन्दस्वरूप है; तिसपर भी वह रोता है, वह दुखी होता है ! वह शान्तिस्वरूप है; तिसपर भी, हर जगह वह चिन्ताओं से दबा रहता है ! यह ग्रसंगत ग्रात्म-प्रवंचना उस विपत्ति का मूल है, जिससे ग्राजकल संसार पीड़ित हो रहा है। गुरु एवं शिष्य, दोनों की चेतना के भीतर चाहे वह जहां भी हो—इस देश में हो ग्रथवा विदेश में, (उक्त) सत्य को ठूंसना होगा।

ग्रनेक गुरू लोगों को साहस के इस सिद्धांत की शिक्षा नहीं प्रदान करते हैं वे ग्रपने पास पहुंचने वालों को ग्रात्म-ज्ञान के ग्रनुशासन में नहीं लाते हैं, क्योंकि वे स्वयं ग्रात्मतत्व में स्थित नहीं हैं। वे शिष्यों एवं भक्तों के ग्रहंकार को सघन बनाते हैं तथा उनके विनाश को, दूर हटाने के वजाय, शीघ्र बुलाते हैं। शिष्य भी त्वरित परिणाम की, संक्षिप्त पाठ्यक्रम की एवं कम से कम तपस्या की माँग करते हैं। इसलिए, गुरुओं को भी साधना के कठोर नियमों को नीचे बहाना पड़ता है तथा स्वयं शिष्यों के मुंहलगे (प्रिय पात्र) के रूप में ग्राचरण करना पड़ता है। वे ग्रनेक नैतिक उल्लघनों पर ग्राँखें बन्द कर लेते हैं तथा उन षड़यन्त्रों एवं विद्रोहों में वे प्रायः हाथ बटाते हैं, जो उनके भक्तों की दिनचर्या बन गये हैं। सचमुच, यह एक दुःखद दशा है। एक राष्ट्र जो ऐश्वर्य के निमित्त, मानवता के पथ-प्रदर्शन के निमित्त निर्दिष्ट हो; वह केवल ग्रन्धकार में टटोलता हुग्रा भोजन, वस्त्र, ग्राश्रय एवं घंटों तक के तुच्छ मनोविकारों से चिरानन्द के रस को निचोड़ने का प्रयत्न करे।

पश्चिम से एक वड़ा व्यापारी, मि॰ किल्मैन पुट्टापर्ति आया था। ग्राध्यात्मिक समस्याग्रों पर विचार विमर्श करते समय, उसने मुझसे पूछा, "मन्दिरों का निर्माण क्यों कराया जाय, जब हमारी ग्रावश्यकतायें हैं कूप, बाँध, ग्रौषधालय, एवं कारखाने ?" मैंने उसे उत्तर दिया कि भली प्रकार खाने-पीने वालों एवं भली प्रकार सेवा-रत व्यक्तियों से पता लगाग्रो कि क्या

वे सुखी हैं, क्या उनमें आन्तरिक शान्ति है। केवल आत्मा ही आन्तरिक शक्ति का स्रोत है; यही आनन्द का फौव्वारा है; उस आनन्द की पराजयों से या विजयों से भी अप्रभावित है।

तुम पूछ सकते हो, "आप कैसे जानते हैं, या हम लोग कैसे यह जान सकते हैं कि आत्मा नाम की कोई सत्ता है।" अच्छा, तुम कैसे जानते हो कि आज २४ फरवरी है ? यह आकाशवाणी करने के पश्चात् सूर्य आज नहीं उदय हुआ, कि फरवरी मास का चौबीसवाँ दिन है। कुछ व्यक्ति जिन्हें तुम अनुसरण करने के लिए प्रवृत्त होते हो या वह सत्ता जिसका तुम आदर करते हो, उसने बताया कि आज २४ फरवरी है। यही सब कुछ है । तुमने उनके बचन को स्वीकार किया तथा तुम्हें हर्ष हुआ कि तुम्हारी स्वीकृति ने तुम्हारे लिये सब बातों को अधिक सम बना दिया।

उसी प्रकार, जब वेद एवं शास्त्र यह घोषित करते हैं कि तुम आत्मा हो तब, तुम स्थूल शरीर को गलती से स्वयं को समझने के बजाय इस (उक्ति) को स्वीकार करो तथा इसे शान्ति, शक्ति एवं आनन्द का एक महान स्रोत पाओगे। अपने जीवित क्षणों का इस विश्वास पर निर्माण करो तब, सत्य, धीरे-धीरे तुम्हारे ही त्रुटि रहित अनुभव में व्यक्त होगा।

भगवान् ने गीता में "मम माया" कहा है अर्थात्, यह सापेक्ष जगत उसका हस्त कौशल, उसकी लीला, उसकी महिमा है। यह एक प्रशिक्षण भूमि है, एक प्रेरणा है उन लोगों के लिए जो उसको देखना चाहते हैं। यह इस सबका स्रोत एवं सार है। "यह दृश्य जगत मेरी लीला ; इस माया से इसके रचयिता, स्वामी, भगवान् में अवश्य अभिरुचि रखो।" वह कहता है। एक बार, इस जगत को उसकी क्रिया का क्षेत्र, उसके नाटक का रंगमंच, समझ लेने पर, तुम फिर, कभी नहीं पथभ्रष्ट हो सकोगे; तुम कभी लीला की किसी छलना से या रंगमंच के किसी प्रभाव से धोखा नहीं खाओगे; तुम्हारा

अपकर्षण नहीं होगा, तुम इसको सत्यतः सच्चा विश्वास करने के लिये बाध्य नहीं होगे। जितने समय तक यह चलता है, उतने समय तक ही प्रामाणिक है तथा तुम भी उस थियेटर में हो।

आधेय की अपेक्षा आधार को अधिक सत्य समझो—ससार की अपेक्षा परमेश्वर अधिक सत्य है। भारतीय विचार की यह बुनियादी शिक्षा है। वेदान्त के सभी सिद्धान्तों में यही मोती है। संसार एक मृगमरीचिका के सदृश है। मृगमरीचिका किसी वर्षा से नहीं उत्पन्न होती है; न तो किसी सरोवर या सागर से मिलती है। सूरज के चमकने के पूर्व यह नहीं थी और संध्या के आगमन के पश्चात यह नहीं रहेगी। यह, केवल एक मध्यवर्ती आश्चर्य है।

प्रशान्ति विद्वान-महासभा की स्थापना, प्रत्येक तृषित आत्मा को वेदों-शास्त्रों से सान्त्वना एवं शक्ति का एक प्याला जल पिलाने के लिये तथा उर्वरता के जल को प्रत्येक सूखे क्षेत्र तक पहुंचाने के हेतु की गई है। घन्डीकोट सुब्रह्मण्य शास्त्री ने मेरे प्रति रचित कतिपय कविताओं को पढ़ा। ये पण्डित मेरी प्रशंसा करने के लिये मेरे साथ नहीं रहते हैं और न मेरी या उनकी प्रशंसा करने की कोई आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त मेरा कोई अन्य उद्देश्य नहीं हैः तुमको आनन्द के पथ पर ले जाना। विद्वान महासभा की मैंने स्थापना की है। इसलिये इसके प्रति मेरा कोई विशेष मोह नहीं है। सभी सभायें एवं संघ तथा व्यक्ति जो इसी कार्य को अपनी क्षमता एवं साधनों के अनुरूप करते है; वे सदा सभी मुझे प्रिय हैं। मैं तुमको आदेश नहीं देता हूं कि तुमको मुझमें विश्वास करना चाहिए अथवा मेरी पूजा करनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि केवल तुम स्वयं में विश्वास पैदा करो तथा परमेश्वर की पूजा करो जो तुमको अपने औजार के रूप में प्रयुक्त कर रहा है। समझो कि तुम्हारी अनिवार्य हीरा आत्मा है। इन सभाओं या संघों से ख्याति प्राप्त करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। सुब्रह्मण्य शास्त्री के कथन गलत नहीं हैं। किन्तु, मैं

यह जानता हूँ कि यहाँ बैठे हुए तुम लोगों में से कुछ लोगों ने उस समय संशय किया, जब वे कविता पाठ कर रहे थे, कि उन्हें तथा अन्य लोगों को यहाँ मेरी श्लाघा करने के लिए एकत्र किया गया है। मैं तुमको बताऊँ कि ऐसे प्रदर्शन एवं दिखावे हमको प्रिय नहीं हैं। ये बातें मेरे स्वभाव एवं उद्देश्य के विरुद्ध हैं।

तीन दिनों तक सुबह-शाम, इन पण्डितों के उपदेशों को सुनकर अधिक समृद्ध हुए बिना घर नहीं जाओ। यह "मैं गया; मैं बैठा; मैंने देखा; मैंने सुना; मैं आया" की कहानी न बने। मन्द-बुद्धि व्यक्ति यही सब करते हैं। अभ्यास द्वारा इस उपदेश को अपना निज का बनाओ। इसका अर्थ तुम्हारी धमनियों में संचरित हो तथा तुम्हारी सच्चाई को सजीव करे। कुछ दुर्बल इच्छा वाले व्यक्ति होते हैं; जिन्हें दूसरे लोग घसीटते रहते हैं। वे कुछ लोगों को पुट्टापर्ति जाते देखते हैं और वे भी पुट्टापर्ति चले जाते हैं। वे कुछ लोगों को दूर खड़े देखते है और वे भी दूर खड़े हो जाते हैं। वे दूसरों की कल्पनाओं से क्यों चालित होते हैं ? क्यों उस सौभाग्यपूर्ण अवसर को खोते हैं जो पुनः कभी नहीं घटित हो सकता है।

निस्सन्देह, मैं सबको प्यार करता हूँ: जो मेरे पास आते हैं तथा जो आना बन्द कर देते हैं, जो निलयम में ठहरते हैं तथा जो दूर ठहरते हैं, जो प्रशंसा करते हैं तथा जो निन्दा करते हैं; क्योंकि मेरे प्रेम के घेरे के बाहर कोई भी नहीं है।

अपनी दायीं हथेली को अपने सम्मुख सीधे ऊपर की ओर करो ! तुम देखोगे कि अंगूठा तुम्हारी ओर संकेत कर रहा है तथा यह अन्य अंगुलियों से पृथक् है। वह परात्मा का प्रतीक है जो पृथक् एवं अप्रभावित रहता है। मध्यमा **जीवि है** जो तीनों गुणों से संयुक्त है। दृश्य जगत त्रिगुण रचना से मिला है। वह इससे, उससे तथा दूसरों से मिलने की चेष्टा करता है। यह सदैव वस्तुओं को पहचानने में व्यस्त रहता है। इसलिये, वह त्रिगुण की

ही संगति पाता है। किन्तु, एक बार इसे परमात्मा की ओर मुड़ने दो... उसके साथ सामीप्य प्राप्त करने दो ! तब, यह गुणों के सम्पर्क को त्याग देगा, यह एवं अंगूठा चिन मुद्रा, पूर्ण का चिह्न, पूर्ण चैतन्यता का रूप बनायेगा।

मैं तुम लोगों को वरदान देता हूँ कि तुम्हारा ध्यान एवं कर्म सदैव तुम्हारे अन्तस्थ आत्मा पर केन्द्रित रहे। यही उद्देश्य है, जिसके निमित्त प्रशान्ति विद्वान महासभा की स्थापना की गई है।

४२ अमृतस्य पुत्राः

(स्थान—राजमुन्दरी (हिन्दू समाज), दिनांक २५-२-६४)

राजमुन्दरी के हिन्दू समाज की स्थापना सन् १९०३ में हुई, जैसा इसके मन्त्री ने हम लोगों को अभी बताया। इसलिये, यह इसका षष्ठ्याब्द (साठ वर्ष) पूर्ति उत्सव, इसके साठ वर्ष की आयु प्राप्त करने का उत्सव माना जा सकता है। यह एक रीति है कि अवधि की पूर्ति होने के कुछ समयोपरान्त ऐसे उत्सव मनाये जाते हैं, ठीक उस तिथि को नहीं, जिस दिन कि वह अवधि पूर्ण होती है। अतएव, यह उक्त रीति के अनुरूप भी है।

इस प्रथा को शान्ति नाम से भी कहते हैं—शान्ति की प्राप्ति। साठ वर्ष की आयु में इन्द्रियों की उद्दण्डता एवं आवारापन नष्ट हो जाते हैं; वे व्यक्ति को विनाश में घसीटने के लिये शक्ति हीन हो जाते हैं। यह विश्वास है कि परमात्मा पर मन को स्थिर करने का वह उपयुक्त समय है तथा उस पथ पर चलने का भी समय है जिसे भौतिक चेष्टाओं की व्यस्तता में वह खो चुका था।

यह समाज भी उस पथ से बहुत दूर भटक गया था, जिस पर यह स्थित किया गया था। इस नगर में सनातन धर्म के प्रोत्साहन एवं उन्नयन हेतु अनेक संस्थायें हैं। उनमें यह एक प्रमुख संस्था है। भगवद् गीता, हिन्दू धर्म की एक प्रामाणिक पुस्तक है। यह संस्था उसके पाठ एवं व्याख्या की प्रतियोगितायें कराती थी तथा यह स्वयं हाईस्कूल के सैकड़ों छात्रों को गीता बाँटती थी, जब वे अपने विद्यालयों से विशाल जगत में प्रवेश कर रहे थे।

मैं जानता हूं कि सनातन धर्म की शिक्षाओं के प्रसारण कार्य में इसका प्रमुख स्थान रहा है।

अब, लोगों की असहृदयता, कार्यों के कृत्रिम रूपों के आकर्षण, एवं विद्यार्थियों, विद्वानों एवं पण्डितों को पुरस्कृत करने के लिये कोषों के शुष्क होने के कारणों से, अब, यह संस्था कार्यालय जाने वालों तथा दूसरों के मनोरंजन का केन्द्र बन गयी है। वह मनोरंजन उन आदर्शों के लिये नहीं है जिनके लिये अतीत में भारतवर्ष खड़ा हुआ था तथा वर्तमान में जिनके लिये खड़ा है; बल्कि शरीर, नाड़ियों एवं मन की क्रिया एवं सौन्दर्य के लिये वे मनोरंजन करते हैं। ऐसी सेवा के लिये निरन्तर माँग है; यह कभी पुरानी या कृत्रिम नहीं पड़ेगी, यदि कोई चारों ओर दृष्टिपात करे तथा मानदण्ड में ह्रास का निरीक्षण करे, तो आज भी उसकी महती आवश्यकता है। यही कारण है कि प्रार्थना पूर्वक इसके सभापति मेरे पास आये कि मैं समाज को वरदान दूं तथा तुमको यह बताऊं कि तुम्हें क्या काम करना है।

वाराणसी के सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अभी बताया कि पाण्डवों के ज्येष्ठ भाई युधिष्ठिर में वह भक्ति थी। इसलिये, बनवास की अवधि में एक इंच भी विचलित नहीं हुए और सिंहासन पुनः प्राप्त करने पर अपने विचार को भी नहीं खोये। दुर्योधन के सदृश अन्य लोगों ने धर्म को अपने दुष्कर्मों के दुष्परिणामों से बचने के एक तुच्छ बहाने के रूप में प्रयोग किया।

धर्म पलायन का एक उपाय नहीं समझना चाहिये। यह जीवन यापन का एक उपाय है। दुर्योधन ने कभी एक बार भी धर्म का पालन पाण्डवों के प्रति नहीं किया और अन्त में उसे अपने अपरिहार्य विनाश का सामना करना पड़ा, जब भीम ने उसको नीचा दिखाने के लिये चुनौती दी। उस समय छलपूर्ण जुआ का खेल रचने वाले, लाख का घर जिसमें आग लगवा दी गई थी, बनवाने वाले, माननीया रानी द्रौपदी को अपमानित करने वाले, भयंकर

शत्रुओं के झुण्ड द्वारा आक्रमण कराकर अभिमन्यु की हत्या करने वाले, सभी प्रकार की विभीषिकाओं के कुटिल रचयिता (दुर्योधन) ने धर्म की शरण ली तथा धर्मग्रन्थों को उद्धृत करने लगा।

विचलना एवं अनिश्चयात्मकता धर्म के राज्य में तुमको प्रभावित करते हैं; क्योंकि उस समय तक तुम उस आत्मज्ञान में स्थित नहीं बनते हो, जो तुमको सही समानुपातिक ज्ञान प्रदान करता है तथा संचालन एवं सफलता का विचार भी प्रदान करता है। यही कारण है कि गीता क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ, दोनों के जानने की आवश्यकता पर इतना अधिक बल देती है। ज्ञान के क्षेत्र एवं ज्ञान क्षेत्र के ज्ञाता, दोनों को जानो, तब तुम, 'अमृतस्य पुत्राः'—अमरता की संतान कहलाने के अधिकारी बन सकते हो। अन्य उपाधियां उस सिर के भारस्वरूप हैं जो उसे धारण करता है। जो एक फूंक में अदृश्य हो जायें, उनसे क्या लाभ है? किसी को कतिपय वर्षों से अधिक नहीं धोखा दो।

केवल भक्ति से ही वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति हृदय को निर्मल बनाती है, भावनाओं को ऊपर उठाती है तथा दृष्टिकोण को सर्वव्यापक बनाती है। ईश्वरीय अनुकम्पा को भी उतारती है; क्योंकि खेतों के ऊपर आकर मेघों को जलवृष्टि करनी पड़ती है तथा जीवन-रस-पान करने के लिये पौधे ऊपर नहीं जा सकते हैं। मां को पालने के पास झुकना पड़ता है शिशु को दुलारने के लिये। उसी प्रकार, भक्ति में वह शक्ति है कि वह ईश्वर को भी नीचे ला सकती है।

एक बार, विश्व की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु का नाम नारद से पूछा गया। उन्होंने उत्तर दिया कि पृथ्वी सबसे विशालतम है। किन्तु, उनसे कहा गया कि जल ने पृथ्वी के तीन चौथाई अंश पर अधिकार जमाया है। तथा शेष को भी वह थोड़ा-थोड़ा करके निगलने की धमकी दे रहा है। इसलिये, उन्हें मानना पड़ा कि जल पृथ्वी की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। जो हो

जल भी अगस्त्य मुनि ने पी डाला था तथा उन्होंने सागर-महासागरों को शुष्क कर दिया था ! और अब, वह भी आकाश में एक तारे के रूप में हैं ! तब, क्या आकाश सबसे विशालतम है ? नहीं । क्योंकि ईश्वर के वामन अवतार द्वारा यह एक ही पग में समा गया था । और, ईश्वर ? अरे, वह भक्तों के हृदयों में प्रवेश करता तथा उनमें निवास करता है । इसलिये, नारद मुनि इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस सृष्टि में भक्तों के हृदय सबसे भव्यतम वस्तु हैं ।

यही कारण है कि दौर्बल्य के सभी लक्षणों की मैं निन्दा करता हूँ तथा दुर्बलता के विचार को ही मैं पाप, अक्षम्य पाप कहता हूँ । यह अमरता की वसीयत, "अमृतस्य पुत्राः" की उस उपाधि का अपमान है जिसके लिये मानवता पात्रता रखती है तथा उसे अवश्य अर्जित करना है । **दौर्बल्य, अस्थिरता, नैराश्य—यह उसके (ईश्वर के) असम्मान हैं, जिसने तुमको 'अमृतस्य पुत्राः' होने का गौरव प्रदान किया । तुम शक्ति की प्रकृति के बाल स्वरूप हो । जब कभी तुमसे पूछा जाय, तुम स्वयं को वैसा ही बताओ; अन्य नहीं । झुको नहीं; सिकुड़ो नहीं; आत्म-सम्मान को बेचो नहीं । विश्वास मत करो कि तुम शरीर तत्वों का एक छोटा सा ढेर हो । तुम अविनाशी, अमर आत्मा हो, स्वयं ब्रह्म के सदृश एक ही प्रकृति के हो ।**

उस सृष्टिकर्त्ता के प्रति कृतज्ञ बनो जिसने तुममें वह अमृत उड़ेला, जो अमरता का भरोसा देता है । वह तुमसे चाहता है कि तुम हर्ष एवं शोक का दृढ़ता पूर्वक सामना करो । पशु भी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं । केवल पालतू पशु ही नहीं, अपितु जंगली पशु, जैसे सिंह, भी कृतज्ञता प्रगट करते हैं । क्या तुमने उस सिंह की कहानी नहीं सुने हो जो पाँव में घाव से कष्ट पा रहा था ? जंगल से भागते हुए एक दास ने उसको देखा । सहानुभूति सहित उसके पास वह गया । शेर ने अपना पैर बाहर निकाल दिया । उसने उसके पांव से

उस कांटे को धीरे से बाहर खींच लिया जिसके कारण उसे उतना कष्ट हो रहा था। तदनन्तर उस स्थान से वह चला गया तथा कालान्तर में गिरफ्तार करके रोम भेज दिया गया। वहां पर लोगों ने उसको रंगशाला में डाल देने एवं उस पर तत्काल पकड़े गये एक शेर को मुक्त छोड़ने का निश्चय किया। दैवयोग से, यह वही सिंह था जिसको उसने कष्ट से बचाया था। इसलिये, उसकी (सिंह की) कृतज्ञता ने उसकी रक्षा करने वाले को हानि पहुँचाने की आज्ञा नहीं दी।

भगनान् के प्रति कृतज्ञ बनो; क्योंकि उसने तुमको विवेचना, वैराग्य एवं मूल्याङ्कन की शक्तियां प्रदान की हैं।

आज से अपने जीवन के विषय में चार सकल्प करो:—**स्वच्छता**—बुरे विचारों, बुरी आदतों, निकृष्ट कार्यों से, जो तुम्हारे आत्म सम्मान को दुर्बल बनाते हैं, दूर रहो। **सेवा**—दूसरों की सेवा करो, क्योंकि वे एक ही **सत्ता** की परछाइयां हैं जिसकी तुम स्वयं दूसरी परछाईं हो। तुममें से किसी के पास कोई प्रामाणिकता नहीं है सिवाय, **एक मूल के सन्दर्भ के**। **पारस्परिकता**—समस्त सृष्टि के प्राणियों के साथ घनिष्टता का अनुभव करो। ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं में एक ही तरङ्ग को बहते हुए देखो। **सत्य:**—स्वयं को या दूसरों को अपने अनुभवों को तोड-मरोड़ कर धोखा नहीं दो।

"हिन्दू समाज" का शुभारम्भ जिस कर्त्तव्य के निमित्त किया गया था, उसमें अवश्य तत्पर हो जाये तथा शिक्षित वर्गों के मन में पुनर्जागरण एवं विद्यार्थियों में अपनी प्राचीन संस्कृति के लिये समादर एवं अनुराग उत्पन्न करे। आलोचकों के कटाक्ष से विचलित मत हो। उससे तुम्हें केवल प्रोत्साहित होना चाहिये। गोदावरी पुल पर जाती हुई रेलगाड़ी में एक बार एक घटना हुई। एक ग्रामीण किसान ने एक नया पैसा निकाला तथा गोदावरी नदी में फेंक दिया, क्योंकि

उस पवित्र नदी का सम्मान करना उसने एक पवित्र कर्त्तव्य के रूप समझा था। तुरन्त ही एक सह-यात्री, जो एक कोने में आराम से बैठा हुआ था, क्रोधित हो गया। उसने उस कार्य को मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वास एवं आर्थिक अपव्यय कह कर निन्दा की। "यही कारण है कि यह देश निर्धन एवं शक्ति-हीन है," उसने कहा तथा नदी में सिक्के फेंकने के विरुद्ध अपने क्रोध को निकालते हुए उसने अपने सिगरेट को जोर से खींचा वह किसान भी चुप नहीं रहा। उसने कहा, 'यहां इस आदमी को देखो, मैं इस पुल से वर्ष में एक या दो बार गुजरता हूँ, एक बार में मैं केवल एक नया पैसा खोता हूँ। इस अत्यल्प त्याग से मुझको अत्यधिक आनन्द एवं सन्तोष प्राप्त होता है, किन्तु मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे बताइये आप जो निरन्तर धूम्रपान कर रहे हैं इससे आप को क्या अर्थलाभ हो रहा है। जो धुआं आप बाहर वायु में फेंकते हैं, वह हम सबके लिए वायुमण्डल को विषैला बना देता है, यह आपके स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता है, यह दूसरों के स्वास्थ्य को भी नष्ट करता है; यह तुम्हारा धन बरबाद करता है; यह एक राजसी आदत है, जो तुम्हारे अहंकार को बढ़ाती है तथा तुमको व्याकुल एवं बेचैन बनाती है।"

अपने भीतर सुप्त पड़े हुए दोषों की जाँच करो तथा उनसे छुटकारा पाने की चेष्टा करो। दानशीलता, सेवा, सहानुभूति, समता धर्मनिरपेक्षता आदि ऐसे गुणों के वैशिष्ट्य के मंचों से केवल निन्दा मत करो। उतरो एव कुछ एक का सच्चाई से अभ्यास करो ; अपना पड़ोसी जब भयानक रूप से बीमार पड़ा हो, तब तुम सुख पूर्वक एवं मुक्त होने के विचार से सन्तुष्ट होकर आराम नहीं करो। **यदि कोई भी बन्धन में पड़ा है, तो कोई भी मुक्त नहीं है। स्मरण रखो, जो भोजन तुम प्रत्येक जीवित प्राणी को प्रदान करते हो, वह परमेश्वर स्वयं प्राप्त करता है, जो सेवा तुम किसी एक प्राणी की करते हो, वह परमेश्वर को आनन्द से परिपूर्ण करती है।**

इस समय, सब उपासना एवं पूजा केवल "भुक्ति" के लिये—स्वयं उपासक के श्रेष्ठतर सुख एवं बिलासी भोग के लिये है। भक्ति व्यापारिक व्यवसाय में दूषित कर दी गई है। मैं तुमको बहुत कुछ दूंगा, बशर्ते तुम मुझे भी बदले में उतना दो। यदि वह देवालय अधिक देने का बचन देता है, तो इस देवालय को त्याग दिया जाता है। यदि तुम्हें शीघ्र कुछ वापस नहीं मिलता है, तो कहीं अन्यत्र, कोई दूसरा देवता अधिक लाभप्रद होगा।...सांसारिक मनुष्य आज कल अपने भयातुर चक्करों में इसी प्रकार भटकते हैं।

"यदि मैं दूसरों के मध्य खड़ा रहता हूं, तो परमात्मा मुझको नहीं देखेंगे। इसलिए, मैं अवश्य अकेले खड़ा रहूँ और उनका ध्यानाकर्षण करने के लिए चिल्लाऊं। अन्यथा, वह मेरी उपेक्षा कर सकते हैं।" लोग ऐसा तर्क करते हैं तथा मूर्खतापूर्ण आचरण करते हैं।

आदर्श को कसकर पकड़ो। सर्वशक्तिमान् को अपने ससीम दृष्टिकोण के अनुरूप बनाकर अपमानित करने की चेष्टा मत करो। ऊपर उठो। अपने वैराग्य को बलवान बनाओ, विवेक में स्वयं स्थित रहो। तब, तुम्हारा लक्ष्य तुम्हारे निकट होगा।

४३ अनुग्रह से सुवासित

(स्थान—भद्राचलम, दिनांक २८-२-६४)

प्रतिमा-प्रतिष्ठित सभी स्थल पावन नहीं होते हैं । अथवा, यदि सभी पावन हैं, तो उनमें से सभी एक समान शक्तिमान नहीं होते हैं; धर्म की पुन-स्थापना के लिये राम मानव रूप में अवतरित हुए । कई शताब्दियों के पश्चात, गोपन ने इस पहाड़ी पर उनकी पूजा का, उनके साथ चलने-फिरने एवं बात करने का, अपने स्वामी एवं भगवान् के रूप में, अवसर पाया था । इस तपस्या के द्वारा बद्रीगिरि ने राम को अपने सिर पर स्वयं प्रतिष्ठित होने के लिये विवश किया । सचमुच, परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये साधन रूप में यह स्थान अनोखी भक्ति का स्मारक है । सभी चट्टानें अहल्या नहीं हैं तथा न सभी पग राम के है । जब, वह चट्टान, जो अहल्या है, उसके पाँव से स्पर्श की जाती है, जो राम है, तभी पुनर्जीवन घटित होता है । वस्तुतः, पुनर्जीवन क्या है ? मनुष्य में जन्मजात ईश्वरता का प्राकट्य है । ईश्वरता से सम्पर्क का वह फल है। वर्षों की तपस्या के पश्चात् ही वह (सम्पर्क) होता है, जो मनुष्य के हृदय से बुराई का निवारण करता है ।

रावण को आध्यात्मिक ग्रन्थों का विशाल ज्ञान था । उसके दस शिर छः शास्त्रों एवं चार वेदों से उपार्जित पाण्डित्य के प्रतीक हैं । उसने केवल प्रकृति पर स्वामित्व पाने की इच्छा की; वह पदार्थ जगत—दृश्यजगत—पर अधिकार प्राप्त करना चाहता था । वह पदार्थ विज्ञान का ज्ञाता था । किन्तु, वह आत्मा द्वारा पालित नहीं था । आत्मा के उच्चतर मूल्यों का उसने अनुभव नहीं प्राप्त किया था । उसने पुरुष, राम का परित्याग किया । वह प्रकृति की

लंका—सीता, पर अधिकार पाने से ही सन्तुष्ट रहा। यही कारण था कि वह पराजित हुआ।

जब लोग आत्मा में विश्वास नहीं रखते हैं, तथा केवल इन्द्रियों का अनुगमन करते हैं, तब खतरे का सिगनल ऊपर उठता है तथा भगवान् किसी देवदूत को भेजते हैं या स्वयं आते हैं, यदि पुनर्रचना में कोई बहुत महान कदम उठाना होता है। अर्जुन ने आत्मिक आधार को विस्मृत कर दिया तथा रावण उसके विरुद्ध चल पड़ा। विश्व स्वयं इन्द्रिय जगत की रेतीली बुनियाद पर निर्माण कर रहा है। इसलिये, अवतारों को आना पड़ा। जिस प्रकार, बन्दर मिट्टी के घड़े की तंग गर्दन से अपने हाथ को नहीं निकाल सका, क्योंकि बर्तन में पड़े हुए मुट्ठी भर मैदे की टिकियों को उसने अपनी मुट्ठी में पकड़ रखा था; उसी प्रकार मनुष्य भी आज कष्ट भोग रहा है, क्योंकि वह संसार से प्राप्त मुट्ठीभर सुखदायक वस्तुओं को अपनी मुट्ठी से छोड़ना नहीं चाहता है। मनुष्य गलत विश्वास में पड़ा हुआ है कि भौतिक वस्तुओं का संग्रह उसे आनन्द एवं शान्ति प्रदान करेगा। किन्तु, केवल **प्रेम** ही वह चिरन्तन आनन्द प्रदान कर सकता है; केवल प्रेम ही क्रोध, ईर्ष्या एवं घृणा को मिटा सकता है।

पावन गिरि पर, यह पावन अवसर है। तुम सब लोगों को इस पवित्र स्थली में पैदा होने का सौभाग्य प्राप्त है क्योंकि प्रति दिन यहां मनोर्थपूर्ण एवं दैव-क्षुधा लेकर आने वाले यात्रियों का दर्शन ही स्वयं एक सौभाग्यपूर्ण अवसर है। वे अपने साथ अत्यधिक रामप्रेम लाते हैं; वे राम नाम गाते हैं तथा भगवान् का नामोच्चार करते हैं तथा वे तुमको कभी नहीं विस्मृत होने देते हैं कि यह स्थल परमेश्वर के अनुग्रह से सुवासित है। क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे अभ्युत्थान के हेतु कितनी महान् सेवा है? कुछ वर्षों पूर्व, जब मैं अयोध्या में था, मैं राम नाम भली भाँति सुन सका था जिसे वहाँ का वायु सभी दिशाओं में प्रसारित कर रहा था।

किन्तु, मैं तुमसे पूछता हूं, तुम इन यात्रियों के प्रति कैसा व्यवहार करते हो, जो वर्षों की सच्ची तैयारी के उपरान्त विश्वास से बोझिल हृदय सहित यहाँ पर आते हैं। तुममें से अनेक उनके चहुँ ओर जमा हो जाते हैं तथा उनकी भक्ति एवं इस स्थान की उनकी अज्ञानता के शोषण का तुम लोग अवसर ढूंढते हो। तुम्हारे प्रति तथा इस स्थान के प्रति वे जो सम्मान लेकर आते हैं उसे तुम लोग उनसे पूर्णतया निचोड़ लेते हो। वे तुम्हारा आदर करते हैं तथा तुमसे ईर्ष्या करते हैं; क्योंकि तुम उस पवित्र वायु की सांस लेते हो; तुम इस पवित्र जल को पीते हो तथा तुम इस पवित्र पूजा को देखते रहते हो। किन्तु, तुम लोग उनकी मूर्खता पर हंसते हो और उनकी भक्ति पर व्यापार करते हो। यह बहुत ही अन्यायपूर्ण है। तुम लोग उन व्यक्तियों के समान हो जिनके सामने स्वादिष्ट भोजन की अत्यधिक थालियां सजी हैं किन्तु उस सुस्वाद के लिये उनको भूख ही नहीं है।

मैं उन तीर्थ यात्रियों से भी अवश्य कहूं, क्योंकि मैं उन्हें भी यहां अधिक संख्या में देख रहा हूं। यदि तुम यहां मनोरंजन यात्रा करने के लिये, ईश्वर की अनुकम्पा को प्राप्त करने के लिये आवश्यक तैयारी के बिना यहां आते हो, तो तुम लोग यहां पर एक व्यथा ही हो। तुम इस स्थान के वायुमण्डल को दूषित करते हो। तुम लोग यहां केवल दृश्य देखने आये हो, अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति को सुदृढ़ करने नहीं आये हो। तुम लोग एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पार्सल की भांति जाते हो, जो ऊपर आच्छादन पर मुहर प्राप्त करते हैं, आपने आन्तरिक हीर (हृदय) पर नहीं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाला अन्धा व्यक्ति चिन्ता नहीं करता है कि यह दिन है या रात है। उसी प्रकार, तुम भी एक स्थान से दूसरे स्थान में अन्तर नहीं पाते हो। तुम हर प्रकार के स्थलों में एक समान उदासीनता से व्यवहार करते हो तथा समान रूपेण इन्द्रिय केन्द्रित रहते हो। उस स्थल की पावनता को अपने मन पर घात नहीं करने देते हो।

तीर्थ यात्रा के फलस्वरूप तुम्हारी आदतों में उत्तमता हेतु परिवर्तन होना

चाहिये, तुम्हारा दृष्टिकोण अवश्य विस्तीर्ण होवे, तुम्हारी आन्तरिक दृष्टि अवश्य गहन तथा अधिक स्थिर हो। तुम परमेश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव अवश्य करो और मानवता की एकता का भी। तुम सहिष्णुता, धैर्य, दानशीलता एवं सेवा अवश्य सीखो। तीर्थ यात्रा समाप्त होने के उपरान्त, तुम इन्हें ढूढ़ने का अवश्य निश्चय करो तथा तुम घर में अपने अनुभव पर विचार करो—परमात्मा के साक्षात्कार के उच्चतर, समृद्धतर एवं अधिक यथार्थ अनुभव का मनन करो। मैं तुमको आशीष देता हूं कि तुम लोग वह संकल्प कर सको तथा धीरे-धीरे प्रयत्न करते हुए **लक्ष्य** को प्राप्त करो।

४४ दीपक के सदृश बनो

(स्थान—बुक्का पटनम् दिनांक १३-३-६४)

तुम सब तीर्थ यात्री हो। इस कर्मक्षेत्र पर चलते हुए धर्मक्षेत्र के लक्ष्य की ओर जा रहे हो। साहित्यकारों, कवियों, शिक्षकों एवं प्रशासकों ने तुमको अभी सम्बोधित किया है वे केवल पथ प्रदर्शक हैं जो तुम्हें सहायता देते हैं; किन्तु पथ पर तुम्हें ही चलना है प्रत्येक इच चलना है। "कविः पुराणं अनुशासितारम्"; कवि वह व्यक्ति है जो आदेश देता है, जो कानून बनाता है, चाहे प्राचीन या कालातीत हो—वेद यही कहते हैं। इसलिये, इन कवियों को जनता के सम्मुख आचार-नियमों को रखना पड़ता है तथा पथ भ्रष्ट होते समय उसको सचेत करना पड़ता है। दूसरों को पथ दिखाने की पूर्वघोषणा करते समय उन्हें स्वयं पथभ्रष्ट नहीं होना चाहिए। कवि क्रान्ति-द्रष्टा कहा जाता है; वह मन्त्रद्रष्टा कहा जाता है। उसका काम है परमात्मा के प्रति मनुष्य को समझाना। उसे निरर्थक बातों में, गरिमाशून्य लेखों में लिप्त नहीं होना चाहिये। यह उसके पद को अवनत करेगा। उसको लक्ष्यहीन प्रश्न नहीं करना चाहिये। उसे मौन समय में उत्तर पाने की चेष्टा करनी चाहिये, किसी अन्य व्यक्ति को अपने संशयों एवं प्रश्नों द्वारा प्रभावित या ग्रासित नहीं करना चाहिये।

जीवन मृगमरीचिका है। यह किसी दृष्टिगोचर वर्षा से उत्पन्न नहीं हुई है तथा यह किसी परिचित सागर में नहीं गिरती है। एक आदमी मरणासन्न था। उसके पास उसके सम्बधीगण आये। माता-पिता, पत्नी, लड़के, भाई, बहनें,—सबने उसका पलंग उसके मरने की घड़ियों में घेर लिया तथा सब

रोने विलापने लगे। वे उससे पूछने लगे, "हम लोगों की क्या गति होगी ?" मरणासन्न व्यक्ति ने तकिये से अपने शिर को थोड़ा ऊपर उठाया और बदले में प्रश्न किया, "मेरी क्या गति होगी, इस समय में इस समस्या में आप लोगों का क्या होगा—की चिन्ता की अपेक्षा अधिक उलझा हूं।" अच्छा, यह अधिक श्रेष्ठतर है कि प्रत्येक व्यक्ति अब भी यह प्रश्न स्वयं से पूछे एवं देर होने तक प्रतीक्षा करने की अपेक्षा उसके उत्तर से स्वयं को सुसज्जित करे। "मैं किस लिये हूँ ?" मुझे क्या करना चाहिये ?" तुम इन प्रश्नों का अवश्य पीछा करो एव उत्तर प्राप्त करो।

मेरा विश्वास करो—**तुम्हारा स्वभाव सत्, चित् एवं आनन्द है।** यही कारण है कि उस प्रकार का आचरण करते हो। तुम सर्वदा जीवित रहने की कामना करते हो, जीवित रहने में तुम सुखी रहते हो; तुम अपनी ही मृत्यु की बातें करने से दूर रहते हो। यही पर्याप्त प्रमाण है कि तुम सत्-स्वरूपा हो। पुनः तुम अपने चतुर्दिक् विश्व को जानने की इच्छा से, विस्मय से एवं जिज्ञासा से परिपूर्ण हो। तुम निरन्तर क्या, क्यों, कैसे एवं कब सब वस्तुओं के प्रति पूछते हो। तुम्हारी संरचना में निहित चित् द्वारा यह उत्तेजना प्रदान की जाती है। अन्त में, तुम सर्वदा आनन्द खोजते हो, किसी एक साधन से या दूसरे से। तुम दुःख से दूर रहने की चेष्टा करते हो तथा उसके बदले आनन्द चखना चाहते हो। ऐसा करना मानव स्वभाव है, क्योंकि वह अनिवार्यंतः आनन्द स्वरूप है। जब वह आनन्द को खोजता है, तब यह अन्तस्थ के लिये अन्तस्थ की प्रकार के सदृश है। जब कोई तुमसे पूछता है, "तुम कैसे हो !" तथा तुम उत्तर देते हो, "भली प्रकार हूँ। आपको धन्यवाद।" वह यह पूछने के लिये नहीं रुकता है कि तुम क्यों भली प्रकार हो। जब तुम यह बताते हो कि तुम बीमार हो, तब वह रुकता है और परेशानी प्रगट करता है तथा कारणों, लक्षणों एवं बीमारी की अरोग्यता पर विचार करता है। "आरोग्यता" स्वाभाविक है; "रुग्णता" अस्वाभाविक है। केवल अस्वाभाविक के कारण चिन्ता उत्पन्न होती है। इस लिये तुम सुख-स्वरूप भी हो।

सत्, चित्, आनन्द आत्मा की विशेषतायें है तथा तुम आत्मा हो, देह नहीं।
एक राजा था। उसे ज्योतिष शास्त्र में दृढ़ विश्वास था। इस लिये, जब उसका लड़का एक दिन मूल नक्षत्र की चढ़ाई में पैदा हुआ, तब उसको भय हुआ कि यह बालक इस वंश के ऊपर विपत्ति लायेगा। इसलिये, उसने सैनिकों को उसका वध करने के लिये एवं उसके शव को जंगल में फेंकने के लिये आदेश दिया। नौकर इतनी करुणा से पराभूत हो गये कि उस शिशु को मार डालने के बदले, उसको जंगल में केवल त्याग दिया तथा वापस चले आये। उस शिशु को एक धोबी ने पाया तथा अनेक वर्षों तक उसका पालन-पोषण किया। सूखने के लिये पसारे गये वस्त्रों को लड़का देखा करता था। एक दिन, राजा ने अपना पथ खो दिया और उस गाँव में भटकते पहुँचा जहाँ उस राजकुमार के साथ धोबी रहता था। धोबी के घर में विश्राम करते समय राजा ने उस बालक का, जो कपड़े ताक रहा था, पता लगा लिया कि वह उसी का बेटा है। वह उसको वापस ले गया तथा उसे युवराज का मुकुट पहनाया। उस धोबी के साथ रहता हुआ भी, उस बालक राजकुमार के रूप में अपने स्तर को नहीं खोया। केवल, वह अपनी वास्तविकता को नहीं जानता था। तुम सब लोग उसी दयनीय दशा में हो, सब राजकुमार हैं जो गलती से इस विश्वास में पड़े हैं कि हम धोबी हैं; सब आत्मायें हैं जो अपने भव्य स्तर से अपरिचित हैं तथा यह घोषित करते हैं कि तुम लोग क्षणस्थायी एवं क्षणभंगुर देह हो।

एकबार देवगण अपनी प्राप्त विजय पर इतने हर्षित हुए, इतने घमंडी हो गये कि ईश्वरीय अनुकम्पा को भी नितान्त भूल गये, जिसने उन्हें शत्रुओं को विफल करने में उनकी सहायता की थी। उन्होंने एक महान हर्षोत्सव मनाया। जब वे अपने आमोद-प्रमोद में निमग्न थे, तब परमेश्वर ने उनके अहंकार के बुलबुले को सुई चुभाने का निर्णय किया। इसलिये, उन्होंने एक अनोखी वस्तु का सृजन किया जो स्वयं उनके सम्मुख उपस्थित हुई एवं उनके ध्यान को आकृष्ट किया। भय एवं विस्मय से वे उसके समीप गये। इसने

सबको फटकारा। जब उसे यह बताया गया वे देवगण हैं तथा विजयोत्सव मना रहे हैं, तब उसने उन्हें चुनौती दी कि वे अपनी शक्ति का प्रमाण घास की तह पर सिद्ध करें, जिसको उसने धरती पर रखा था। अग्नि के देवता ने उसको जलाने की चेष्टा की किन्तु वे विफल हो गये। वायु देवता ने उसे उड़ा ले जाने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु वे भी नहीं उड़ा सके। इस प्रकार, प्रत्येक देवता ने अपनी क्षमता सिद्ध करने की चेष्टा की, अपने कौशल का उस तुच्छ तृण की तह पर, परन्तु असफल रहे। अन्त में यह प्रदर्शित हुआ कि सर्वोपरि ईश्वरीय अनुकम्पा के बिना उनमें से प्रत्येक एवं सबके सब युद्ध में विजयी होने के बजाय, असफल हो जाते।

इस प्रकार, उस करुणानिधि परमेश्वर ने हर्षोन्मत्त देवताओं को विनम्रता की शिक्षा दी।

तुम विनम्र अवश्य बनो, किन्तु प्रलोभन को निरुद्ध करने के लिए बलवान भी बनो। कायरों की भाँति इन्द्रियों की तुच्छ उत्तेजनाओं के सम्मुख घुटने नहीं टेको। पाठशाला में तुम्हारे समय का प्रयोग केवल सूचनाओं के संग्रह करने में एवं आजीविका हेतु आय प्राप्त करने के लिए एक निश्चित कौशल सीखने में ही व्यतीत नहीं करना चाहिए। संतुष्ट एवं शान्त, विचारवान् एवं साहसी बनने की कला को अर्जित करने में भी समय का उपयोग होना चाहिये। पाठशाला में इस विश्व की सत्यता एवं अपनी आत्मा की सत्यता को जानने के लिए एक हार्दिक पिपासा भी पैदा करनी चाहिये। **तुम्हारे शब्दों में मधु की मिठास हो, तुम्हारा हृदय नवनीत सा सुकोमल हो, तुम्हारा दृष्टिकोण दीपक के समान प्रकाशमान हो, धुंधला नहीं।**

फुटबाल के मैदान पर निर्णायक के समान बनो, खेल को देखते रहो एवं निर्धारित नियमानुसार खेल की जांच करते रहो, तथा किसी भी दल की सफलता या असफलता से अप्रभावित बने रहो।

मैं चाहता हूं कि तुम ऐसी पुस्तकें पढ़ते रहो जो तुम्हारी आत्मा के विषय में प्रश्न पूछने एवं उनका उत्तर देने के लिये तुमको उत्तेजित करेंगी। उत्तम पुस्तकें पढ़ो, शिक्षक (educator) के सदृश्य उन्नायक साहित्य को पढ़ो। आज मैं इसका उद्घाटन कर रहा हूं। इसके लिये, मैं भी कुछ लेख कभी-कभी लिखूंगा, इसको शिक्षक पढ़ेंगे जो शिष्यों को प्रेरणा प्रदान करेंगे। मुझे हर्ष है कि अनन्तपुर जिला परिषद के शिक्षक संघ ने अपने परस्पर हित के लिये एक पत्रिका प्रकाशित करने का कार्य हाथ में लिया है। ये वही व्यक्ति हैं जिन्होंने मुझको इस पाठशाला में आज बुलाया है तथा जिसका नाम मेरा नाम है। मुझे हर्ष हो रहा है कि वह पाठशाला अपना वार्षिक दिवसोत्सव मना रही है। प्रधानाध्यापक का विशेष दायित्व है कि स्थानीय जनता में उत्साह उत्पन्न करें तथा उसे पाठशाला के हितार्थ प्रवाहित करें। पाठशाला के कल्याणार्थ जब कोई योजना हो तो सबको उसकी सहायतार्थ उसमें हाथ बटाना चाहिये।

मैंने इस नगर में उठती हुई असंगत बातों एवं कानाफूसियों को सुना है कि यदि सत्य साई बाबा सचमुच ईश्वर हैं, बुक्कपटनम का तालाब वर्ष के अधिकांश समय में क्यों सूखा रहता है? तुम लोगों में से कुछ ने इन बयानों को सुना होगा। यह बयान उन उत्तरदायित्वहीन व्यक्तियों का है जिन्हें **विश्व-विधियों** के कार्य का ज्ञान नहीं हैं। मेरी सत्यता एवं तुम्हारे ग्राम के तालाब भरने वाले झीलों-नालियों से क्या सम्बन्ध है? यह, सचमुच, व्यर्थ का विचार है: चूंकि साई बाबा इस स्थान से चार मील के भीतर हैं; इसलिये बुक्कापटनम तालाब वर्ष भर पानी से भरा रहना चाहिये। तथा इसके ढाल पर के खेत अपने स्वामियों को उत्तम लाभ प्रदान करें। विशेषत: इसी तालाब पर मुझे अपने अनुग्रह को क्यों व्यय करना चाहिये? क्योंकि समीपता अधिक घनिष्टता प्रदान करता है। सभी स्थान मेरे लिये समान रूप से निकट हैं। यदि वे उत्तम रीतियों से विमुख हो जायें तो वे मुझसे दूर हो जाते हैं। मेरे लिए दूरी मीलों में नहीं नापी जा सकती है। दूसरे महाद्वीप

में एक तालाब मेरे उतने ही निकट हो सकता है, जितना चित्रावदी के पार दूसरा तालाब निकट है।

पुनः, जब इस ग्राम के निवासी बैंक में रुपये नहीं जमा करेंगे, तब तक उनके द्वारा काटी गई 'चेक' को बैंक कैसे भुगतान करेगा। क्या आप ने परमेश्वर के पास निष्ठा-भक्ति, अपनी जाति के प्रति सेवा, तथा अपनी साधना में श्रद्धा को जमा किया है? केवल तभी, आप उस अनुग्रह को निकाल सकते हैं। वह बड़े परिश्रम से प्राप्त होती है। परिश्रम के अनुपात में ही अनुग्रह होती है।

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि तुम किस प्रकार कष्ट पाये हो? जब अन्य आस-पास के ग्राम अवनति कर रहे हैं तथा वहाँ के निवासी बड़े नगरों में चले जा रहे हैं, तब बुक्कापटनम निरन्तर फल-फूल रहा है। यह पवित्रात्मा तीर्थयात्रियों की धारा के कारण है जो इस ग्राम से होकर पुट्टापर्ति में प्रवाहित होती है। वहाँ एकत्र होने वाले सत्संगों के द्वारा वायु मण्डल शीतल बन जाता है तुम्हारे पड़ोस में जो महाशक्ति प्रगट होती है उस स्थल से ज्योतित महाभक्ति वह लाभ प्रदान करती है जिसको तुम अस्वीकृत नहीं कर सकते हो। यह पाठशाला उस अनुग्रह के अनेक साक्ष्यों में से केवल एक है। मैं तुमको आशीर्वाद देता हूं कि तुम लोग भगवान् की भक्ति में अधिकाधिक विकास करो, चाहे तुम जो भी नाम एवं रूप स्वीकार करते हो, और विशालतर परिणाम में उसके अनुग्रह को अर्जित करो।

४५ साइ-संकल्प

(स्थान—वृन्दावन, व्हाइटफील्ड, दिनांक, १३-४-६४)

आज का दिन तिगुने वरदान का है, क्योंकि सर्वप्रथम, सूर्य पंचाङ्ग के अनुयायियों के लिये यह नववर्ष दिवस है, दूसरे, बसंत नवरात्रि का आज से शुभारम्भ होता है तथा तृतीय वृन्दावन में प्रवेश के कारण, जिसे प्रातः-काल तुम सबने देखा है। कन्नड़ देशवासियों के लिए आनन्द का एक और अतिरिक्त कारण है, क्योंकि उनके प्रदेश में हम लोग अभी प्रशान्ति विद्वान महासभा के कार्य का उद्घाटन करने जा रहे हैं। ऐसे शुभ दिवस पर, तुममें से प्रत्येक का यह कर्तव्य है कि इन पण्डितों द्वारा अपने ज्ञान एवं अनुभव द्वारा तुमको प्रदत्त ज्ञानपूर्ण शब्दों, अमृतकणों को संचित करो तथा अपने हृदय में स्मरण करते रहो। केवल सुनो नहीं; किन्तु तदनुसार कार्य करने का प्रयास करो, क्योंकि फसल की वृद्धि के लिये, तैयार की गई धरती पर पानी बरसना अनिवार्य होता है। तुम्हें वर्षा के जल का संचय करना होगा, इसको एक तालाब में भरो तथा भली प्रकार निर्मित नहरों द्वारा उसको उन खेतों तक पहुंचाओ जो उसके लिये प्यासे हैं। तुम्हें उसको व्यर्थ नहीं बहने देना चाहिये और न तो नमक के सागर में जाने देना चाहिये। ये पण्डित प्राचीन विद्या के भण्डार हैं और मैं तुमको विश्वास दिला सकता हूं कि जिस भी विषय पर वे बोलें, वे भारतवर्ष की यथार्थ संस्कृति के पथ से एक बाल बराबर भी विचलित नहीं होंगे।

आज, यहाँ पर, मैसूर के वित्तमंत्री, जत्ती, महाराष्ट्र के कृषि मन्त्री, सावन्त एवं डाक्टर राम कृष्ण राव जैसे पार्लियामेंट के सदस्य तथा जनता

द्वारा चुने गये विधायक तुम्हारे बीच हैं। जब राजा दशरथ ने रामचन्द्र को राजतिलक देना चाहा, तब उन्होंने अपनी प्रजा के प्रतिनिधियों एवं अपनी सभा के पण्डितों से परामर्श किया था। उन्होंने देशवासियों के सम्मुख केवल अपनी वैयक्तिक इच्छा को ही नहीं; वरञ्च वशिष्ठ जैसे ऋषियों की, अपने विचार पर, प्रतिक्रिया को भी रखा। किन्तु, वर्तमान समय में, पण्डितों एवं राजनीतिज्ञों, धार्मिक प्रमुखों एवं शासकों का लगाव टूट गया है तथा प्रत्येक अपनी इच्छानुसार चलता है; दूसरे के विचार एवं भावना की कुछ भी परवाह नहीं करता है। दीर्घकालीन विदेशी शासन में ये पण्डित पुरानी सभ्यता के प्रतीक माने जाते थे। निस्सन्देह इसमें इसका बड़ा योगदान है। किन्तु उस शासन के समाप्त हो जाने पर भी उस सम्बन्ध को पुनः स्थापित करने के लिए कुछ नहीं किया गया है।

इन महान् विद्वानों की उपेक्षा के लिये अत्यधिक उत्तरदायी है शिक्षा प्रणाली जो तत्काल अर्थलाभ न देने वाली विद्वत्ता के प्रति घृणा की मनोवृत्ति को विकसित करती है। दूसरे कारण का भी मैं अवश्य उल्लेख करूं। वह है नैतिकता के सामान्य स्तर में गिरावट। जब सभी उच्छृंखलता के सरल पथ पर फिसल रहे हैं; जो उसके विरुद्ध परामर्श देते हैं, तथा अपरिहार्य विध्वंस के प्रति उसके शिकार होने वालों को सावधान करने वालों की उपेक्षा की जाती हैं तथा हंसी उड़ाई जाती है। सुख एवं सस्ते मनोरंजन की खोज में निमग्न देशवासी अतीत के परामर्षों एवं उत्कृष्ट आह्वानों के प्रति बहरे बन जाते हैं।

इसका एक दूसरा कारण है जिसकी मैं अवश्य निन्दा करता हूं। वह है वर्णों एवं धर्मों में घृणा। पण्डित अधिकांश रूपेण एक ही वर्ण के हैं तथा राजनीतिज्ञ साम्प्रदायिक घृणा की दृष्टि से उनके साथ व्यवहार करते हैं। यह घृणा तर्क पर आश्रित नहीं है। अज्ञानता एवं भय में इसकी जड़ जमी हुई है। इसलिये, यह घृणा अवांछनीय है।

वेद उपनिषद एवं शास्त्र सड़क पर सवारियों के संकेत के सदृश हैं, यदि उनको हटा दिया जाय, तो यात्रा मन्द एवं कठिन तथा दुर्घटनाओं से पूर्ण हो जाती है। हम लोग उनको विनष्ट नहीं कर सकते हैं। मानवता के हितार्थ उन्हें हमें सुरक्षित रखना पड़ता है। जाति का निश्चय जनम के आधार पर किया जाता है, यद्यपि किसी जाति के मनुष्य की योग्यता या अयोग्यता की जाँच उसके कर्म के आधार पर की जा सकती है। यदि जाति निर्णय गुण एवं कर्म के द्वयधार पर हो, जैसा उसके चरित्र एवं कार्यों से प्रदर्शित होता है, तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के प्रत्येक घड़ी एवं पल में हमें भिन्न-भिन्न प्रकार से सूचित करना पड़ेगा।

केवल घने अन्धकार में ही धरती समतल दिखाई देती है। दिन में उभड़ा हुआ या गड्ढा दिखाई देता है। उसी प्रकार, केवल अज्ञानता ही मनुष्यों की समता की बात कराती है। ज्ञान स्वाथ्य, साधन सम्पन्नता, मनोवृत्ति एवं सुरुचि में बुनियादी अन्तर को प्रगट करता है।

पुनः एक बार, साइ-संकल्प प्रकाश एवं पण्डितों को जनकल्याण के संरक्षकों को, धर्मनिर्पेक्षता एवं आध्यात्मिकता के क्षेत्रों में एक साथ लाभ लाने वाला है। यही कारण है कि यहाँ पर मन्त्री एवं विधायक इस मंच पर पण्डितों एवं शास्त्रियों के साथ हैं। इन दोनों के सहयोगपूर्ण कार्य के अभाव में, एक नूतन विश्व के निर्माण के प्रयत्नों ने कोई प्रगति या सफलता नहीं होगी। कौरवों के पास विजय के सभी अस्त्र-शस्त्र थे—सम्पत्ति, अस्त्र-शक्ति, मित्र, शत्रु के प्रति उन्मादपूर्ण घृणा, कर्ण———! किन्तु, वे सब धूल में मिल गये, क्योंकि उन्होने धर्म के उच्चतर मूल्यों के प्रति कभी ध्यान नहीं दिया, उन्होंने स्वय को उस ईश्वरीय अनुकम्पा से कभी नहीं सुसज्जित किया, जो विनम्रता एवं शान्ति के पथ पर चलने वालों के लिए आराक्षित रहती हैं। कृष्ण उनके सारथी नहीं थे; वे तो तुच्छतर वस्तुओं में विश्वास करते थे।

जब, देशवासियों के उत्थानार्थ एव इस देश की सन्तानों को शिक्षण के लिए शासकों द्वारा योजनायें बनाई जायें, तब इन पण्डितों द्वारा सुरक्षित एवं आचरित इस देश के प्राचीन ज्ञान की परामर्ष अवश्य की जाय, यह मेरी इच्छा है। जलयान की सूई को यह सीधा रखेगा। मैं चाहता हूँ कि उपनिषदों में निहित ज्ञान हर व्यक्ति को हस्तान्तरित किया जाय; विश्व के अधिकांश देशों में आजकल प्रचलित भोगोन्मुखीन शिक्षा के पूर्व भक्तिमुखीन शिक्षा अवश्य प्रदान की जाये। भक्ति वह आशक्ति या आकांक्षा है जो तुमको साधना के पथ पर चलाती है जो तुम्हें ज्ञान प्रदान करती है। विश्वास एवं दृढ़ता दोनों रखो तुम अवश्य विजय पाओगे।

प्रात: बेला से ही तुम लोग इस धूप में पड़े हो; इस पण्डाल में भारी भीड़ के लिए स्थान की कमी भी है; किन्तु इनसे तुम्हारा विश्वास एवं दृढ़ता कम्पित नहीं हुई हैं। इससे भी बड़ी कठिनाइयाँ एवं विध्वंशों से, जो तुम पर प्रवाहित हो सकते है, उनको अप्रभावित रखो। आँधी पेड़ के तने को कठोर बनाने में सहायता करती है। आपत्तियां तुम्हारे साहस को अवश्य गहन बनावें, तुम्हारी सहानुभूति को विस्तीर्ण करें, दृष्टिकोण को उदार बनावें तथा विश्वास को ऊँचा उठावें। मौसम कष्टदायक होने पर तुम्हारी साधना अवश्य घनीभूत हो। अच्छे मौसम में, चिन्तामुक्त मनोवृत्ति क्षम्य है; किन्तु खराब मौसम में हर सावधानी का महत्व है।

ये पण्डित सावधानियाँ जानते हैं तथा ये तुमको उनके विषय में बतायेंगे उन्हें भलीभाँति कोष में रखो तथा तदनुसार कार्य करो। आज तुमको मेरा यही संदेश है। प्रशान्ति विद्वान महासभा अपना कार्य कर्नाटक में फैलाने के लिए बाध्य तथा सावन्त के कथानुसार केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, किन्तु भारत के सभी राज्यों एवं विश्व के सभी देशों में प्रवेश करने को विवश है, क्योंकि ऋषियों का ज्ञान मानवता की वसीयत है।

४६ पंख संभालो और उड़ो

(स्थान—वृन्दावन, दिनाँक १५-४-६४)

कन्ठी कर्नाटक राज्य के शिक्षा-मन्त्री हैं। उन्होंने अभी भाषण दिया है। उन्हें ज्ञात है कि अपने देश के बालकों के लिये जिस शिक्षा की वे व्यवस्था कर रहे हैं वह इस तीव्र परिवर्तन शील एवं शीघ्र धड़कने वाले जगत में, जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए अपर्याप्त है। इन पंडितों ने अपनी विद्वत्ता, अपनी बुद्धिमत्ता को शान्ति की प्राप्ति के उपायों एवं प्रणालियों के लिये समर्पण कर दिया है इसलिए वे शिक्षा के क्षेत्र में कंठी के महत्वपूर्ण सहयोगी हैं। मुझे हर्ष होता है कि वह इस बात को मानते हैं।

धर्म शब्द "धारण" से सम्बन्धित है तथा एक ही धातु से लिया गया है। धारण का अर्थ हैं पहनना, वस्त्र के रूप में। धर्म भारत वर्ष का प्रथम वेष है। यह वह वेष है, जिसको भारतमाता अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए अपने स्तर की घोषणा करने के लिए, गर्मी एवं सर्दी से अपने को बचाने के लिए, अपनी बहनों के सामने एक मानदण्ड स्थापित करने के लिए धारण करती है। जब, दुरात्मा कौरव राजकुमारों ने द्रौपदी की 'साड़ी' पकड़ ली तथा उसके गौरव को कलकित करने की चेष्टा कर रहे थे, कृष्ण ने उनके कुचक्र को विफल कर दिया तथा उसके गौरव की रक्षा की। उस समय, धर्मराज ऐसे बैठे हुए थे, मानों उनको अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान नहीं है, भीम संशय में पड़े हुए थे कि अपने ज्येष्ठ भाई एवं उनकी पत्नी के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है; अर्जुन को अपने ही स्वार्थों का अधिक ध्यान था तथा नकुल एवं सहदेव प्रतीक्षा कर रहे थे तथा हानि एवं लाभ

को तोल रहे थे । किन्तु, भगवान् ने प्रतीक्षा नहीं की ! उनके अनुग्रह में तनिक भी विलम्भ या संशय नहीं हुआ ।

•

इस समय, भारतमाता उसी प्रकार की विपत्ति में है । जिस धर्म रूपी वस्त्र को वह शताब्दियों से धारण किये है, जो उसके स्वाभाविक रहन-सहन की अभिव्यक्ति है, उसे, अब, दुष्ट एवं अप्रतिष्ठित हाथों ने पकड़ लिया है । वे उसको अस्वाभाविक ढंग से सजाना चाहते हैं जैसा उनकी पहलगामी उन्मत्तता उन्हें आदेश देती है । इसलिये, दुष्टों से पीड़ित का उद्धार करने के लिये कृष्ण को पुनः आना पड़ा है ।

द्रौपदी को अपमानित करने के लिये जो अपनी सामर्थ्य पर भरोसा करते थे, कृष्ण ने उनके खोखलेपन को खोल दिया तथा द्रौपदी की रक्षा का भार जिनको सौंपा गया था, उनकी दुर्बलता को भी प्रगट कर दिया । अब भी, धर्म को अपमानित करने के प्रयत्नों को मुझे विफल बनाना है तथा जो धर्म के परम्परागत रक्षक एवं समर्थक हैं, उनकी सहायता के लिये मुझे खड़ा होना है ।

प्रत्येक वस्तु का अपना धर्म है । पानी का धर्म, स्वभाव एवं कार्य चलना है, अग्नि का धर्म जलाना एवं भस्म करना है, चुम्बक का धर्म आकृष्ट करना एवं अपने समीप खींचना है । इनमें से प्रत्येक अपने धर्म का बिना परिवर्तन के, पालन कर रहा है । सूर्य मण्डल एवं आकाश के नक्षत्र भी इसमें शुमार हैं । चिति या चैतन्य से युक्त वस्तुओं में, पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े, एवं पक्षियों, जो अण्डज हैं या जो स्तन-धारी है;—सभी ने समय के अप्रभावित रहते हुए अपने विशिष्ट धर्मों को भण्डार में रखने की चेष्टा की है । किन्तु मनुष्य ही एक मात्र जीवधारी प्राणी है जो गिर पड़ा है तथा नीचे ही फिसलता जा रहा है, यद्यपि उसकी बुद्धि जड़ एवं तुच्छ जीवों से अति-चेतना एवं विश्व-

चेतना तक उड़ान भरती है। साधकों की अनेक पीढ़ियों के अनुभव व्यावहारिक जीवन यापन के उदाहरणों में निहित हैं। उन्हें हम सामूहिक रूप से 'शास्त्र' कहते हैं। आज उनकी उपेक्षा की जाती है तथा विशद परिणाम में नूतन विषदन्ती औषधियों की संस्तुति की जाती है तथा काम में लायी जाती हैं। साधक जिस सन्तोष एवं आनन्द को ढूंढ़ते थे वह मानवीय पकड़ या मुट्ठी से यदि अति दूर-दूर चले गये हैं, तो कोई विस्मय नहीं है।

उदाहरणार्थ, धर्म कहता है, 'सत्यं वद' एवं 'धर्मं चर'। सत्य बोलो एवं धर्म का आचरण करो। "सत्यान्नास्ति परो धर्मः"—समाज की स्थिरता के साधनों में, व्यक्ति के उत्थान में अधिक सहायक साधनों में सत्य से श्रेष्ठतर कोई नहीं है। सत्य को छिपाना, या इसे दूषित करना, या इसे अस्वीकृत करना या इसे विकृत करना—ये सब कायरता के लक्षण हैं। कोई भी निर्भय व्यक्ति सत्य के चेहरे को ढकने का काम नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त, तुम इस वैदिक उपदेश को अवश्य ध्यान में रखो—'धर्मं चर'—'धर्म का अभ्यास करो'। इसे जानना ही पर्याप्त नहीं है, तुम इस पर अवश्य चलो। तुम अपने प्रत्येक क्षण को विचार, वाणी एवं कर्म से भरो जो तुम्हारी धर्म चेतना को झलक दे सके। "शीलम् परं भूषणम्", जैसी उक्ति में शील कहे जाने वाले जीवन का वह सर्वोच्च लक्षण है।—"शील सबसे मूल्यवान रत्न है।"

तुम अपने जागृत समय के प्रत्येक क्षण की अवश्य जाँच करो कि क्या तुम धर्म के उपदेशों का पालन करते हो अथवा उससे विचलित हो रहे हो। इस समय, धर्म दूसरों से लाभ उठाने का एक सरल बहाना मात्र है, दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा करने का एक अवसर नहीं! दूसरों को तुम धर्म का स्मरण कराते हो जब उनसे कुछ लाभ निचोड़ने की तुम कामना करते हो। धर्म द्वारा प्रदत्त केवल अधिकारों का ही तुम स्मरण नहीं रखो, किन्तु जो कर्त्तव्य लादता है उसे भी अवश्य स्मरण रखो।

धर्म की अवहेलना करने का प्रलोभन अहंकार से एवं मिथ्या मूल्यों की स्वीकृति से उत्पन्न होता है। निकृष्ट कामनाओं को सन्तुष्ट करने की इच्छा ही अधर्म का मूल है। यह इच्छा तुम पर मक्कारी से, चुपके से, अधिकार कर लेती है जैसे रात में एक चोर, अथवा जैसे, तुम्हारी रक्षा के लिये आया हुआ साथी, अथवा जैसे, तुम्हारी सेवा के लिए आया हुआ नौकर, अथवा जैसे तुमको सतर्क करने के लिये आया हुआ सलाहकार (तुम पर अधिकार जमा लेता है)। हाय ! दुष्टता के पास सहस्रों उपाय हैं तुम्हारे हृदय पर अधिकार करने के लिये। प्रलोभन से तुम सदैव सतर्क रहो। इच्छा तुम्हारी चेतना में एक छेद करती है, प्रवेश करती है तथा स्वयं प्रतिष्ठित हो जाती है, अपने अण्डों को गुणित करती है तथा तुम्हारे उस व्यक्तित्व को दुर्बल कर देती है जिसका निर्माण तुमने परिश्रम एवं सावधानी से किया था। अब वह दुर्ग तुम्हारे अधिकार में नहीं रह गया। इन आन्तरिक शत्रुओं द्वारा बनाये गये कठपुतली मात्र तुम रह गये हो। जब कभी तुम स्वयं पुनर्निर्माण करने की चेष्टा करते हो तब वे ढांचे की जड़ खोदने लगते हैं तथा तुमको इसे पुनः पूर्ण तौर से बनाना पड़ता है। वे इस सीमा तक हानि पहुंचाते हैं।

इस अहंकार को जीतने के लिये किसी कठोर व्यायाम प्रणाली या स्वाँस-निरोध आवश्यक नहीं है, और न तो संश्लिष्ट पाण्डित्य की ही आवश्यकता है। गोपियां इस सत्य को पुष्ठ करती हैं, वे केवल ग्रामीण थीं तथा गहन अध्ययन के निष्कर्षों ने उन्हे स्पर्श तक भी नहीं किया था। आध्यात्मिक उत्थान के विज्ञान की उनकी अज्ञानता पर नारद को एक बार इतना आश्चर्य हुआ कि वे उनके मध्य जाने एवं उन्हें ज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिये स्वेच्छा-पूर्वक तत्पर हो गये। बृन्दावन में प्रवेश करने के उपरान्त उन्होंने देखा कि सड़कों में दूध या दही बेचने वाली ग्वालिनें अपने सामान का नाम पुकारना भूल गई थीं तथा वे "गोविन्द, नारायण' का नाम उनकी जगह लेती थीं। वे परमात्म-चेतना में इस प्रकार विलीन हो गईं कि उन्हें यह पता भी नहीं हुआ कि वे सब दूध बेच चुकी थीं, तिस पर भी वे घूम रही थीं। भगवान् का नाम पुकारती हुई क्योंकि बृन्दावन की धूल भी उनके लिये अति पावन थी। उनमें

कोई विषय-वासना नहीं थी—ऐन्द्रिक सुख की कोई इच्छा नहीं थी। इसलिये, उनमें अज्ञान नहीं था। तब, नारद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनको वह शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं है, जिसकी उन्होंने योजना बनाई थी। उन्होंने उन गोपियों से सर्वव्यापी कृष्ण की उस आकाँक्षा एवं उस दृष्टि की शिक्षा देने के लिये प्रार्थना की।

उदाहरणार्थ, सुगुना नाम की एक गोपी थी। उसमें कृष्ण सम्बन्धित विचारों के अतिरिक्त कुछ अन्य विचार नहीं थे। प्रतिदिन, सायंकाल वृन्दावन में यह सामान्य चर्चा थी कि प्रत्येक गृहिणी नन्द-भवन के दीपक की ज्वाला से अपना दीपक जलावे; क्योंकि उनका विश्वास था कि सबसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ के दीप-ज्वाला से प्रकाश प्राप्त करना मंगलदायक है। सुगुन भी अपना दीपक लेकर नन्द के घर गई। घर में पहुंचने पर वह स्पन्दन एव आनन्द में खो गई, उस भवन को देखते ही जहाँ कृष्ण ने अपने बचपन के दिन व्यतीत किये थे, तथा जहां पर उनकी क्रीड़ा एवं प्रलाप ने ग्वाल वालों एवं बालिकाओं को खींच लिया था।

वहाँ पर, अपने बिना जलते दीपक के साथ वह बहुत समय तक खड़ी रही। वह विशाल तेल दीप के निकट थी। वह केन्द्रीय भवन को आलोकित कर रहा था। वह दीपक को लौ के पास पकड़े थी, किन्तु पर्याप्त निकट नहीं। उसकी अंगुली सीधी लौ पर थी। उसे यह ज्ञान नहीं था कि लौ से उसकी अंगुली जल रही थी। वह कृष्ण-चेतना से इतना अधिक भर गई थी कि उसे पीड़ा की जानकारी भी नहीं हो सकी। यशोदा ने ही उसकी विपत्ति को देखा और उसे हवाई किले बनाने से या स्वप्न (कल्पना) से जगाया! उसके लिये, भवन कृष्ण से सजीव था, चाहे उसकी दृष्टि जहाँ भी मुड़ती थी। यह 'तन्मयता' या एकरूपता प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य प्राप्त करनी है। पक्षी के शिशु को घोंसले में पड़े रहने से कोई लाभ नहीं, उसकी पांखें बढ़ें और वह आकाश में उड़े। मनुष्य के धूल में रेंगते रहने से कोई

लाभ नहीं; उसे सुदूर लक्ष्य को देखना चाहिये, स्पष्ट एवं भव्य। उसे अपने पंखों का सहारा लेकर उड़ जाना चाहिये।

इस क्षेत्र में भारतवर्ष समस्त मानवता का गुरु है। यह उसका विशिष्ट स्थान है। यदि शरीर परमेश्वर का देवालय है, तो विश्व परमात्मा का शरीर है। इसलिये, वह सभी देशों एवं जातियों में आनन्द स्थापित करना चाहता है। यही कारण है कि मैं यह सम्भाषण करता रहता हूं तथा देश के सभी अंचलों से पण्डितों को लाता हूं तुमको सम्भाषण करने के लिये।

४७ उसका आवासीय पता

(स्थान–मालेश्वरम, दिनांक १६–४–६४)

बंगलौर की तेलुगु विज्ञान समिति ने प्रशान्ति विद्वान महासभा के तत्वावधान में वेदों एवं शास्त्रों में स्थापित व्यावहारिक अनुशासनों का प्रचार करने वाले इन पंडितों की महत्ता एवं सेवा भावना को मान्यता देकर बहुत ही उत्तम कार्य किया है। समस्त मानवता के लिये ये अमूल्य आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं। शास्त्र का अर्थ है जो 'आदेश देता है' आज्ञा देता है या 'साधिकार निर्देश करता है।' वे तुमको वैसा करने को बाध्य नहीं करते हैं जैसा वे आदेश देते हैं; किन्तु वे तुम्हारी क्षमता एवं कर्म का स्मरण कराते हैं। कहावत है, "ज्ञापकम्, न तु कारकम्"। स्मरण कराने की अत्यावश्यकता है; क्योंकि मनुष्य अपनी ईश्वरता को, जो वह सचमुच में है, भूल गया है। एक समय यह अनुभव में जगमगाती एवं चमकती थी; किन्तु अब, वह किसी व्यक्ति को उस उदात्त निश्चयात्मकता से उत्साहित नहीं कर रही है। वेदमाता परित्यक्त कर दी गई है तथा नकली संरक्षकों एवं पाखण्डी रखवालों ने देशवासियों के हृदयों को विजित कर लिया है।

रेमिल्ला सूर्यप्रकाश शास्त्री ने अपने भाषण में अभी बताया है कि वैदिक ऋचा के अनुसार सूर्य जीवन का स्रोत, जीवन शक्ति एवं मौन विनाशक बताया गया है। किन्तु, उन्होंने व्यक्ति एवं समाज के जीवन में अपेक्षाकृत महत्तर कार्याभिनय करने वाले आन्तरिक सूर्य, बुद्धि के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया। **"चक्षो सूर्यो अजायत",—"सूर्य पुरुष के नेत्र से उत्पन्न हुआ था"**, पुरुष सूक्त का यह कथन है। **बुद्धि दृष्टि को आलोकित करती है।** यह

नेत्र क्या है जिसकी चर्चा की जाती है ? **यह ज्ञाननेत्र है या शास्त्रनेत्र है,** सही दृष्टि प्रदान की गई है।

शास्त्र तुमको सरलता पूर्वक एवं विना हिचक "यथार्थता" के प्रति निर्देशित करते हैं। तुमने लोगों को आकाश में टिमटिमाते द्वितिया के चाँद की ओर संकेत करते हुए एवं कहते हुए सुना होगा, "वहाँ आम्रवृक्ष के ठीक सिरे पर, विद्युत-प्रेषक से एक गज दूर, उस चोटी पर, उसके बायें ओर।" वह केवल एक सहायता है, जो शास्त्र **सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान** के प्रति प्रदान करते हैं। तुम्हें पेड़ तक, चोटी तक, विद्युत-प्रेषक तक अपने नेत्र को चलाना पड़ेगा तथा चन्द्रमा को स्वयं देखना पड़ेगा। शास्त्र सत्य की ओर तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करते हैं तथा सरल स्थितियों से तुमको वहाँ तक ले जाते हैं।

अपने स्व के विषय में जानना एक कठिन कर्म है। क्यों ? उस भोजन की बात लो जो तुम अपने मुख से स्वयं खाते हो। अपने पेट में तुम इसे अनुभव करते हो तथा उसके पश्चात् तुम यह अनुभव नहीं करते हो कि प्रत्येक स्थिति में क्या होता है। इसके विषय में विशिष्ट उपाय को जाने बिना, तुम उस म्यान के विषय में कैसे जान सकते हो जो तुमको बन्द करती है—अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय ? अहंकार के मकरीजाल से, कामना के धूलकण से, लोभ एवं ईर्ष्या के कज्जल से अपनी बुद्धि या धी शक्ति को मुक्त या स्वच्छ करो, तब यह **स्वरूप, आभ्यान्तर सत्य** को प्रकट करने के लिये उपयुक्त अस्त्र हो जायेगा। **स्वयं को जानो, अभ्यान्तरिक चालक, अन्तर्यामिन् को जानो**—सभी धर्म-ग्रन्थों का यही परामर्श है। क्योंकि, जब तक तुम उस ज्ञान से सन्नद्ध नहीं हो, तब तक तुम उस जलयान के सदृश हो जो प्रचण्ड सागर में कम्पास विहीन चलता है।

मैं तुम लोगों को यह अवश्य बता दूं कि शास्त्रों का पाण्डित्य तुम्हारी सहायता नहीं करेगा। पाण्डित्य एक भयावह वस्तु है जो तुमको सदैव अपने

अहं का ध्यान कराता रहता है, न कि इसे पराभूत करने में तुम्हें सहायता देता है। किसी व्यक्ति की आलमारी में यदि तुम क्रम से रखी गई **बोतलों** को देखोगे, तब तुम यह निष्कर्ष निकाल सकते हो कि वह जीर्ण रोगी है जो औषधियों का अभ्यस्त है। उसी प्रकार, यदि किसी की आलमारी में क्रमवद्ध रखी गई पुस्तकों को देखोगे तो समझोगे कि यह जीर्ण रोगी है जो संशय, नैराश्य एवं घबड़ाहट से पीड़ित है तथा उन दवाओं का अभ्यासी है जिन्हें वह समझता है कि वे उसको निरोग कर देंगी। सभी जीर्ण रोगियों के सदृश, ये दोनों भी रंचमात्र उभाड़ने पर अपनी बीमारी का एवं स्वयं को निरोग करने की प्रणालियों का टेढ़ा-मेढ़ा हिसाब देना प्रारम्भ कर देंगे।

दृढ़ विश्वास का अभाव ही लोगों को दवाओं एवं पुस्तकों की ओर चलाता है। राधा तथा कृष्ण में उनके विश्वास की एक कहानी है। वृन्दावन के भद्र पुरुष कृष्ण की निन्दा करने में आनन्द लेते थे व उनके उत्तराधिकारी इस समय भी जन्म ले चुके हैं। राधा के सतीत्व या सदाचरण की जाँच के लिये उन्होंने एक परीक्षा की व्यवस्था की। उसे सौ छिद्रों वाला एक मिट्टी का घड़ा दिया गया तथा जमुना से अपने घर तक, उसमें पानी भर कर लाने के लिये कहा गया। वह कृष्ण चेतना से इस प्रकार आपूर्ण थी कि वह घड़े की दशा को कभी नहीं जान सकी। उसने घड़े को नदी में डुबोया और अपनी प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास के साथ, प्रतिदिन की भाँति वह कृष्ण का नामोच्चार करती रही। हर एक बार जब वह कृष्ण का नाम लेती थी, तब एक छिद्र बन्द हो जाता था। इस प्रकार जितने समय में घड़ा पानी से भरा, उतने समय में वह सम्पूर्ण हो गया! (छेद रहित हो गया) उसके विश्वास का वह माप था। **विश्वास निर्जीव पदार्थों को भी प्रभावित कर सकता है।**

प्राचीनों ने इस भावना को पैदा करने के लिये एव डर एक अस्त्र रूप में उसके द्वारा **सत्य** को प्राप्त करने के लिये एक **राजपथ** बनाया है। तब, कंटीले प्रदेशों एवं दलदली गलियों में क्यों भ्रमण किया जाय? निर्धारित

नियमानुसार **जप** एवं **ध्यान** की **साधना** का अभ्यास करो, इसके विषय में सब कुछ जानो, इन पण्डितों से एवं अन्य अनुभवी व्यक्तियों से। फूलों से पूजा एवं माला से जप केवल तभी तक करो, जब तक तुम उच्चतर प्रयासों के लिये तत्पर नहीं हो जाते हो। तुम परमात्मा को पौधों से निकले फूलों को नहीं चढ़ाओ, क्योंकि वह तो पौधों को पुरस्कृत करेगा, तुमको नहीं ! **परमेश्वर तुमसे चाहता है कि तुम अपने हृदय-सरोवर में खिले हुए कमल को, तथा अपने लौकिक जीवन के वृक्ष पर पके हुए फलों को अर्पित करो; न कि बाजार में प्राप्य कमल एवं फलों को !**

तुम लोग प्रश्न कर सकते हो, "हम लोग परमेश्वर को कहाँ पा सकते हैं ?" अच्छा, उसने अपना पता भगवद् गीता के १८ वें अध्याय के ६१ वें श्लोक में बताया है। इसे पलटो एवं अंकित कर लो। "**ईश्वरः सर्वभूतानाम हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति, 'हे अर्जुन ! परमेश्वर सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता है।' अब, इसे जानते हुए तुम किसी प्राणी को कैसे उपेक्षा पूर्वक नीचा देख सकते हो, या उससे कैसे घृणा करने में लीन हो सकते हो, या कैसे गालियां देने में आनन्दमग्न हो सकते हो ? हर व्यक्ति ईश्वरीय उपस्थिति है, तथा हर व्यक्ति ईश्वरीव गुणों से संचालित है। प्रेम, सम्मान, मित्रता,—यही तुमसे प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त करने के योग्य है। पूर्ण परिमाण में इन्हें प्रदान करो।**

वैराग्य के तुच्छ बहाने से या विवेक के एक करण मात्र से भगवान् के अनुग्रह को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जानो एवं कार्य करो; समझो एवं अनुभव करो। यह कठोर पथ है। उसके संकल्प के सम्मुख स्वयं को समर्पण कर दो।

जीवन एक महा यज्ञ है। परमात्मा को इसकी अध्यक्षता करने दो। उसकी उपेक्षा मत करो। यह भोग भूमि नहीं है, यह त्याग भूमि, योग भूमि,

कर्म भूमि है ! देखो, मेंह जो तुम्हें जल बरसाने की धमकी दे रहे थे तथा भीड़ को अस्त-व्यस्त करना चाहते थे, वे किस प्रकार दूर चले गये। ह्वाइट फील्ड से जब मैंने प्रस्थान किया, लोगों ने मुझसे कहा, "इस संध्या को कोई सभा नहीं हो सकती है; बंगलौर में भी भारी वर्षा होगी।" मैंने उनसे कहा, "वर्षा ने किसी भी उस सभा में विघ्न नहीं डाला, जहाँ मैंने बोला है।" बादल एक तरोताजा करने वाली आँधी में द्रवित हो गये जिसने तुम्हारे ऊपर मधुर मंहकते फूलों को उन वृक्ष पंक्तियों से बरसाया—बस यही सब है। **उस प्रेम, उस संगठित कार्य एवं प्रार्थना की भावना को अपनाओ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि इस देश में पुनः रामराज्य स्वयं स्थापित होगा।**

४८ उपनयन

(स्थान—प्रशान्ति निलयम, दिनाँक १६–५–६४)

आज शंकर जयन्ति है—शंकराचार्य के अवतरण का स्मृति दिवस है। वे धर्म की पुनर्स्थापना करने के लिये आये थे। इस मंच पर बैठे हुए बालकों को ब्रह्मोपदेश देने का भी यही दिवस है। ये बंगाल, बम्बई, हैदराबाद एवं बंगलौर से आये हैं। उच्चतर आध्यात्मिक जीवन में उन्हें दीक्षा देने के लिये मैंने शंकर जयन्ति दिवस को चुना था, क्योंकि शंकराचार्य आज भी विश्व में उन लाखो साधकों के लिये एक प्रेरणा हैं, जो ब्रह्माण्ड के सत्य को एवं इसकी आधार भूत एकता को जानने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे अपने ही उत्तम सौभाग्य के कारण यहाँ पर **मेरी उपस्थित में, मेरे ही द्वारा दीक्षित होने** का सौभाग्यशाली अवसर पाये हैं।

ब्रह्मोपदेश का उत्सव उपनयन है, क्योंकि इस शब्द का अर्थ है 'समीप ले जाना', युवा जिज्ञासु को ब्रह्मन् के समीप ले जाना। अर्थात उसको ब्रह्मपद-ब्रह्मजिज्ञासा से परिचित कराना है। यह उन संस्कारों में से एक है जो व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण करते हैं, मन को सुधारते हैं, इसे स्वच्छ करते हैं एवं इसे पुनर्निर्माण करते हैं। इसके प्राप्तकर्त्ता को यह द्विज, दो जन्मा बनाता है! पहले, बालक इस संसार में जन्म लेता है; अब, वह साधक-जगत में पैदा हुआ है। वह एक ब्रह्मचारी बनता है—ब्रह्मन् की ओर चलने वाला व्यक्ति बनता है। इसलिये, इन बालकों के जीवन में यह बहुत महत्वपूर्ण दिन है वह दिन है जिसको वे अपने जीवन में चिरकाल तक हर्ष एवं कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते रहेंगे। यह वह दिन है जब उनका हृदय ईश्वरोन्मुख हुआ है। इसके पश्चात्

उन्हें परमेश्वर के पास से न भागने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। यह एक महान् उत्तरदायित्व है।

दीक्षा गायत्री मन्त्र के उपदेश द्वारा दी गई। यह मन्त्र एवं विश्वव्यापक प्रार्थना है जिसका प्रयोग सब देशों एवं धर्मों के मनुष्यों द्वारा किया जा सकता है। क्योंकि वह उस **ऐश्वर्यमयी शक्ति** का ग्राह्वान करती है जो सूर्य एवं तीनों शब्दों को व्याप्त करती है—उत्तिष्ठत, जाग्रत एवं वरान्निबोध—उठो, जागो एवं बुद्धि को बलवान बनाओ, ताकि यह गहन साधन की ओर ले चले एवं साधना से सफलता प्राप्त हो सके।

प्रत्येक अल्प क्षण या घटना ध्वनि में फलित होती है; केवल तुम उसको सुनने में समर्थ नहीं होते हो, क्योंकि तुम्हारे कान का रेंज (क्षेत्र) सीमित है। एक पलक का दूसरी पलक पर गिरना भी ध्वनि करता है तथा एक पंखुरी पर ओसकरण का गिरना भी ध्वनि करता है। शान्ति को भग करने वाला कोई तुच्छ उद्वेग भी अनिवार्यतः ध्वनि उत्पन्न करता है। आदि स्फुरण द्वारा एक ध्वनि उत्पन्न हुई। वही ब्रह्मन् को स्वयंभू माया द्वारा आच्छादित करने में फलित हुई। वही ध्वनि प्रणव या ओ३म् है। गायत्री मन्त्र उसी का विस्तारण है। इसलिये, यह, अब पूजनीय एवं मूल्यवान समझी जाती है कि आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश, इसके ध्यान द्वारा प्राप्त किया जाता है।

इस मन्त्र की ध्वनि उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना इसका अर्थ है। एक विषैला सर्प भी संगीत द्वारा शान्त किया जाता है। नाद में इतना शामक गुण है! पालने में पड़ा शिशु लोरी के गाते ही रुदन बन्द कर देता है। इसका भले ही कोई अर्थ न हो, यह चाहे विचारहीन लय हो या स्वर समूह हो, किन्तु यह शान्त कर देती है, नाड़ियों को भी शान्त कर देती है तथा नींद बुलाती है। गायत्री का अर्थ भी सरल एवं गम्भीर है। यह कृपा या क्षमा नहीं याचती है।

यह स्पष्ट बुद्धि की माँग करती है, ताकि उसमें **सत्य**, सही-सही एवं बिना किसी विकृति के झलक सके ।

ब्रह्मचारी ने साधना के जीवन में स्वयं शपथ ली है । अब, साधना की क्या आवश्यकतायें हैं ? प्रथम, **विश्वास**-वह विश्वास जो अज्ञानियों की गालियों को सहन कर सके वह संसारियों के द्वारा छिद्रान्वेषण को तथा तुच्छ विचार वालों के उपहास को भी सहन कर सके । जब, कोई गाली देता है, तुम अपने भीतर स्वयं इस प्रकार तर्क करो :—क्या वह मेरे शरीर को गाली दे रहा है ? अच्छा, वह वही कर रहा है जो मैं स्वय करना चाहता; क्योंकि मैं भी इस शरीर के प्रति मोह से भागना चाहता हूं । क्या वह आत्मा को गाली दे रहा है ? अच्छा, वह असम्भव कार्य कर रहा है, क्योंकि आत्मा तो विचार एवं शब्द के परे है; यह स्तुति या निन्दा से अप्रभावित है । स्वयं से यों कहो, "मेरा आत्मतत्व निश्चल एवं निर्मल है ।" और अपना काम करो । **द्वितीय,** उत्थान एवं पतन, हानि या लाभ, हर्ष या शोक के प्रति चिन्ता मत करो । यदि तुम केवल सतर्क रहो, तो यह सब एक समतल धरातल हो सकता है । तुम कुछ वस्तुओं को हानि एवं कुछ अन्य को लाभ मानते हो । तुम किसी वस्तु की तृष्णा करते हो तथा उसे प्राप्त करने पर इसे हर्ष कहते हो तथा नहीं पाने पर इसे शोक कहते हो । तृष्णा को काट दो, फिर हर्ष से शोक की ओर तनिक भी नहीं भूलोगे । **तृतीय** बुद्धि दौड़ाओ **तथा इस सत्य का विश्वास करो—'सर्व ब्रह्ममयम्'** ।

तुमको विदित है कि पंचभूत हैं । उनके परिवर्तन एवं संयोग से विश्व की रचना होती है जिसे **'प्र-पंच'—पंचनिर्मित** कहते हैं । पृथ्वी तत्व में अधिकतम पाँच गुण हैं । इसलिये यह सबसे अधिक स्थूल है । अपने विशिष्ट गुण **गन्ध** को एवं अन्य चार-**स्पर्श**, रस, **रूप** एवं **शब्द** को धारण करती है । दूसरा जल तत्व है जिसमें केवल चार तत्व हैं—इसमें विशिष्ट एवं निजी गुण **रस** एवं अन्य तीन-**स्पर्श, रूप** एवं **शब्द** हैं । इसलिये, यह पृथ्वी की अपेक्षा सूक्ष्मतर है । अग्नि और भी सूक्ष्मतर है, क्योंकि, अपने विशिष्ट गुण **रूप** के अतिरिक्त इसमें केवल

अन्य दो गुण, शब्द एवं **स्पर्श** हैं । वायु तत्व में उसका विशिष्ट गुण स्पर्श है तथा एक और गुण, **शब्द** है । अन्त में, हल्के से हल्का एवं पाँचों में सूक्ष्मतम, आकाश है । इसमें केवल एक ही इसकी निजी विशिष्टता है, **शब्द** । अब, परमात्मा इस आकाश से भी सूक्ष्मतर है । इसलिये वह सर्व-व्याप्त है, आकाश से भी अधिक एवं आकाश से भी अधिक व्यापक वस्तु से भी अधिक व्यापक है । उसका स्वभाव समस्त मानवीय शब्दकोषातीत एवं समस्त मानवीय गणितातीत है । अपनी बुद्धि में यह विश्वास सुसंस्थापित कर लो ।

चतुर्थः साधना में दृढ़ बनो । एक बार इसका निश्चय कर लेने पर कभी त्याग नहीं करो । बस-मोटर गाड़ी चलते समय, धूल बादल के सदृश पीछे बहती है । केवल एक धक्के के साथ जब वह रुकती है, तब धूल यात्रियों के चेहरों पर छा जाती है । इसलिये, चलते रहो,**साधना में दृढ़तापूर्वक लीन हो । तब, दृश्य जगत की बादली धूल तुम्हारे बदन पर नहीं छायेंगी ।**

शंकराचार्य धर्मस्थापन के कार्य हेतु आये थे; किन्तु, उन्होंने संकीर्ण सम्प्रदायवादियों के विरुद्ध या जंगली धर्मवादियों के विरुद्ध, जो उनका विरोध करते थे, या उन आलोचकों के विरुद्ध, जो कृत्रिम बौद्ध के रूप में उनकी निन्दा करते हैं, युद्ध नहीं छेड़ा । उन्होंने तर्क द्वारा, निश्चय कराके, एवं धर्मोपदेश के द्वारा उनको जीता । उन्होंने अपने प्रतिद्वंदियों को अपने मतों को अपनी सर्वोत्तम क्षमता के साथ प्रस्तुत करने के लिये अवसर दिया तथा अपने दृष्टिकोणों को स्पष्ट करने के लिये उनकी सहायता भी की ।

वर्तमान कलियुग में धर्म की रक्षा केवल बोध द्वारा ही की जा सकती है । यही कारण है कि मैं, बोध में उपदेश द्वारा पुनर्निर्माण के इस कार्य में लीन हूं ।

मिट्टी की ऊपरी सतह पर फेंके गये बीज नहीं उगते हैं । तुम्हें उन्हें मिट्टी के नीचे करना पड़ता है । उसी प्रकार, ऊपरी सतह पर डाला गया बोध

अंकुरित नहीं होगा, न ज्ञान के वृक्ष रूप में बढ़ेगा और न विवेक रूपी फल देगा। इसे हृदय में आरोपित करो, उस पौधे को प्रेम से सींचो, विश्वास एवं साहस की खाद डालो; भजन एवं सत्संग की औषधियों द्वारा कीटाणुओं को दूर रखो, ताकि तुम अन्त में लाभ उठा सको। अब तक, तुमने साधना प्रारम्भ नहीं की है; तिस पर भी तुम शान्ति मांगते हो। तुम ईश्वरानुकम्पा मांगते हो। यह कभी, कैसे सम्भव है? प्रारम्भ (साधना) करो! तब तुमको सब कुछ दिया जायेगा।

जिस वस्तु के लिये भी तुम प्रार्थना करते हो, परमेश्वर तुमको वही प्रदान करता है। इसलिये, सावधानी रखो। उचित वस्तुओं की मांग करो। एक व्यक्ति था, उसके चार स्त्रियां थीं। अपने व्यापार से सम्बन्धित किसी काम से वह बम्बई गया। उसने बम्बई से उन सबको लिखा कि उनमें से प्रत्येक जो वस्तु चाहती है, उसे वह लाने के लिये तैयार है। इसलिये, सबने उसको लिखा और जो वस्तु वे चाहती थीं उसकी एक सूची भेज दी। पहली स्त्री ने अपने स्वास्थ्य के लिये कोई पौष्टिक दवा-टानिक की मांग की। उसने कुछ कम्बलों एवं गरम कपड़ों की भी माँग की ताकि उसके बीमार पड़ने पर वे काम आयें। दूसरी स्त्री आधुनिकतम शैली की कुछ साड़ियां चोलियों के टुकड़े, बम्बई टाइप के आभूषण तथा ऐसी अनेक सजावट की सामग्रियों को चाहती थी। तृतीय ने अपने लिये कुछ धार्मिक पुस्तकें, ज्ञानेश्वरी, अभंग, भक्तिविजय आदि जो बम्बई की पुस्तकीय दूकानों में प्राप्य हों, तथा पंढरीनाथ, भवानी, साइ बाबा आदि के चित्रों को लाने के लिये उससे कहा। चतुर्थ स्त्री की कोई सूची नहीं थी। उसने केवल इतना लिखा, "आप शीघ्र एवं सकुशल वापस आवें। मेरे लिये इतना ही पर्याप्त है।" उसको कुछ भी नहीं मिला सिवाय उसके (पति के) प्रेम के। अन्य सबको बड़े-बड़े वण्डल मिले जिनमें उनकी लिखी वस्तुएं थीं।

अतएव, मांगने एवं प्रार्थना करने के पूर्व भली भांति विचार करो एव स्पष्टतः निर्णय करो।

मैं जानता हूँ कि तुम लोग खाने-पीने में कितने व्यवस्थित हो। तुम लोग शरीर की तनिक अच्छी देखभाल रखो। मैं इसकी निन्दा नहीं करता हूं। मैं केवल इतना चाहता हूँ कि तुम लोगों को समान रूपेण आत्मा की भी अच्छी देख भाल करनी चाहिये। ध्यान एवं जप की एक खूराक प्रातःकाल के नाश्ते रूप में लो, पूजा एवं अर्चना को दोपहर के भोजन रूप में, कुछ सत्संग या सत-चिन्तन या सदग्रन्थ प्रणयन या नाम लिखना अपराह्न की चाय एवं हल्की खाने की वस्तुओं के रूप में, एक घंटा भजन सायंकालीन भोजन के रूप में एवं दस मिनट का मनन सोने जाने के पूर्व एक प्याला दूध के रूप में ग्रहण करो। यह भोजन प्रणाली तुम्हारे अन्तस्थ जीव (आत्मा) को सुखी एवं स्वस्थ रखने के लिये पर्याप्त है।

आज, तुम लोगों को यही मेरा परामर्श है।

४६ जीव एवं देव

(स्थान प्रशान्ति निलयम, दिनांक–१७-५-६४)

एक टिन से दूसरे टिन में तेल उड़ेलते समय तुम्हारा हाथ बहुत दृढ़ रहना चाहिये तथा जिस टिन से तेल उड़ेलते हो वह नहीं हिलना चाहिये; न तो जिस टिन में भरते हो वही हिलना चाहिये, क्योंकि, इससे तेल धरती पर फैल जायेगा। **तुम्हें निश्चल होना चाहिये, तभी तुम बोध को अपने हृदय में सीधे** स्वीकार कर सकते हो।

अब, कुछ लोगों का कथन है कि जीव, जीव ही रह जायेगा तथा देव, देवही रहेगा; दोनों कभी एक नहीं होंगे या लय नहीं होंगे। यदि यही सत्य है तो जप, ध्यान, सद्-कर्म तथा शास्त्रों एवं ऋषियों द्वारा संस्तुत अन्य अनेक साधना से क्या लाभ है? **इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नर, नारायण हो सकता है; त्वम्, तत् हो सकता है।** उपनिषदों का यही सिद्धान्त है तथा ऋषियों का यही अनुभव है।

एक बार, अद्वैतवादियों एवं द्वैतवादियों में झगड़ा पैदा हो गया। अद्वैतवादी कहते थे कि **जीवि** सचमुच परमात्मा है, जो स्वयं को उस नाम एवं रूप से मिथ्या एकरूप मानता है, जिसको वह धारण किये हुए दिखाई देता है। द्वैतवादी कहते थे कि **जीवि, देव** से नितान्त पृथक है। जब झगड़ा बहुत बढ़ गया, तब द्वैतवादियों ने एक धोबी को बुलाया जो सड़क पर जा रहा था। उससे पूछा, "अरे, परमात्मा !" धोबी आश्चर्य में पड़ गया तथा उसने प्रतिवाद किया कि वह उस प्रकार का कुछ भी नहीं है ! इसलिये, द्वैतवादी ने कहा, "देखो, यह धोबी भी जानता है कि अद्वैतवाद गलत है।"

अद्वैतवादी ने कहा, कि धोबी भी अज्ञान का शिकार है, उसे भ्रम है कि वह नाम एवं रूप की सीमित उपाधि है। ये व्यक्तित्व के केवल अस्थायी गुण हैं। **क्षेत्र** एवं **क्षेत्रज्ञ** का ज्ञान मात्र ही उस भ्रम को पराभूत कर सकता है। **क्षेत्र** खेत है—इन्द्रियों का खेत है, द्वैतों का खेत है, तथा **क्षेत्रज्ञ** वह है जो खेत एवं उसके **स्वामी** को भी जानता है।

दर्शन शास्त्र एवं सामान्य सम्भाषण में प्रत्येक शब्द का एक गम्भीर अर्थ है तथा वह महत्वपूर्ण है। देह का अर्थ दग्ध होने वाला। यह शब्द शरीर के लिये आता है, केवल इस कारण नहीं कि प्राण त्याग करने के उपरान्त अग्नि द्वारा यह भस्म कर दिया जाता है; बल्कि, इसलिये, कि सजीव रहने पर भी यह **त्रयताप** द्वारा दग्ध होता रहता है। देह के लिये दूसरा शब्द शरीर है। वह भी उस मूल धातु से पैदा है, जिसका अर्थ है दग्ध होने वाला। देह उस जीव के लिये एक देवालय है, जो देव है।

शिल्पी मन्दिर के तीन भाग होते हैं: प्रकरम, अन्त: मन्दिर एवं गर्भगृह। ये तीनों मनुष्य के **'स्थूल'**, **'सूक्ष्म'** एवं **'कारण'** शरीर के प्रतीक हैं। मन्दिर में जाते समय तुम्हें इस प्रतीक को स्मरण करना चाहिये। **प्रकृति** शब्द का प्रयोग शरीर की दशा, 'स्वभाव' को सूचित करने के लिये किया जाता है। अच्छा, वह **प्रकृति** या 'नेचर' परमात्मा का भी स्वभाव, संकल्प, उसके व्यक्त होने की एक विधि है। जैसा कस्तूरी ने भक्तों के कुछ अनुभवों को उद्धृत करते हुए कहा यह सब "उसके हाथ एवं पांव" हैं, उसका प्राकट्य है। यही कारण है कि यह कहा जाता है कि "सर्वं ब्रह्ममयम" है।

एक योगी को वायु विकार का दौड़ा हुआ। उसके साथियों एवं सहसाधको ने, जो उसके चारों ओर एकत्र हो गये थे, दवा करने का परामर्श दिया। एक व्यक्ति ने उसको सलाह दी कि उसको अपने मुंह में सदैव नमक रखना चाहिये तथा उसके रस को निगलना चाहिये। उसने वैसा

ही किया। वह अपने मुख में सदैव नमक रखता था। कुछ दिनों के उपरान्त जब अपने आश्रम के चातुर्दिक बच्चों को मिठाई बाँटने की उसने इच्छा की तो उसने जिस भी मिठाई को चखा, उसे वह पर्याप्त मधुर नहीं लगी। अन्त में, एक दूकानदार ने उससे कहा कि मुंह में जो कुछ है उसे थूक दो तथा पानी से गले को कुल्ला करके साफ कर लो, तब मिठाई का स्वाद चखो। इससे मिठाइयाँ उसको बहुत स्वादिष्ट लगीं। अनेक जन्मों के इस नमकीन स्वाद के सहित तुम्हारी रसना है, तब तुम उससे परमात्मा की सच्ची मधुरता का कैसे पता लगा सकते हो ?

उत्तर भारतवर्ष के एक रेलवे स्टेशन पर, एक प्यासे यात्री ने पानी वाले से पूछा कि जिस चमड़े की मसक से वह प्याले में पानी उड़ेल रहा था, वह पर्याप्त रूपेण स्वच्छ है। पानी वाले ने उत्तर दिया, 'मेरे पास जो थैला है, वह उस थैले से अधिक स्वच्छ है जिसमें तुम पानी उड़ेल रहे हो।"

अपने मन को वासना से स्वच्छ रखो, अपनी बुद्धि को ईर्ष्या से मुक्त रखो, अपने चरित्र को कलंक से मुक्त रखो, अपने व्यवहार को असभ्यता से मुक्त रखो—तब, तुम स्वयं को परमात्मा से संयुक्त कर सकते हो तथा परमात्मा भी तुम पर अपना स्नेह बरसायेगा।

थोड़ा रंग एवं कागज का एक टुकड़ा लेकर एक चित्रकार एक राक्षस का डरावना चित्र, या एक मुसकराते बालक का मोहक चित्र, या सर्वशक्तिमान का ध्यान करते हुए एक योगी का एक प्रेरक चित्र बना सकता है। वे सब विभिन्न प्रतिक्रियायें रंगों के सम्मिश्रण के परिणामस्वरूप हैं। बुनियादी सत्यता रंग मात्र है, उसी प्रकार, सिनेमा गृह में, पर्दा एक स्थाई तत्व है, छायायें आती हैं और चली जाती हैं। पर्दे पर जब चित्र प्रकाशित किया जाता है, तब पर्दा नहीं दिखाई देता है। यह आधार है, नींव है, इसका समग्र चित्र बन गया है।—"सर्वं विष्णुमयम् जगत्।"—सारा जगत विष्णुमय है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को 'मैं' कहता है, क्या यह नहीं है ? अब, तुमको यह अधिकार किसने दिया ? क्या कोई कम्पनी थी ? क्या तुम्हें यह दहेज के एक अंश में मिली ? अथवा, शासकों से प्राप्त हुई ? अथवा किसी संगठन से ? तुम कहते हो कि यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। अच्छा, इसे ऐसा ही होने दो। वह 'मैं' वह सत्ता है जिसे **महावाक्य** में **ब्रह्मम्** कहा गया है, **अहं ब्रह्मास्मि,** मैं ब्रह्म हूँ।

जब एक (ब्रह्म) अनेक हो जाता है, जब एक पंचभूतों से निर्मित प्रकृति रूप में व्यक्त होता है, तब तुम यह कल्पना नहीं करो कि इस कारण उसकी महिमा प्रभावित हो गई। एक रुपये के दस दस नये पैसे में परिवर्तित होने पर, इसके मूल्य में बिल्कुल कमी नहीं हुई है। इसलिये प्रकृति को परमात्मा रूप में देखो, न कि इन्द्रियों की छाया एवं आकर्षणों के अनेकत्व रूप में देखो। **जहां भी तुम्हारी दृष्टि जाती है, जो कुछ भी तुम्हारे कान सुनते हैं, तुम्हारी अंगुलियां स्पर्श करती हैं, तुम्हारी रसना चखती है, तथा तुम्हारी नासिका सूंघती है, जिसमें भी रूप, रस शब्द, स्पर्श एवं गन्ध है, उसको परमात्मा से परिपूर्ण समझो। शब्द या रसमात्र आदि को अपनी इन्द्रियों को मुग्ध न करने दो। हर एक में ईश्वरता का दर्शन करो। केवल उसी का स्वागत करो एवं उसी को स्वीकार करो।**

तुकाराम से पूछा गया कि मनुष्य अपने वानर-मन को ऐन्द्रिक सुखों की ओर भागने से कैसे रोक सकता है। तब उन्होंने प्रश्न कर्त्ता को उत्तर दिया, "वानर को दौड़ने दो। तुम जहाँ हो वहीं शान्त रहो। शरीर को वानर-मन के साथ मत जाने दो।" उस मन से कहो, "मैं शरीर को तुम्हें चाकर रूप में नहीं दूंगा।" तब मन रुक जायेगा और यह परास्त किया जा सकता है। **जिस प्रकार किसी घर को भी खसाने की एक विधि है, उसी प्रकार, मन के सश्लिष्ट ढांचे को भी खींचने का एक नियम है।**

मन को व्यवस्थित प्रयत्नों से नीचे लाया जा सकता है तथा तुम अपने स्वामी बन सकते हो। तुम पूछ सकते हो, "क्या ऐसा शक्ति शाली बलवान नीचे आ सकता है ?" हाँ। हम लोग बद्री से वापस होते हुए ऋषिकेष पहुँच रहे थे। उस समय गवर्नर रामकृष्ण राव ने भी यही प्रश्न पूछा था। मैंने प्रत्येक व्यक्ति से एक क्षण में सड़क के निश्चित बिन्दु के पार आने के लिये कहा। प्रत्येक व्यक्ति को विस्मय हुआ कि मैं उनको मोटर कारों एवं बसों से नीचे उतारने एवं अति शीघ्रता से आगे दौड़ने के लिये आदेश दे रहा हूं।

मैंने गवर्नर से कहा कि सड़क के किनारे पहाड़ी के आगे झुकी हुई चट्टानें अविलम्ब सड़क पर गिरेंगी तथा इसे अवरुद्ध कर देंगी। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या यह सम्भव है ?" अल्प मिनटों में ही, जब सब लोग एक सुरक्षित दूरी पर आ चुके थे, वे चट्टानें गिर पड़ीं तथा सड़क दीर्घ समय के लिये अवरुद्ध हो गई, जब तक मलवे की सफाई नहीं हो गई।

जितनी ऊंचाई पर तुम चढ़ना चाहते हो, उतनी ही ऊंची सीढ़ी होनी चाहिये। क्या यह सच नहीं है ? मन का दमन करने के लिये तुम्हारी साधना उस समय तक क्रमशः चलती रहनी चाहिये जब तक तुम साक्षात्कार नहीं प्राप्त करते हो। प्राप्त में चावल भली प्रकार उबालना चाहिये ताकि वह मुलायम एवं मधुर हो जाये। जब तक यह नहीं होता, तब तक अग्नि अवश्य जलती रहे। **देह रूपी बर्तन में इन्द्रिय रूपी जल के साथ मन रूपी चावल को उबालो या पकाओ तथा इसको कोमल बनाओ। साधना ही अग्नि है। इसे तेज जलने दो। अन्ततः जीव देव बन जायेगा।**

मिलने का पता:

१. विजयेश्वर ज्यो

नन्दलाल एण्ड



कार्यालय पञ्चतीर्थी (जम्मू)
ज पुस्तक विक्रेता, जम्मू ।